॥ श्रीः ॥

श्रीगुरुचरित्र

वा

हिन्दी वार्तिक सारांश ।

लेखक

बैजनाथ उपाध्याय ।





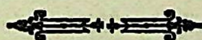
॥ श्रीः ॥

श्रीगुरुचरित्र ।

अर्थात् परब्रह्मस्वरूप स्वामी नृसिंह-सरस्वतीजीका जीवनचरित्र ।

अथवा

महाराष्ट्रीय भाषाके 'गुरुचरित्र' नामक ओवीबद्ध काव्यका हिन्दी वार्तिक सारांश ।



लेखक व प्रकाशक-

भौरासा ग्राम (जिला उज्जैन) निवासी जगन्नाथात्मज

वैजनाथ शर्म्मा उपाध्याय ।



बी. एल्. पावगी द्वारा हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी में मुद्रित।

प्रथमबार १०००) सन १९१२ (मूल्य १)

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
१ औदुंबर ऑफिस, दूधविनायक, काशी ।
२ वैजनाथ उपाध्याय मुख्तार आम, मेड़ीताल,
पोस्ट बरहलगंज, ज़िला गोरखपुर, यू. पी. ।

श्रीराम।

उपोद्घात।

महाराष्ट्रीय प्राचीन कवि श्रीगुरुभक्त गंगाधरसरस्वतीजीके लिखे मराठी ओवीबद्ध काव्य "श्रीगुरुचरित्र" का अबतक हिन्दी साहित्यमें न तो कोई अनुवाद था न श्रीगुरुके चरित्र विषयक अन्य कोई ग्रन्थ था इस कारणसे एक महाराष्ट्रके सिवा अन्य सब प्रांत स्वामी नृसिंहसरस्वतीजीकी उपदेशपूर्ण और धर्मार्थ काम मोक्ष दायिनी अनेक अद्भुत कथाओंके श्रवण पठन और शिक्षाओंके लाभोंसे विमुख हैं।

मैं महाराष्ट्रियोंके संसर्गसे कुछ कुछ महाराष्ट्रभाषा जानने लगा हूँ उसीके बलसे मुझे इस ग्रंथको देखनेका सौभाग्य मिला और मेरे मनमें यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि इस अमूल्य ग्रंथका अनुवाद हिंदीमें होजाय तो मेरे हिंदी भाषी भ्राताओंको बड़ा लाभ होगा।

मैंने 'हिंदी' और 'मराठी' दोनों भाषाओंके जानकार अनेक विद्वानोंसे प्रार्थना कियी परंतु उन्होंने इस कार्यको बहुत कठिन बतलाया और निःसंशय यह ऐसा ही है भी। विशेषतः मुझ जैसा अल्पज्ञ तो इसके करने योग्य हो ही नहीं सक्ता। परन्तु ज्यों ज्यों मैं हजारों महाराष्ट्रियोंको प्रति वर्ष गाणगापुर और भिल्लवड़ी आदि तीर्थोंकी यात्रा करते देखता था और उनके मुँहसे स्वप्नादिकमें अब भी स्वामी के दर्शन तथा विद्या, धन, पुत्र और आरोग्यतादि मनोरथ पूर्ण होनेकी कथाए सुनता था त्यों त्यों मेरा मन उबाल खाता था कि किसी प्रकार से यह "दिल्लीका सोहन हलुआ" अपने भ्राताओं को चखा सकूँ !!

" लक्षपति महाजन पाँच लाख रुपयोंकी इमारत बनाता है " "दरिद्र मनुष्य अपनी फूसकी झोंपड़ीमें मट्टीके तेलसे ढिबरी जलाकर रामायणके आनंदमें मग्न होता है " इन दोनों दशाओंका विचार करते ही यह बात समझमें आगई कि "जो जितना कर सके वह उतनाही कर डाले " तदनुसार यह " छोटे मुँह बड़ी बात " कह डाली।

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी कोविद इस कार्यको बड़ी योग्यता-से करते पर उनका ध्यान इस ओर जाने तकका समय बितानेभर धीर मुझसे न धरा गया।

मैं उस वनका शिकारी नहीं हूँ जहाँ कस्तूरिया मृग रहते हैं, एवं मुझे असली, नकली (कस्तूरी) की पहचान नहीं, वात पित्तादि दोषोंका ज्ञान नहीं, इसलिये मैं वैद्यराजकी बराबर नहीं बैठ सकूँगा· पर मेरे पास महात्माकी प्रासादिक बूँटी (गुरुचरित्र) है, उसका मैंने उपयोग किया है, मेरा रोग कुछ कुछ कम होगया है; मैं दावा करके कहता हूँ कि जो इसका सेवन करेगा वह अवश्य लाभ उठावेगा।

जगन्नाथात्मज वैजनाथ शर्म्मा।

॥ श्रीः ॥



श्रीगुरु दत्तात्रय ।





॥ श्रीः ॥

श्रीगुरुचरित्र

अध्याय १

मूल ग्रंथके लेखकका परिचय ।

इस अध्यायमें ग्रंथलेखकने मंगलाचरण करके प्रथम अपने पूर्वजोंका और अपना परिचय दिया है; वह कहते हैं कि "आपस्तंब शाखाके कौंडिन्य गोत्रमें साखरे उपनामके ब्राह्मणोंके कुलमें मेरा जन्म हुआ है, मेरे पूर्वजोंमें सायंदेव नामके एक पुरुष हुए हैं, जो श्रीगुरु नृसिंहसरस्वतीके प्रसिद्ध शिष्योंमेंसे एक थे। उनपर श्रीगुरुकी असीम कृपा थी, श्रीगुरुने उनको आशीर्वाद दिया था कि तुम्हारे वंशमें जितने पुरुष उत्पन्न होंगे सब गुरुभक्त होंगे; इसी आशीर्वादके प्रभावसे मैंने श्रीगुरुके चरित्र और उनकी महिमाके वर्णन करनेका सौभाग्य पाया है।"

गुरुचरित्रका माहात्म्य ।

इसके पीछे श्रीगुरुचरित्रका माहात्म्य वर्णित है, जिसका यह सारांश है कि जिसके घरमें उक्त कथा नित्य प्रेमपूर्वक पढ़ी या सुनी जाती है, उसके घरमें लक्ष्मी अखंड निवास करती है, उसको पुत्र कलत्रादिककी कमी नहीं रहती, उसके घरमें रोगादिककी बाधा नहीं होती और वह सर्वकाल संतुष्ट रहता है। जो इस कथाको सात दिन लों नियमसे श्रद्धा भक्ति सहित सुनता है उसके सब बंधन छूट जाते हैं। कवि (लेखक) ने लिखा है कि स्वयं मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है, इसीलिये मैं सब पाठकोंसे प्रार्थना करता हूं, कि वे भी इसका अवश्य अनुभव करें। यह चरित्र कामधेनुके समान है, इसके सुननेसे मनुष्य पूर्ण ज्ञानी हो जाता है।

गाणगापुरकी महिमा ।

अब गुरुके स्थान ' गाणगापुर ' की महिमा लिखते हैं । गाणगापुर में स्वामीजीने विशेष निवास किया था, इस कारणसे उसकी महिमा वर्णनीय है । वहां बहुतेरे भक्तजन जाकर आराधना करते हैं और पुत्र स्त्री धन आदि जिस जिसकी कामना करते हैं; वह सब पाते हैं ।

एक गुरुभक्तको श्रीगुरुका दर्शन ।

एक गुरुभक्त सर्वकाल श्रीगुरुका ध्यान किया करता था परंतु अनेक प्रकारके कष्टोंसे आक्रान्त रहता था, जब कष्ट दुःसह हो गया तो उसका चित्त व्याकुल हो उठा; सो वह गुरुके दर्शन करनेका मनमें दृढ़ निश्चय करके गुरुके स्थान पर गया । वह जानता था कि यद्यपि इस स्थान पर गुप्त रूपसे श्रीगुरु नृसिंहसरस्वती सर्वकाल निवास करते हैं, परन्तु जबलों पूर्ण रीतिसे मनुष्यके अंतःकरणकी शुद्धि नहीं देख लेते हैं तबलों दर्शन नहीं देते हैं । इसलिये उसने यह दृढ़ निश्चय किया था कि यदि दर्शन न कर पाऊंगा तो अपना शरीर विसर्जन कर दूंगा । क्षुधा तृषादि जीतकर अनन्य भावसे वह श्रीगुरुकी शरण गया और ध्यान करके इस प्रकार प्रार्थना करने लगा "हे सद्गुरु ! मैं आपका दास कहलाता हूं, लोहा पारसका स्पर्श करतेही तत्काल सुवर्ण होजाता है , इसी प्रकार आपके नामका स्मरण करनेसे मनुष्य की दीनता दूर हो जाती है, परंतु आपके नामरूपी पारसका मेरे अंतःकरणमें यद्यपि सर्वकाल निवास है तौ भी मैं बहुत कष्ट उठा रहा हूं ! अब धैर्य नहीं धरा जाता है; हे दयानिधे ! मैं भाव भक्ति कुछ नहीं जानता ! अब शीघ्र मेरी सुधि लीजिये । मेरा रक्षक कोई नहीं है ! आप जगत्के पालनकर्ता हैं ! आप माता, पिता, बंधु, जो कुछ कहें सो सब हैं ! आपको छोड़ किस दूसरेसे अपने कष्ट निवारणकी प्रार्थना करूं ? हे कृपासागर ! आप यदि मेरे अपराधोंसे क्रुद्ध हुये हों, तो क्षमा कीजिये ! क्योंकि बच्चा अज्ञानवश अपनी मातासे कभी कोई निष्ठुर शब्द कहता है, अथवा उसको मारता भी है, तौ भी माता उसपर क्रोध नहीं करती; किंतु प्रेमसे उसे कंठ लगा लेती है । माता जब बच्चेपर क्रोध करती है, तब बच्चा पिताके पास जाता है, और

पिता जब क्रोध करता है तब वह माताके पास जाता है। परंतु हे परब्रह्म! मेरे माता पिता आप ही हैं, जब आप क्रोध करेंगे तो कहिये मैं कहां जाऊंगा ? आप अनाथोंके रक्षक हैं, प्रह्लादादि भक्तोंकी रक्षाके समय आपने इतना विलंब नहीं किया था, मेरे लिये क्यों आप निश्चिंत बैठे हैं?"

इस प्रकारकी दीन वाणी सुनके कृपासागर श्रीगुरुदेव, जैसे गैया अपने बच्चेके लिये दौड़ आती है, वैसे ही प्रगट हुए। ज्यों ही गुरुके दर्शन हुए, भक्तने अपना शिर उनके चरणों पर रखके, अपने शिरके खुलेहुए बालोंसे गुरुके चरणोंकी रज झाड़ी, और आनंदके आँसुओंसे उनके चरण धोये; उनका स्वरूप अपने अंतःकरणमें धारण करके षोडशोपचार विधिसे उनकी पूजा कियी। उसकी भक्ति और पूजासे श्रीगुरुदेव बड़े प्रसन्न हुए।

अध्याय २

विष्णुशर्माको एक महात्माके दर्शन।

विष्णु नामक एक गुरुभक्त किसी कार्यवश मार्गमें चलता हुआ श्रमसे थक गया और व्याकुल चित्त होकर एक वृक्षकी ठंढी छाँहमें विश्राम करनेके लिये लेट गया। लेटते ही नींद आगयी; तो स्वप्नमें क्या देखता है कि जटाधारी, सर्वांगमें भस्म लगाये हुए, व्याघ्रांबर ओढ़े हुए, पीतांबर पहिने हुए, एक योगीश्वर आये हैं; उन्होंने उसके मस्तकपर भस्म लगा दिया; और मस्तकपर अपना हाथ रखके अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया। इतना स्वप्न देखते ही विष्णुशर्मा जाग पड़ा और चारों ओर देखने लगा किन्तु योगीश्वर कहीं दीख नहीं पड़े, तब उसे बड़ा विस्मय हुआ।

अस्तु, उसी मूर्तिका ध्यान करता हुआ वह आगे को चला। कुछ दूर गया होगा कि वही मूर्ति, जिसका वह अभी स्वप्नमें दर्शन पा चुका है, प्रत्यक्ष दिखाई पड़ी। देखते ही दंडवत् प्रणाम कर विष्णुशर्माने प्रार्थना कियी कि "हे अज्ञानतिमिरभास्कर ! आपके दर्शनसे मेरे सब पाप दूर हो गये! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, आप मेरे उद्धार

के हेतु प्रगट हुए हैं। अब आप कृपा करके मुझे बतलाइये कि कहाँ से आपका आगमन हुआ है? आप कौन ऋषि हैं? और कहाँ आपका निवास है?"

योगीश्वरने कहा "मैं योगी हूँ, सर्वकाल तीर्थ, स्वर्ग, और मृत्यु लोक में पर्यटन किया करता हूं। मैं प्रसिद्ध गुरु नृसिंहसरस्वतीका शिष्य हूँ। उनका स्थान गाणगापुर है, जो भीमानदी के तीरपर अमरजा संगमके निकट है। श्रीगुरु नृसिंहसरस्वती स्वामी दत्तात्रेयके अवतार हुए हैं। भक्तोंका उद्धार करनेके अर्थ आपने अवतार धारण किया है उनके भक्तोंको सर्वकाल अखंडैश्वर्य प्राप्त रहता है, वे कभी दीनताका अनुभव नहीं करते हैं।"

यह सुनकर विष्णुशर्माने प्रार्थना कियी कि "हे सिद्ध मुनि! मैं भी सर्वकाल श्रीगुरुके चरणोंका ध्यान किया करता हूँ, परंतु मुझे तो कष्ट उठाने पड़ते हैं, सो क्यों?" योगीश्वरने कहा "यह तो सर्वथा असंभव है। तुम्हारे अंतःकरणमें निश्चय नहीं है, यही कारण है कि तुम को कष्ट होता है। श्रीगुरुका भजन पूर्ण निश्चयके साथ करना चाहिये वह सब प्रकारके वरदान दे सकते हैं। श्रीगुरुका ऐसा अधिकार है कि उनके भक्तपर साक्षात् विष्णु भगवान् अथवा त्रिपुरारि भी क्रोध करें तो उसको श्रीगुरु बचा सकते हैं, परंतु श्रीगुरु यदि किसीपर क्रोध करें तो उसको विष्णु आदि कोई नहीं बचा सकते"।

विष्णुशर्माने कहा "हे स्वामी! अभी तो आपने कहा है कि श्रीगुरु त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महादेव) के अवतार हैं, फिर आप यह भी कहते हैं कि गुरुके रुष्ट होनेपर कोई नहीं बचा सकता है और विष्णु अथवा महेश्वरके रुष्ट होनेपर गुरु बचा सकते हैं, यह कैसी बात है? और यह कथाभाग किस शास्त्र या पुराण में है? सो कृपा करके कहिये। और यह भी कहिये कि श्रीगुरु त्रिमूर्तिको किस कारणसे अवतार लेनापड़ा।"

ब्रह्मदेवकी उत्पत्ति।

योगीश्वरने कहा "जब महा प्रलय हुआ था, तब आदि मूर्ति भगवान नारायणने वटपत्रपर शयन किया था, उस समय उन्होंने सृष्टिकी रचना करनेकी इच्छा करके अपनी नाभिसे एक कमल उत्पन्न किया,

जो तीनों लोकोंकी रचनाका भवन था। इस कमलसे ब्रह्मदेव प्रगट हुए, उनको भगवान्ने सृष्टिकी रचना करनेके लिये आज्ञा दियी और उनको चारों वेद देकर कहा कि 'ये वेद अनादि हैं, इनमें सृष्टिकी रचनाका संपूर्ण विचार कथन किया गया है, उसी मार्गसे तुम भी सृष्टिकी रचना करो'। ब्रह्मदेवने चार प्रकारकी सृष्टि निर्माण कियी; स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज, और जरायुज। इस सृष्टिका वर्णन भगवान् वेदव्यासने अठारहों पुराणोंमें विस्तारके साथ किया है, उन पुराणोंमें एक ब्रह्मवैवर्तक पुराण है, जिसमें सूतजीका कथन शौनकादिक ऋषियों के प्रति इस प्रकार वर्णित है:—

चारों युगोंके प्रभाव।

ब्रह्मदेव ने क्रम से कृत, त्रेता, द्वापर, और कलि इन चार युगों को बनाया। कृतयुगके लक्षण ये हैं-असत्य कभी नहीं बोलना, पूर्ण विरागी, पूर्ण ज्ञानी, यज्ञोपवीत धारण किये हुए, कंठमें रुद्राक्षकी माला पहिने, और हाथमें रुद्राक्षका कंगन बाँधे हुए। कृतयुगको ब्रह्मदेव ने पृथ्वीपर अपने गुण प्रकाश करनेकी आज्ञा दियी तब उसने प्रार्थना कियी कि "हे प्रभु ! पृथ्वीपर तो मनुष्य असत्यभाषी, परनिंदक, परअपवादक होते हैं; उनमें मैं किस प्रकार अपने गुण प्रकाश कर सकूंगा ?"

ब्रह्मदेवने कहा "कुछ दिनलों तुम अपने सत्व गुणका प्रकाश करना, मूर्ख लोग न मानेंगे तो, फिर दूसरा युग भेज दूंगा" तब सत्य युगने मृत्युलोकमें आकर अपना कार्य आरंभ किया। अवधिके पूर्ण हो जानेपर ब्रह्मदेवने त्रेतायुगको आज्ञा दियी। त्रेताके लक्षण ये हैं-स्थूल तनु, हाथमें यज्ञकी सामुग्री, धर्मशास्त्र और कर्ममार्गमें प्रवृत्त हाथमें कुश और समिधा। त्रेता हर्षयुक्त हो पृथ्वीपर विचरने लगा। त्रेताकी अवधि जब पूर्ण हो गयी तब ब्रह्मदेवने द्वापर को आज्ञा दियी। द्वापरके लक्षण-एक हाथमें खड्ग और खट्वांग, दूसरे हाथमें धनुष बाण, उग्र तेज, शांत प्रकृति, कठोरता और दया दोनोंका अधिष्ठाता, पुण्य और पाप दोनोंको समान रखनेवाला, और सुंदर स्वरूप। ब्रह्मदेवकी आज्ञा से वह भी आनंदयुक्त हो अपनी अवधि पूरी होने लों विचरता रहा ; द्वापरकी अवधिके पूरी होनेपर ब्रह्मदेवने कलियुगको बुलाया। प्रथम

तो वह ब्रह्मदेवके सम्मुख जिस स्वरूपसे आया वही अत्यंत हास्योत्पादक है; विचारहीन अंतःकरण का, पिशाचके जैसा मुँह नीचे की ओर किये, गिरता पड़ता, वृद्ध, विरागहीन, कलह और द्वेष साथमें लिये, बायें हाथमें अपना शिश्न और दक्षिण हाथमें जिव्हा थामे, नृत्य करता हुआ आया। कलिराजका स्वरूप देखते ही ब्रह्मदेव हँस पड़े। कलिराज हँसते थे और रोते भी थे; टेढा बेढा मुँह बनाते थे, और गालियाँ भी बकते थे; पश्चात् ब्रह्मदेवके सम्मुख खड़े होकर आप कहते हैं,"कहिये क्या कहते हैं"? ब्रह्मदेवने पूछा "पहिले यह तो बताओ कि तुमने अपनी जीभ और शिश्न किस कार्यके लिये हाथमें थाम रक्खे हैं ?" तब आप कहते हैं"मैं सब लोगोंको जीतूँगा। कदाचित् कोई मुझे हरावे इस विचारसे अपने संरक्षणके अर्थ लिंग और जिव्हा हाथमें लेली है" ब्रह्मदेवने कलिको पृथ्वीपर विचरनेकी आज्ञा दियी।

कलिने कहा कि "मैं पृथ्वीपर जाऊँगा तो धर्मका उच्छेद अवश्य करूँगा, मैं निरंकुश और निरानंद हूँ, निद्रा और कलह मेरे मित्र हैं; दूसरोंके द्रव्य छीनलेने वाले और दूसरोंकी स्त्रियोंसे संग करने वाले पुरुष मेरे भाई हैं, भेदाभेद करनेवाले, ढोंगी पुरुष, बकुलोंकेसे ध्यान लगानेवाले संन्यासी, और छलसे उदरपोषणके अर्थ द्रव्य संपादन करने वाले मेरे प्राण हैं, और पुण्यवान लोग मेरे बैरी हैं।"

ब्रह्मदेवने कहा "कलियुगमें मनुष्यकी आयुष्य बहुत थोड़ी अर्थात् केवल १०० वर्षोंकी रखी गयी है, तिसमें तपानुष्ठान करनेसे मनुष्य शीघ्रही परमार्थ पावेगा; इसलिये तुमको उचित है कि जो लोग ब्रह्मज्ञानी अथवा पुण्य करने वाले हों उनके सहायक बनके रहो"!

कलिने कहा "हे प्रभु! पुण्यवान् पुरुष तो मुझे देखते ही मारडालेंगे; भरतखंडमें पुण्यवान् पुरुष अधिक हैं, उनसे मैं डरताहूँ; इसलिये पृथ्वीपर भेजनेसे मुझे क्षमा कीजिये।"

ब्रह्मदेवने कहा "तुम कालात्माको साथ लेकर जाओ; कालात्मा के ऐसे गुण हैं कि वह पुण्यात्माके अंतःकरणमें भी पापबुद्धि उत्पन्न कर देता है; तैसाही तुम्हारा भी प्रताप है! जब तुम पृथ्वीपर पहुँचोगे, तो सब लोग तुम्हारीही आज्ञाके अनुसार व्यवहार करने लगेंगे; क्वचित् ही पुरुष पुण्यवान् रहेगा जो तुमको जीत सकेगा, उसके तुम

सहायक होजाना।"

अब, कलियुगने ब्रह्मदेवसे पुण्यवान्‌के लक्षण पूछे सो इस प्रकार ब्रह्मदेवने वर्णन कियेः-जिनका अतःकरण धैर्ययुक्त हो, जिनकी बुद्धि शुद्ध हो, जिन्होंने लोभको छोड़ दिया हो, जो हरि हरका भजन करते हों, या काशीपुरीमें निवास करते हों, जो निरंतर गुरुकी सेवा करते हों, जो अपने माता, पिता, ब्राह्मण, और गायकी सेवा करते हों, या गायत्रीका जप करते हों, जो नित्य तुलसीकी पूजा या पुराण श्रवण करते हों या जो वैष्णव अथवा शैव हों या विवेकी हों, उनको पुण्यवान् समझो; उनपर तुम्हारा प्रभाव नहीं पड़ेगा !

फिर कलिने गुरुके लक्षण पूछे सो ब्रह्मदेवने इस प्रकार कहे किः-गुरुके दो अक्षर हैं "गु और रु"। गुकार सिद्धको कहतेहैं, रेफ़ पापका दहन करनेवाला है, उकार अव्यक्त विष्णुका नाम है, इससे गुरु परब्रह्म निश्चित है। गुरु शब्द गणेशके लिये भी कहा जाताहै। वैश्वानर अर्थात् अग्निको भी गुरु कहतेहैं। भगवान् शार्ङ्गधरको भी गुरु कहते हैं। गुरु माता, पिता, ईश्वर हैं, ईश्वर यदि प्रसन्न होता है तो गुरुहीके द्वारा होता है; बिना गुरुके ईश्वर प्राप्त नहीं हो सकता; इससे यह सिद्ध होता है कि गुरु हमारे ऊपर प्रसन्न होंगे तो ईश्वर हमारे अधीन हो जायँगे; गुरु ही ज्ञान बताते हैं और वे ही आचार, धर्म, तीर्थ व्रतादिके मार्ग बताते हैं; गुरुके बिना कुछ सुनाई नहीं दे सकता। जैसे कानके बिना। गुरुके द्वारा शास्त्र सुनाई देताहै, जिससे मनुष्य संसार सागरके पार हो जाता है, इसलिये गुरुको ज्योतिःस्वरूप कहते हैं। इस विषयका एक कथाभाग मैं तुमको सुनाता हूँ—

संदीपककी गुरुभक्ति।

पूर्व कालका इतिहास है-गोदावरी नदीके तीरपर अंगिरस ऋषिके आश्रममें पैलका पुत्र वेदधर्म नामका ब्राह्मण रहता था, उसके बहुत शिष्य थे, जिनमें संदीपक नामका एक था। अपने गुरुकी सेवा पूर्ण रीतिसे करके वह वेद शास्त्रके अध्ययनमें बहुत निपुण हुआ। एक दिन वेदधर्मने अपने सब शिष्योंको पास बुलाके कहा, " हे शिष्यो ! मेरे शिर पूर्वार्जित सहस्रशः पापोंका बोझ है, जो बिना भोगे नहीं छूट सकता। इसलिये मैंने काशीपुरीको जानेका निश्चय किया है;

शास्त्रोंमें कहा है कि काशीमें निवास करनेसे पापोंकी निष्कृति शीघ्र हो जाती है; तुमलोगोंमेंसे जिसकी सामर्थ्य हो वह मुझको काशीमें ले चले और वहां मेरी रक्षा करे ! " तब संदीपकने कहा " हे स्वामी ! मुझे आज्ञा हो; मैं आपकी सेवा पूर्ण रीतिसे करूंगा " वेद धर्मने कहा " सेवा करना सहज नहीं है, मेरी देह कुष्टी (कोढी), अंध, और पंगु हो जायगी, उस दशामें बीस वर्ष पर्यन्त मेरी सेवा करनी पड़ेगी, यदि दृढता रख सको तो स्वीकार करो । क्योंकि जो पुरुष अपनी देहसे पीडित होता है, उसकी अपेक्षा उसके संरक्षण करनेवालेको अधिक कष्ट होता है " ! संदीपकने कहा " हे मुनि ! आपके पलटे मैं अपनी देहसे कोढ़ी, अंध, अंगहीन, और पंगु होना स्वीकार कर लूंगा; आपको अपनी देहसे कष्ट उठानेकी भी आवश्यकता नहीं है ! " संदीपकके ऐसे वाक्यको सुन वेदधर्मको परम संतोष हुआ । उन्होंने कहा " हे पुत्र जो मनुष्य पाप करता है उसी को वह भोगना पड़ता है, पुत्र अथवा शिष्य उसे ग्रहण नहीं कर सकता; इसलिये मेरा पाप तो मुझको ही भोगना होगा, तुम इक्कीस वर्ष पर्यंत मेरी सेवा मात्र करना ! "

ब्रह्मदेवने कलिसे कहा " देखो अब शिष्यको, कि गुरुको कोढ़ उत्पन्न होते ही वह उनको काशी क्षेत्रमें ले गया; मणिकर्णिकासे उत्तरकी ओर कंबलेश्वरके समीप दोनोंने निवास किया, दोनों प्रतिदिन मणिकर्णिकामें स्नान करके विश्वनाथकी सेवा करते । इस प्रकार अपने प्रारब्ध भोगते रहे ! गुरुकी समस्त देहमें कोढ़ व्याप्त हो गया था, जिससे पूय और रक्त बहुत बहते थे, उसमें कृमि उत्पन्न हो गयी थी। उसी समय उनके दोनों नेत्र भी जाते रहे थे, ऐसी स्थितिमें संदीपक उनकी भक्तिपूर्वक सेवा करता रहा, वह नित्य गुरुकी ऐसी पूजा करता जैसे शिवभक्त विश्वनाथकी; वह नित्य भिक्षा करके जो कुछ पाता, उसे लाकर गुरुको देता था । जब कोई पुरुष रोगसे दुःखी होता है, तब साधु जनोंमें भी क्रूरता उत्पन्न हो जाती है; इसी प्रकार वेदधर्म जब कभी क्रुद्ध होते थे तो भोजन नहीं करते थे, कभी यह कहकर कि थोड़ा लाया, कभी यह कि मिष्टान्न नहीं लाया, अन्नको फेंक देते थे ! बार बार पकान्न लाने, और बारबार भाजी शाक न लानेसे रुष्ट होते थे और गालियाँ देते थे । जब संदीपक भिक्षाके अर्थ जाता था,

तब मक्षिकानिवारणादि न करनेका दोष लगाते; और जब सेवा करता था तब भिक्षा लानेमें विलंब करनेका दोष लगाते थे; सारांश यह कि ये सब बातें सह करके भी संदीपक कभी गुरुके दोषोंको मनमें नहीं लाता था ! उनको परमेश्वर जानकर एक चित्तसे भक्ति-पूर्वक सेवा करता रहा ! काशीक्षेत्र इतना प्रसिद्ध है तौ भी गुरुकी सेवा छोड़ कभी तीर्थस्नान अथवा देवदर्शनको नहीं गया; जैसा जैसा गुरुका मनोदय पाता गया, तैसा तैसा आप व्यवहार करता रहा ! इस प्रकारकी संदीपककी गुरुभक्ति देख पिनाकपाणि भगवान् विश्वनाथ संतुष्ट हुए, उन्होंने संदीपकके सम्मुख उपस्थित होकर उससे कहा " अहो गुरुभक्त ! अहो महाज्ञानी ! ! हे कुलदीपक ! ! ! मैं तुम्हारी गुरुभक्ति देख बहुत प्रसन्न हुआ हूँ; जो तुम्हारी इच्छा हो वर मांगो " संदीपकने गुरुके पास जाकर हाथ जोड़ प्रार्थना कियी कि हे स्वामी ! विश्वनाथ मुझपर प्रसन्न होकर वर देनेके अर्थ उप-स्थित हैं, यदि आपकी आज्ञा हो तो उनसे ऐसा वरदान माँगूँ कि वे आपका कष्ट दूर करदें ! शिष्यके ये वचन सुनके गुरु क्रोध करके बोले कि मेरे कष्ट दूर करनेकी इच्छासे महादेवकी प्रार्थना न करना । पापोंकी निष्कृति बिना भोगे नहीं हो सकती, वे फिर किसी दूसरे जन्ममें बाधा करेंगे । जिसको मोक्षकी इच्छा हो, उसको पापोंका क्षालन करलेना अवश्य है; पापोंको शेष रहने देना उचित नहीं, यदि शेष रह जाता है, तो मोक्षके कार्यमें विघ्न करता है-यह शास्त्रों में कहा है । गुरुका ऐसा अभिप्राय देख संदीपकने शिवजीसे जा कह दिया !

संदीपकका कहना सुन महादेवजी बहुत विस्मित हुए, उन्होंने सब देवताओंके समक्ष भगवान विष्णुके आगे यह सम्पूर्ण वृत्तांत कह कर यह भी कहा, कि संदीपकके ऐसा गुरुभक्त तीनों लोकमें आज-पर्यंत मैंने नहीं देखा; अनेक सहस्र वर्षों पर्यंत बड़े बड़े योगिराज तपश्चर्या करते हैं, उनको बड़े बड़े कष्ट उठानेपर भी कोई वर नहीं देता; परंतु संदीपकको मैं स्वयं वर देना चाहता था वह उसने नहीं लिया ! वह अपना तन, मन, गुरुको अर्पण करके संतोषसे गुरुकी सेवा कर रहा है, गुरुको त्रिमूर्त्ति मानता है, माता, पिता और सब देवताओं का देव गुरुको ही मानता है, निश्चय ही उसने अविद्या रूप

अंधकारको अपनी देहसे दूर करके अपने ' संदीपक ' नामको गुण से प्रकाशित कर दिया है !

यह सुन भगवान् शार्ङ्गपाणि स्वयं उन गुरु शिष्योंको और शिष्य की गुरुभक्तिका प्रकार देखनेके अर्थ वहाँपर पहुँचे, तो श्रीविश्वनाथ ने जितना कहा था उससे भी अधिक उन्होंने उसे पाया ! भगवान् विष्णुने भी संदीपकसे कहा "वर माँगो" संदीपक ने कहा "आपकी मैंने कोई भक्ति नहीं की, फिर आप क्यों वर देनेके अर्थ उपस्थित हुए हैं ? इसका कारण पहिले मुझे बताइये ! करोड़ों वर्ष अरण्यवास करके जो लोग तपस्याका कष्ट उठाते हैं, उनको तो आप वर नहीं देते और मुझे, जो कभी आपकी भक्ति नहीं करता, न कभी आपके नामका स्मरण करता हूँ, बलात्कारसे वर देने के अर्थ आप उद्यत हुए, यह आश्चर्य है ! " संदीपकके वचन सुन भगवान् संतुष्ट होकर बोले " हे संदीपक! तुमने जो अपने गुरुकी सेवा कियी है, वही मुझको पहुँची; जो पुरुष गुरुका भक्त होता है, वह मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय होता है। मैं उसके वश हो जाता हूँ, वह जो चाहता है सो मुझसे पाता है ! "

संदीपकने भगवान्को नमस्कार करके अनेक प्रकारसे स्तवन किया, और प्रार्थना कियी कि गुरुसे वेद, शास्त्र, मीमांसादिक कथा और सब प्रकारका ज्ञान प्राप्त होता है, गुरुके द्वारा भगवान् त्रिमूर्ति हमारे अधीन हो सकते हैं, गुरु ही हमारे इष्ट देव हैं, वही सब तीर्थोंके एक तीर्थ हैं; ऐसे गुरु रात दिन सेवा करनेका सौभाग्य मुझको प्राप्त है, इससे अधिक आप मुझे क्या वर दे सकते हैं ? जो कुछ आप दे सक्ते हैं, सो सब मेरे गुरु भी मुझको दे सकते हैं; फिर आपसे क्या मांगा जाय?

भगवान्ने कहा धन्य ! धन्य !! मेरे प्राणसखा !! तुम धन्य हो !! तुम सब शिष्योंके शिरोंके रत्न हो !! अब तुम केवल मेरे मनके संतोषके अर्थ वर माँगो, मैं तुम्हारे अधीन होगया हूँ !

संदीपकने कहा यदि आपकी यही इच्छा है तो मैं माँगता हूँ "मुझे ऐसा ज्ञान दीजिये, जिससे मेरे मनमें गुरुभक्ति आधिकाधिक होती जाय; और गुरुका स्वरूप मैं जान सकूँ । इससे अधिक मैं और कुछ नहीं चाहता " !

भगवान्ने कहा, हे संदीपक ! यह ज्ञान तो तुम पहिले ही पा चुके; तुम गुरुका स्वरूप भली भाँति जान चुके; तुम अपनी दृष्टिसे परब्रह्मको

देख चुके; औरभी यदि मुझसे पूछते हो तो सुनो; तुम रातदिन गुरुकी उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट स्तुति करते रहोगे, तो जिस जिस समय तुम गुरुकी भक्तिपूर्वक स्तुति करोगे, तब तब तिससे मैं संतुष्ट होता रहूँगा ! जो गुरुकी स्तुति होगी वही मेरी है, गुरु-ये दो अक्षर नहीं, ये अमृतके समुद्र हैं; जो इस समुद्रमें डुबकी लगाता है उसकी कभी क्षिति नहीं होती, जिसके हृदयमें गुरुस्मरण है वह तीनों लोकोंमें पूजा जाता है ! इस प्रकार वर पाकर, संदीपकने गुरुके समीप जाकर, वरदान पानेका वृत्तांत निवेदन किया; संदीपककी भक्ति देख गुरु भी संतुष्ट हुए, उन्होंने प्रसन्न होकर कहा "हे पुत्र अब तुम अपनी आयुभर काशीमें निवास करो, तुम्हारे वाक्य सिद्ध होंगे, तुम्हारे घर नवनिधि निवास करेंगी, विश्वनाथ तुम्हारे अधीन रहेंगे, जो कोई तुम्हारा स्मरण करेगा उसके सब कष्ट दूर होंगे, वे श्रीमन्त रहेंगे" !

ब्रह्मदेवने कलिसे कहा, कि इस प्रकार शिष्यको वरदान देनेके पीछे वेदधर्मने अपना दिव्य शरीर धारण किया; उन्होंने शिष्यका भाव जाननेके लिये कुष्ठादिका इतना क्लेश उठाया था, वास्तवमें वह महान् तपस्वी सिद्ध महात्मा थे, उनके शिर पाप कैसा ? लोगोंपर अनुग्रह करनेके अर्थ उन्होंने काशीमें निवास किया था; जिससे काशी की महिमा प्रसिद्ध हो, कि वहाँ पापियोंके सहस्रों जन्मके पाप दूर हो जाते हैं ! धर्मी अधर्मी जो कोई काशीमें निवास करता है सो जन्म मरणसे छूट जाता है"।

सिद्ध मुनिने विष्णुशर्मासे कहा "हे तात इस प्रकार गुरुके विषयमें दृढ़ता होनी चाहिये, तब गुरु प्रसन्न होते हैं" !

अध्याय ३

सिद्धके वचन सुनकर विष्णुशर्माने अनेक प्रकारसे योगीश्वरका स्तवन किया, और प्रार्थना कियी कि हे प्रभु ! आपने मुझे गुरुकी महिमा ऐसी बताई कि जिससे मेरे मनका संदेह दूर होगया। आपकी कृपासे मैं सर्वस्व पागया ! मैं आनन्दके सागरमें मग्न हो गया हूँ। अब मैं आपका दास हूँ; अब आप अपना निवासस्थान आदि कहिये। इतना कहके वह उनके चरणों में लिपट गया ! योगीश्वरने उसको

कंठसे लगाकर कहा " हे तात जहाँ जहाँ श्रीगुरु निवास करते हैं तहाँ तहाँ मेरा निवास जानो ! और गुरुका स्मरण करना ही मेरा अहार है, भुक्ति, मुक्ति, ज्ञान, परमार्थ, धन, पुत्रादि जिन जिनकी मनुष्य इच्छा करता है सब गुरुकी महिमाके सुननेसे मिलती हैं । जो गुरुके चरित्र पढ़ता है, उसके घरपर कभी रोग पीड़ा नहीं होती, जो बंधनमें होता है उसके बंधन टूट जाते हैं, पापियोंके ब्रह्महत्यादि पाप दूर हो जाते हैं; परंतु जिसके अंतःकरणमें गुरुकी भक्ति नहीं होती है, वह सर्वकाल कष्ट पाता है और गुरुको दोष देता है; और कहता है कि गुरु क्या दे सकते हैं ? "

विष्णुशर्माने प्रार्थना कियी कि हे भगवन् ! अब मुझे कृपा करके यह बताइये कि त्रिमूर्तिने किस लिये अवतार धारण किया ?

सिद्धने कहा " हे शिष्योत्तम ! पृथ्वीका भार उतारनेके अर्थ और भक्तोंका उद्धार करनेके लिये हरि हरके अवतार हुआ करते हैं । त्रिमूर्तिके तीन गुण हैं ब्रह्माका रजोगुण, विष्णुका सत्वगुण, शंकरका तमोगुण । देव एक ही हैं, परंतु उनमें तीनों गुण हैं । तीनोंके, क्रमशः उत्पन्न करना, पालन करना और संहार करना ये कार्य हैं । एकसे दूसरा पृथक् नहीं होता, परंतु आवश्यकतानुसार अवतार होते हैं; जैसे अंबरीष नामक द्विजके लिये भगवान्विष्णुका अवतार हुआ था ।

अंबरीष और दुर्वासाकी कथा ।

अंबरीष दृढ़ भक्तिसे एकादशीका व्रत, अभ्यागतोंकी पूजा और सर्वकाल हरिचिंतन किया करता था । उसका व्रत भंग करनेका निश्चय करके दुर्वासा मुनि पहुँचे; उस दिन साधन द्वादशी केवल एक घड़ी थी; अंबरीषके मनमें चिंता उत्पन्न हुई कि मुनिके सत्कार करनेके झंझटमें पड़ते हैं, तो द्वादशी जाती है; और द्वादशी साध्य करना चाहते हैं, तो मुनि अवश्य रुष्ट होंगे । तथापि अंबरीषने वंदन करके मुनिकी पूजा कियी और प्रार्थना कियी कि द्वादशी केवल एक घड़ी है, इसलिये कृपा करके स्नान संध्यादि अनुष्ठानसे शीघ्र निवृत्त हो जाइये । मुनिने नदीपर जाकर विधिवत् स्नान संध्यादि अनुष्ठानमें विलंब कर दिया । साधन घटिकाके बीत जानेका समय समीप आया जानकर व्रतभंग होनेके भयसे, अंबरीष

ने तीर्थ ग्रहण करके भोजन कर लिया ! जब दुर्वासा आये, तो उन्हों-ने देखा कि अंबरीषने भोजन कर लिया, तो क्रोधित हो शाप देदिया कि सब योनियोंमें तुमको जन्म लेना पड़ेगा । शाप सुनते ही द्विज बहुत दुःखी हुआ, उसने भक्तभयहारी भगवान् विष्णुका स्मरण किया ! भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तपर संकट पड़ा देखनेपर कब रहने वाले थे ? तत्काल जैसे गैया अपने बच्चेके लिये दौड़ आती है, तैसे दौड़ आये ! भगवान्ने मुनिसे कहा " आपने अंबरीषको वृथा शाप दिया ! अब मैं अपने भक्तकी रक्षा करूंगा उसके पलटे आप मुझे शाप दीजिये । "

दुर्वासा मुनि भी महाज्ञानी, केवल ईश्वरके अवतार थे; उन्होंने सोचा कि अनेक युगों पर्य्यन्त तपस्या करनेपर भी भगवान्के दर्शन लोगोंको प्राप्त नहीं होते, सो इस शापके निमित्तसे अवतार धारण करेंगे तो अनायास भक्त जनोंके उद्धार हो जावेंगे, यह विचार करके भगवान्से ऋषिने कहा "तथास्तु ! आप ही पृथ्वीपर अनेक स्थानोंमें जन्म धारण कीजिये !! "

सिद्ध ने कहा " हे शिष्य ! वे ही दशावतार प्रसिद्ध हुए, उन्हें तुमने श्रीमद्भागवतमें सुना होगा । अनन्तरूप भगवान् कार्यकारण संबन्धसे कभी गुप्त और कभी प्रकट अवतार धारण करते रहते हैं; उनकी लीला और महिमा ब्रह्मज्ञानी लोग जानते हैं, मूढ़मति लोग नहीं जानते । और भी एक विनोद सुनो ! अत्रि ऋषि की पत्नी अद्वितीय पतिव्रता अनसूयाके यहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव कपट वेष धारण करके उसके पातिव्रत्यकी परीक्षा करनेके लिये गये थे सो उनको उसके पुत्र बनकर रहना पड़ा । "

अध्याय ४

अनसूयाका छल और ब्रह्मा, विष्णु, महादेवको अनसूयाके पुत्र बनकर रहना पड़ा ।

सिद्धने कहाः-जब कि सारी पृथ्वी जलमय थी, उस समय पर-मात्माने सृष्टिकी रचना करनेके अर्थ ब्रह्माको उत्पन्न किया; उन्होंने

दशों दिशायें और चौदह भुवन निर्माण किये, काम क्रोधादिक और कालको उत्पन्न किया, तिसपीछे मरीचि, अंगिरस, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ इन सात मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। इन सातों में जो अत्रि नामक थे, उनकी भार्या अनसूया बड़ी पतिव्रता थी; उसीको जगदंबा जानो। उसके सौंदर्यका वर्णन कौन कर सकता है? साक्षात् चंद्र उसका पुत्र है, इसीसे उसके सौंदर्यकी कल्पना कर सक्ते हो। उसकी अपूर्व पतिसेवा देख सब देवता मनमें चिंता करने लगे कि यह कहीं हमारे स्वर्गका ऐश्वर्य न छीनले। इंद्रादिक सब देवताओंने मिलके त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महादेवके पास जाकर उनसे कहा "हे प्रभु! अनसूया मनसा वाचा और कर्मणा पतिकी सेवा करती है और महान् हर्षसे अतिथिकी पूजा करती है; किसी अतिथिको कभी विमुख नहीं फेरती, उसका आचरण देखके आकाश में सूर्यनारायण डरने लगे हैं, कि अनसूयाको उष्णता न हो इस लिये मंद मंद प्रकाश करते हैं। इसी प्रकार अग्निदेव भी शीतल हो रहा है, वायु मंद मंद बहता है, भूमि जहाँ जहाँ उसके चरण पड़ते हैं, मदु हो जाती है; उसके शापके डरसे हम सब लोग डरते हैं; न जानें वह कौनसा स्थान लेगी, उसको पातिव्रत्यका इतना बल है कि वह जिस किसीको वरदान दे देगी वही हमको मार डालेगा। इसलिये हे जगदात्मा!! हम आपकी शरणमें आये हैं, इसका शीघ्र उपाय होना चाहिये, नहीं तो किसी दिन उसीके द्वारपर रात दिन रहकर उसकी सेवा करनेका समय देखना होगा। हमारे हाथसे स्वर्ग जाता रहेगा; आपके बिना हमारा कोई त्राता नहीं है!"

यह सुन त्रिदेव बड़े क्रोधित हुए, और बोले "हम देखेंगे कि कैसी वह पतिव्रता उत्पन्न हुई है!! हम उसका पातिव्रत्य भंग कर देंगे।" यह कहके तीनों भिक्षुकोंका स्वरूप धारण करके अनसूयाके द्वारपर पहुँचे। अत्रि मुनि स्नान संध्यादिक अनुष्ठान करनेके अर्थ जलाशय को गये थे, तीनों मूर्तियोंने अनसूयासे कहा, "हम क्षुधासे पीड़ित ब्राह्मण हैं; शीघ्र अन्न दीजिये; नहीं तो हम अन्यत्र चले जावेंगे; तुम्हारा यश सुना है कि तुम किसी अभ्यागतको विमुख नहीं जाने देतीं; इसी लिये तुम्हारे घर आये हैं; हम स्नान संध्यादि सब कर चुके हैं।" अनसूयाने तीनों मूर्तियोंको आसन दे पाद्य अर्घ्यसे पूजा करके

पाक परोसना चाहा, तब वे कहते हैं कि " अरी सुंदरी ! तुम्हारे रूप का सौंदर्य देख हमारे मनमें कुछ औरही अभीष्ट निवास करने लगाहै, हम बहुत दूरसे आये हुए अभ्यागत हैं, इसलिये तुम नग्न हो करके अन्न परोसोगी तो हम बहुत संतुष्ट होंगे; और यदि यह स्वीकार न हो तो वैसा उत्तर दो कि हम दूसरे स्थानको जायँ । "

अनसूयाने मनमें सोचा कि, ये ब्राह्मण मेरे मनकी दृढ़ता देखने आये हैं, कोई अवतारी पुरुष जान पड़ते हैं; अतिथिका विमुख होकर जाना तो अच्छा नहीं, जब कि मेरा मन निर्मल है, तो दीन कामदेव क्या कर सकता है ? यह सोच उनसे " तथास्तु " कहके आप पाक-स्थानको गई, वहाँ पतिके चरणोंका ध्यान करके, अपने शरीरसे वस्त्र निकाल, एक ओर रख, नग्न होकर अन्नसामग्री लाई; तबलों इधर तीनों देव बालकके स्वरूपमें हो गये और छोटे बच्चोंकी भाँति जहाँके तहाँ लुढ़कने और रोने लगे । अनसूया उनको देख भयचकित हुई, और वस्त्र पहिनकर बच्चोंको गोदमें लेकर खिलाने लगी, उनको स्तनपान कराया; स्तनपान करनेसे बच्चोंकी क्षुधा शांत हुई, वे खेलने लगे । जिनके उदरमें चौदह भुवन, और सात समुद्र बड़वाग्नि सहित निवास करते हैं, जो रात दिन सृष्टिको उत्पन्न करनेका कार्य करते हैं, जो कालाग्नि सर्व जगत्‌का संहारकर्ता है, उनकी क्षुधा एक स्त्रीके स्तनपान करानेसे शांत होती है; यह कितना आश्चर्य है ? परंतु नहीं, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है; यह पतिव्रत धर्मका प्रभाव है; यह अत्रि मुनिके तपका सामर्थ्य है । उन त्रिमूर्तिको पालनेमें सुलाके अनसूया गाना गा रही थी, इतनेमें अत्रि मुनि आये; उन्होंने जब यह दशा देखी तो ध्यान करके जाना कि भगवान् त्रिमूर्तिकी लीला और दुर्दशा है । तब मुनिने उनको दंडवत् प्रणाम किया, तीनों मूर्तिने पालने में अपना बालस्वरूप ज्योंका त्यों स्थित रखके प्रसन्न चित्त होकर अपने वास्तविक स्वरूपोंसे मुनिके सन्मुख प्रगट होके कहा, "हे मुनि ! हे अनसूया !! तुम दोनों धन्य हो !! हम तुम्हारी भक्ति देख संतुष्ट हुए हैं । अब जो इच्छा हो वरदान माँगलो । " मुनिने अनसूयासे कहा, "जो इच्छा हो माँगलो" अनसूयाने कहा 'आप मेरे प्राणेश्वर बने रहैं; इससे अधिक और कुछ नहीं चाहती; आप पुत्र माँग लीजिये ! ' तब मुनिने भगवान्‌से प्रार्थना कियी कि हे "प्रभु ! तीनों बालक मेरे पुत्र बन

के मेरेही यहाँ निवास करें !" तीनों देवता " तथास्तु " कहकर अपने अपने स्थानको चलेगये । पीछे वरदानके अनुसार वे तीनों अत्रि मुनि के यहाँ बालककी भाँति प्रतिपालित हुए; तीनोंके नाम ये रखेगये- ब्रह्माकी मूर्तिका नाम चंद्र, विष्णुकी मूर्तिका नाम दत्त, शंकरका नाम दुर्वासा । दुर्वासाने अपनी मातासे हाथ जोड़के प्रार्थना कियी कि आज्ञा हो तो मैं तीर्थाटन और अनुष्ठानादिको जाऊँ ! चन्द्रने कहा चन्द्रमंडलमें निवास करनेकी आज्ञा हो । नित्य मुझे आपका दर्शन होता रहेगा । इस प्रकार ये दोनों तो चलेगये; विष्णुकी मूर्तिने सर्व काल मुनिके घर निवास किया। वे ही "त्रिमूर्ति गुरु दत्तात्रेय" के नाम से प्रसिद्ध हुए; यह ही श्रीगुरु नृसिंहसरस्वतीके मूल पीठ थे ।

विष्णुशर्मा गुरुके आद्य पीठकी कथा सुनकर बहुत आनन्दित हुए उन्होंने फिर पूछा कि "हे स्वामी ! आगे श्रीगुरुके अवतार और चरित्र किस प्रकार हुए ? सो भी कृपा करके वर्णन कीजिये । "

अध्याय ५

श्रीपाद स्वामीका जन्म ।

सिद्ध मुनिने कहा:-पूर्व दिशामें पीठापुर नामका एक नगर है जहाँ, आपस्तंब शाखाका अपल नामका एक उत्तम कुलीन ब्राह्मण रहता था; उसकी भार्या सुमता महा आचारवती और पतिव्रता थी। वह अतिथि और अभ्यागतोंकी पूजा भक्तिभावसहित किया करती थी। एक दिन श्रीगुरु दत्तात्रेय अतिथिका वेष करके उसके द्वारपर उपस्थित हुए उस दिन उसके घर अमावास्याका श्राद्ध था; श्राद्धके दिन जबलों ब्राह्मण भोजन न करलेते हैं, तबलों गृहस्थ अतिथियों और अभ्यागतों को भिक्षा नहीं देते हैं; परंतु सुमताने अतिथिको विमुख जाने देना अनुचित समझ गुरु दत्तको भिक्षा दे दी। यह देख श्रीगुरु बहुत प्रसन्न हुए; तत्काल त्रिमूर्तिका स्वरूप धारण करके दर्शन दिया, और कहा " हे मातः जो इच्छा हो मांगो " पतिव्रताने दौड़कर चरण पकड़ लिये और प्रार्थना कियी कि "हे जगन्निवास! हे कृपासागर !! आपकी लीलाका कौन वर्णन कर सकता है ? आपने ध्रुवको अचल पद दिया, आप हीने विभीषणको लंकाका राज्य दिया, आप भक्तोंके आधार

हैं, उनके दुःख निवारण करनेके अर्थ आप जन्म धारण करते हैं, आपका कहना कभी मिथ्या नहीं हो सकता है, आपने मुझे जननी कहा है सो अपने वचनको सत्य कर दीजिये, मुझे बहुत पुत्र उत्पन्न हुए, परंतु वे उत्पन्न हो होकर मृत्युके मुहँमें चलेगये, और जो कुछ बचते हैं तो वे नेत्र पादादिसे हीन रहते हैं, पुत्रके विना मेरा जीवन व्यर्थ है; सो हे पुराणपुरुष ! मुझे आप हीके ऐसा ज्ञानवान् और जगद्वंद्य पुत्र प्राप्त हो " गुरुने प्रसन्न होकर कहा "तुमको अवश्य पुत्र प्राप्त होगा, जो तुम्हारे वंशका उद्धार करेगा, तुम्हारे कुलकी कीर्ति बढ़ावेगा, ज्ञानमार्गमें महा बली होगा, तुम्हारी दीनता दूर करेगा।" यह कहके दत्तात्रेय स्वामी अदृश्य हो गये। विप्रकी वनिता विस्मय करती हुई अपने पतिके समीप जाकर सब वृत्तान्त सुना गयी। जो सुन ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ, बोला "अवश्य ही दत्तात्रेय स्वामी थे, वह ही अनेक प्रकारके भिक्षुकोंका वेष धारण कर करके नित्य भिक्षाके निमित्त फिरा करते हैं, करवीर और माहुर क्षेत्रमें उनके स्थान हैं; अब जब कभी कोई भिक्षुक आवे मुझसे पूछनेकी अपेक्षा न करके सदा भिक्षा दे दिया करो।"

स्त्रीने कहा "इतनी अवज्ञा अवश्य हुई है कि ब्राह्मण भोजन होने के पहिले भिक्षा दे दियी गयी।"

पतिने कहा "जिन पितरोंके निमित्त श्राद्ध करते हैं वे तृप्त होगये; पितरोंके नामसे श्राद्ध किया जाता है वह भगवान् विष्णुको पहुँचता है, साक्षात् विष्णु त्रिमूर्तिके अवतारने स्वयं हमारे घरपर भिक्षा माँगी इससे सब पितर कृतार्थ होकर निश्चय ही स्वर्गस्थ हुए: चिंता करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है।" इस प्रकार दोनों समाधान पूर्वक निश्चिन्त रहे। कुछ काल बीतनेपर शुभ दिन वह स्त्री गर्भिणी हुई और नव मास पूर्ण होनेपर उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। जातकर्म करके जातक देखागया, ज्योतिषियोंने कहा "यह पुत्र बड़ा तपस्वी, बली और दीक्षाकर्ता जगद्गुरु होगा। श्रीगुरु दत्तात्रेयका प्रसाद रूप था, इसलिये " श्रीपाद " नाम रखागया; माता पिताको असीम आनंद हुआ।

पुत्र सात वर्षोंका हुआ, तब मौंजीबंधन कियागया, उसी समय उसने चारों वेद, मीमांसा, तर्कादि मुखाग्र करलिये; यह देख नगरके सब

लोग विस्मित हुए, कहने लगे कि यह कोई अवतारी पुरुष है। पीछे श्रीपादने अच्छे अच्छे विद्वानोंको आचार, व्यवहार, प्रायश्चित, वेदांत, भाष्य, वेदार्थादि सब कुछ पढ़ाना आरंभ किया।

श्रीपाद सोलह वर्षोंके हुए, तब उनके विवाह कर देनेका विचार किया गया; उस समय श्रीपादने कहा "मेरी स्त्री तो वैराग्य है। उससे यदि मेरा लग्न निश्चित होगा तो मैं अभी स्वीकार कर सकता हूं; अन्य स्त्रियाँ तो मेरी माताके समान हैं" यह कहकर श्रीपादने उत्तर दिशाकी ओर तपस्याके अर्थ जानेका अपना निश्चय प्रकट किया; जिसको सुनते ही उनकी माता तो मूर्छित हो भूमिपर गिरगयीं, पिता व्याकुल हो आँखोंसे आँसू बहाते हुए कहने लगे "हम तो आशा कर रहे थे कि तुम हम वृद्धोंकी दीनता दूर करके हमारा रक्षण करोगे। हम सब दुःख भूल चुके थे, परंतु तुमने फिर यह ऐसी दुःखद बात सुनायी! अब हम इस वृद्धावस्थामें किस प्रकारसे अपना जीवन व्यतीत करेंगे? हमारे इन नेत्रपादहीन लड़कोंका जन्म किस प्रकार बीतेगा?"

इस प्रकारके करुणापूर्ण वचन सुन श्रीपादने माताको सावधान किया, दोनोंके आँसू अपने हाथसे पोंछे, और कहा "हे माता! हे पिता! आप किसी प्रकारकी चिंता न कीजिये। आप पुत्र पौत्रादि सहित सुखसे रहेंगे। इस लोकमें सुख भोगकर अंतमें मोक्ष पावेंगे आपके दोनों पुत्र शतायुषी होंगे, इनके भी संतति होगी, जिसको आप अपनी आँखोंसे देखेंगे। वंशपरंपरासे अखंड लक्ष्मी इनके घर निवास करेगी, इनके सब वंशज वेद शास्त्रोंके ज्ञाता होंगे। अब मुझको आज्ञा दीजिये।" यह कहके श्रीपादने अपने भाइयोंकी ओर कृपादृष्टिसे देखा और वे दोनों तत्काल नेत्र पादादि अवयवोंसे युक्त और वेद शास्त्रोंके ज्ञाता होगये; दोनोंने दौड़के श्रीपाद स्वामीके चरणोंपर मस्तक रख प्रार्थना कियी कि आपने हमारा जीवन सुखी कर दिया।

माता पिताने सोचा कि दत्तात्रेयके वरदानसे यह साक्षात् उन्हींका अवतार हुआ है, इसकी अवज्ञा की जायगी तो अवश्य विघ्न होगा; इसलिये दुःखितांतःकरणसे उनकी प्रार्थना ही करते रहे; अचानक श्रीपाद स्वामी अदृश्य होगये। उन्होंने वैराग्य रूप स्त्रीसे

विवाह किया, इसलिये उनका नाम श्रीपाद, श्रीवल्लभ प्रसिद्ध हुआ। पीछे वे काशी पुरीमें कुछ काल गुप्त रूपसे रहे, वहाँसे बदरिकाश्रम को जाकर बदरीनारायणके दर्शन किये, भक्तजनोंको दीक्षा देते हुए अनेक तीर्थोंकी यात्रा करते हुए आप गोकर्ण क्षेत्रमें पहुँचे।

अध्याय ६

रावणका शिवजीसे आत्मलिंग हस्तगत कर लेना।

विष्णुशर्माने पूछा कि "इस क्षेत्रका नाम गोकर्ण किस कारण से रखा गया?" सिद्धने कहा:—पुलस्त्य नामके ऋषिकी भार्या कैकया परम शिवभक्त थी, सर्वकाल शिवजीकी पूजामें निमग्न रहती थी; पूजा किये विना भोजन नहीं करती थी। एक दिन पूजा करनेके लिये उसको शिवलिंग नहीं मिला तव व्रतभंग होनेके भयसे मृत्तिका का लिंग बनाके उसकी पूजा कियी।

कैकयाका पुत्र रावण अत्यंत क्रूर था, उसने माताको प्रणाम करके पूछा कि क्या कर रही हो? माताने कहा "मृत्तिकाके लिंगकी पूजा कर रही हूँ। रावणने कहा "तुम बड़ी अभागिनी हो जो मुझ जैसे पराक्रमी पुरुषकी माता कहलाती हुई मृत्तिकाके लिंगकी पूजा करती हो।" फिर पूछा कि "इस मृत्तिकाके लिंगकी पूजा करने से कौन फल मिल सकता है? कैकयाने कहा "कैलासमें रहनेके लिये स्थान मिलता है।" रावण बोला" मैं कैलास सहित महादेवको तुम्हारे सम्मुख उपस्थित कर दूंगा और तुम प्रत्यक्ष महादेवकी अपने घर बैठे पूजा किया करना! क्यों वृथा मृत्तिकाके लिंग बनानेका कष्ट उठा रही हो" यह कहकर रावण उसी समय मनके समान वेग से कैलासपर पहुँचा, क्रोध करके शुभ्र और रमणीय कैलास पर्वतको हिलाया, और दशों मस्तक पर्वतसे टिकाके बीसो भुजाएँ घुटनोंपर रखकर पर्वतको ज्यों ही उठाना चाहा, सातों पाताल डोलने लगे, शेषका फण हिलने लगा, कूर्म भयके मारे काँपने लगा, देवता सब भयचकित हुए, अमरपुर और स्वर्ग कंपित होने लगा, मेरु गड़-गड़ाके गिरा चाहता था, कैलासके सब देवतागण भयभीत हो कहते थे कि प्रलय हुआ चाहता है. पार्वतीने भयभीत हो शंकरसे कहा कि

" आप यहाँ निश्चिंत होकर बैठे हैं, कैलासकी कुछ सुध आपको नहीं है, कि उसपर क्या क्या अरिष्ट आ रहे हैं, सारे नगरमें आतंक व्याप रहा है; उसका शीघ्र प्रतीकार कीजिये! और सब देवताओंकी रक्षा कीजिये!" यह सुन शंकरने बायें हाथसे रावणको दशों शिर और बीसों भुजा सहित पकड़के कैलासके नीचे फेंक दिया। तब रावणने "शिव शिव" कहके शंकरका ध्यान किया, और स्तवन किया, कि " हे शूलपाणि !! हे जगद्रक्षक शिरोमणि !! मैं आपकी शरण हूँ। मैं आपका भक्त हूँ, रक्षा कीजिये।" शंकरजी भोले भाले! इतने हीमें प्रसन्न हो उन्होंने लंकेश्वरको छोड़ दिया। फिर उसने शंकरका स्तोत्र करके अपने दशों मस्तकोंमें छिद्र किये, उनमें अपनी आँतोंके तंतु पिरोकर वीणा बनाया; और उसपर सामवेद और सब प्रकारके राग, रागिणी, गणागण, ताल, स्वर पूर्वक समयोचित गाकर शंकरको प्रसन्न किया। शंकरने उसकी ऐसी दृढ़ भक्ति देख कहा " जो इच्छा तुम्हारी हो माँगो"। रावण ने कहा "हे पिनाकपाणि !! सब प्रकारका वैभव आपने मुझे पहिले ही दे दिया है; अब मेरी इच्छा यही है कि कैलास लंकामें चले; मेरी जननीका व्रत है कि नित्य आपकी पूजा करे उसका मनोरथ पूरा कर दीजिये।"

शिवजीने कहा " कैलासको वहाँ ले जानेसे कोई अधिक लाभ न होगा, हमारा आत्मलिंग ले जाओ; वही तुम्हारी सब कामनाएँ पूरी कर सकता है। यह लिंग नहीं, हमारा प्राण है, इसकी त्रिकाल पूजा रुद्राभिषेकसे कियी जाय और एक सो आठ बार मंत्रका जप किया जाय तो तीन वर्षोंमें मनुष्य मेरा स्वरूप हो जाता है; जिसके पास यह लिंग रहेगा उसकी कभी मृत्यु नहीं होगी, इसको ले जाते हुए मार्गमें पृथ्वीपर न रखना।"

इस प्रकार शंकरसे लिंग पाकर रावण महेश्वरको दंडवत् प्रणाम करके हर्षित होता हुआ चला।

इधर नारद मुनि यह वृत्तान्त जानकर इंद्रपुरीमें पहुँचे; उन्होंने इंद्र से कहा, " आपका सब ऐश्वर्य आज शंकरने रावणको दे डाला; उसको अमर कर दिया: अब देवताओंका छुटकारा रावणके हाथसे होनेका नहीं; अब आप लंकापुरीको जाइये! रावणकी सेवा करने का निश्चय कीजिये! उर्वशी, रंभा, मेनकादि अप्सराओंको लंकेशको

भेंट कर दीजिये।" यह सुन इंद्र भयभीत हुआ, और नारद मुनि को साथमें लेकर वह ब्रह्मदेवके पास गया; ब्रह्मदेव उन दोनोंको साथ लेकर भगवान् विष्णुके पास गये; और भगवान्ने शंकरसे कहा, "आपने यह क्या किया? प्राणलिंग रावणको क्यों दे दिया? रावण महा दुष्ट और क्रूर राक्षस है, जिसने सब बड़े बड़े देवताओंको सेवक और बंदी बना रखा है; उनका छुटकारा अब किस प्रकारसे होगा?" महेश्वरने कहा "उसकी दृढ भक्ति देख मैं ये बातें भूल गया था, और भूलमें लिंग दे बैठा; अभी कुछ बिगाड़ नहीं हुआ है, केवल पाँच घटिकाएँ बीती हैं; अभी आप चाहें तो कोई युक्ति लड़ा सकते हैं।"

विष्णु भगवान्ने सुदर्शन चक्रको तत्काल भेज दिया, वह सूर्यका मार्ग रोककर स्थित हुआ, जिससे सूर्यनारायण आगेको न बढ़ सके। फिर उन्होंने नारद मुनिसे कहा "आप शीघ्र पहुँचकर रावणको मार्गमें बातोंमें उलझाइये, जिससे वह लंकामें न जाने पावे, इतनेमें मैं और कोई युक्ति सोचता हूँ।" नारद मुनिने उस ओर गमन किया।

इधर विष्णुने विघ्नेश्वर (गणपति) को बुलाया; और उनको सब वृत्तान्त समझाकर कहा "आपकी सब लोग कार्यके आरंभमें पूजा करते हैं, परंतु रावण कभी नहीं करता है; आज उसके कार्यमें आप विघ्न कीजिये। प्राणलिंग यदि लंकामें पहुँच जायगा तो रावण किसीके अधिकारका न रहेगा।"

गणपतिने कहा "वह सब कुछ आपके इच्छानुसार मैं करूंगा पहिले मेरे लिये मोदकोंका प्रबंध पूरा पूरा होना चाहिये।"

विष्णु भगवान्ने मोदक, पंच खाद्य, गुड़, गरी, छुहारा, अनार ऊख, भिगोये हुए चने (छौंके हुए) आदि अनेक प्रकारके खाद्य चर्वण उनके लंबोदरके प्रणामसे, उनकी इच्छाके अनुसार उनके साथ देदिये; तब गजाननने प्रसन्नतासे कहा अब आपका कार्य मैंने जाना है।

गजानन अपने साथके पदार्थोंको चबाते हुए ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण करके वेगसे चले—

इधर नारद मुनिने रावणके सम्मुख उपस्थित हो कहा "लंकेश! कहाँसे आ रहे हो? रावणने यथावत् वृत्त निवेदन किये; नारदने कहा "यदि शंकरने अपना आत्मलिंग तुमको देदिया है तो निःसंदेह तुम

वड़े ही भाग्यशाली हो !! वह लिंग अवश्य ही शंकरके कहे अनुसार फल देने वाला है; यदि तुम मुझको लिंग दिखाओ तो मैं उसके चिह्न पहचानकर उसके लक्षण और गुण विस्तार सहित तुमसे कहूंगा कि लिंग कैसे उत्पन्न हुआ, और वह पहिले किसने पाया; इसकी कथा बड़ी ही अपूर्व है; स्वस्थ चित्तसे बैठकर सुनो।" यह कहकर नारद-मुनिने कथा कहना आरम्भ किया।

नारद मुनिने कहाः—एक समय ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों भगवान् पारधको गये, तो उन्होंने एक मृग मारा जो सब सौरभोंको निगलकर कालाग्निकी भांति ब्रह्मांडके एक खंडपर पड़ा था। उसके तीन सींग थे, और तीन ही लिंग थे; तीनों भगवानोंने एक एक लिंग लेलिया। उन्हींमेंका यह शंकरका लिंग है। जो इसकी तीन वर्ष पूजा करता है, वह निर्गुणी वेदमूर्ति ईश्वर होजाता है जहाँ यह लिंग रखा जायगा, वही स्थान कैलास हो जायगा; ऐसी इस लिंगकी महिमा है। इन्हीं लिंगोंके कारणसे ब्रह्मा, विष्णु, महादेवका इतना महत्व है। "और भी एक बात है सुनो," इतनाही नारद मुनि कह पाये थे कि रावणने कहा मुझको शीघ्र जाना अवश्य है, अब अधिक कथा वार्ता नहीं सुनना चाहता।

नारद मुनिने कहा "संध्याका समय होगया है, मैं भी संध्या करने जाता हूँ; इतना तुमसे कहे देता हूँ कि संध्याको अतिकाल हुआ चाहता है, इसलिये मार्ग चलना बंद करके संध्या कर लेना उचित है। परंतु रावणने इस कहनेपर लक्ष्य नहीं दिया; उसको तो लिंगको लंका में ले जानेकी पड़ी थी, वह क्यों इनकी पट्टीमें आने लगा ? नारद मुनि संध्या करनेके लिये नदीके तीरकी ओरको और रावण लंकाकी ओरको चले।

गोकर्ण महाबलेश्वरकी स्थापना।

कुछ दूर जानेपर रावणने सोचा कि संध्यावन्दन तो करना अवश्य है, परंतु वह शिवलिंगको नीचे रखे बिना किस प्रकार हो ? लिंगको नीचे रखनेकी शंकरने मनाई कर दियी है, संध्या न करूँ तो व्रतभंग होगा, फिर क्या करना चाहिये ? इस प्रकार मनमें सोच कर रहा था, इतनेमें एक ब्रह्मचारी मार्गमें समिधा तोड़ता हुआ दिखाई पड़ा (यह

विघ्नेश्वर हैं) यहाँ रावण और गजाननका सम्वाद सुनने और अपना कार्यफल देखनेके लिये विमानोंपर बैठकर आकाशमें सब देवता स्थित थे।

(रावण ब्रह्मचारी सम्वाद)

रावण—तुम किनके पुत्र हो और किस कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है ?

ब्रह्मचारी—किस लिये पूछते हो ? क्या मेरे बापके सिरपर तुम्हारा कुछ ऋण है ?

रावण-(हँसकर और उनका हाथ पकड़के) नहीं! नहीं! पुत्र !! कहो तुम किनके पुत्र हो? मैं यों ही प्रीतिसे पूँछता हूँ; और कोई कारण नहीं हैं; तुम डरो मत।

ब्रह्मचारी-मेरे पिता जटाधारी भस्मांगी रुद्राक्ष पहिननेवाले रात दिन भिक्षा माँग अपना निर्वाह करने वाले हैं; मेरी जननी जगन्माता है। तुम क्यों पूँछते हो ? मुझको तुमसे भय लगता है मेरा हाथ छोड़ दो, मुझको जाने दो।

रावणने कहा हे ब्रह्मचारी ! जब कि तुम्हारा पिता दरिद्र है, भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करता है, । तो तुमको उससे कुछ सुख नहीं मिल सक्ता है; इससे तो अच्छा होगा यदि तुम मेरे साथ मेरे घर लंकापुरको चलो। वह सारा नगर रत्नजडित और बड़ा ही सुंदर है; वहाँ देवताओंकी पूजा किया करना । जो जो तुम चाहोगे सो सब वहाँ तुमको दिया जावेगा। मेरे साथ ही चले चलो।

ब्रह्मचारी-लंकामें तो राक्षसी बहुत हैं, वे मुझको भक्षण करजायँगी; मैं नहीं जाऊंगा। मेरे हाथ छोड़दो, मुझको जानेदो । मुझे भूख लगी है। (यह कह खलीतेसे खाद्य निकाल फंके मारना आरंभ किया)

रावण-सुनो ब्राह्मण ! अच्छा तुम्हारा इच्छा नहीं है तो नहीं सही ! परंतु मेरा थोड़ासा कार्य तो कर दो; जबलों मैं संध्या करूं यह शिवलिंग अपने हाथमें लिये रहो।

ब्रह्मचारी-यह बखेड़ा मैं न उठा सकूंगा; लिंग न जानूँ कितना भारी होगा; मैं बालक अरण्यवासी हूँ। मैं लिये न रह सकूंगा (यह कहके मानों सचमुच अनेक प्रकारसे अपना पीछा छुड़ानेकी उससे प्रार्थना किया)

रावणने भी अनेक प्रकारसे उनकी विनती करके अंतमें उनको लिंग सौंप दिया, और आप संध्या करने चला गया। रावणने उधर संध्या करना आरंभ किया, इधर ब्रह्मचारीने उसके पीछे यह कहना आरंभ कर दिया, कि लिंग बहुत भारी हो रहा है; मुझसे थामा नहीं जाता है; शीघ्र सम्हालो नहीं तो मैं पृथ्वीपर रखदूंगा। रावण शीघ्रतासे आया ही चाहता था, तबलों तीन बार गणेशजीने पुकारके अंतमें रावणके पहुँचनेसे पहिलेही लिंगको पृथ्वीपर रखदिया; और देवताओंने आकाशसे गणेशजीपर फूलोंकी वर्षा कियी।

रावण ज्यों ही संध्या समाप्त करके आया लिंगको पृथ्वीपर रखा देख बहुत व्याकुल हुआ, और उसने गणपतिको घूँसे लगाये। वह हारखदन बनाकर झूठ मूँठ रोतेहुए वहाँसे चल दिये। चलते समय कहा " अभी मैं अपने पितासे जाकर कहता हूँ। मुझे क्यों मारा ?"

रावणने अपने सब हाथोंसे कसके पकड़कर लिंगको उठाना चाहा तो वह पृथ्वी सहित उठने लगा! बहुत कुछ बुद्धि दौड़ायी परंतु पृथ्वीको छोड़ लिंग नहीं उठा; रावण महाबली रहा इसी कारणसे वह लिंग " महाबलेश्वर " कहलाये; उठाने और खींचनेसे मुड़कर गायके कान जैसा आकार हो गया इसलिये " गो कर्ण महाबलेश्वर " कहलाये।

अध्याय ७

गोकर्ण महाबलेश्वरकी महिमा।

विष्णु शर्माने पूछाः-हे स्वामी! सबसे पहिले इस क्षेत्रमें किस भक्तने क्या फल प्राप्त किया? उसका वृत्तान्त कहिये।

सिद्धने कहाः-हे शिष्य! प्रचीन काल में इक्ष्वाकु राजाके वंशमें, एक मित्रसह नामका राजा सब शास्त्रों और धर्मोंका जाननेवाला और बड़ा विचारवान् तथा प्रतापवान् हुआ था; वह एक दिन मृगया के लिये गहन वनमें गया, वहाँ उसने एक भयंकर दैत्यको देखा; उसको राजाने अपने बाणोंसे यमराजके घर पहुँचा दिया। दैत्यने मृत्युके समय अपने भाईसे कहा " यदि तुम मेरे सच्चे बन्धु हो तो मेरा पलटा राजासे अवश्य लेना। "

दैत्यका भाई अपने भाईके दुःखसे बड़ा दुःखी हुआ। क्रोध कर अपने भाईके कथनानुसार पलटा लेनेकी इच्छासे, मायासे मनुष्य रूप धारण करके, राजाके घर सेवक बन रहा। बहुत दिनोंलों भली भाँति सेवा करता रहा। एक दिन राजा अनेक दुष्ट पशुओंका वध करके घरपर लाया, और श्राद्धके दिन वसिष्ठादि प्रसिद्ध ऋषियोंका निमंत्रण करके, भोजन सामग्री जुटा देने और पाकक्रियाकी व्यवस्था करनेके कार्यपर उस नररूपधारी कपटी दैत्यको नियत किया। उस दुष्टने धोखेसे नरमांस पकवा दिया। ज्यों ही वह वसिष्ठ मुनिके आगे पाहेले ही परोसा गया, उन्होंने क्रोध करके राजाको शाप दिया, कि "इसी समय तुम ब्रह्मराक्षस हो जाओ।" राजा भी क्रोधवश हो हाथमें जल लेकर मुनिको शाप देनेके लिये उद्यत हुआ। उसने कहा "मैंने कोई अपराध नहीं किया, किस कारण शाप दिया?" राजाकी स्त्रीने समझाया कि गुरुको शाप देना बहुत अनुचित है, उनकी शरण जाना चाहिये। तब राजाने अपनी स्त्रीका कहा मान अंजुलीका जल अपने पैरोंपर डाल लिया, जिससे उसका नाम कल्मषपाद प्रसिद्ध हुआ।

राजा गुरुके शापसे ब्रह्मराक्षस होकर पृथ्वीपर विचरने लगा, और उसकी पत्नीने वसिष्ठ मुनिकी शरण जाकर करुणायुक्त वचनोंसे उनका स्तवन किया; जिससे मुनि शांत हुए। उन्होंने कहा बारह वर्ष पर्य्यन्त शाप भोग कर फिर राज्य करेगा।

राजा ब्रह्मराक्षसके वेषमें निर्जन वनमें निवास करता और नित्य अनेक जीव जंतुकी हिंसा करता। इस प्रकार कष्टसे दिन बिताने लगा। एक दिन एक ब्राह्मण दम्पती (स्त्री पुरुष) जाते हुए ब्रह्मराक्षसने देखा, और उनको जैसे बाघ पशुओंको पकड़ लेता है इस प्रकार पकड़ लिया। ब्राह्मणीने अपने पतिको पकड़ा देख अत्यन्त शोकाकुल होकर राक्षसके चरणोंपर गिर कर प्रार्थना कियी "मेरे सौभाग्य का रक्षण करो! अथवा मुझे भक्षण कर जाओ, परंतु मेरे पतिको छोड दो!! पतिके बिना स्त्रीका जीवन व्यर्थ होता है" ब्राह्मणी अनेक प्रकार से गिड़गिड़ायी, परन्तु उस पाषाण हृदयने कुछ न सुना, ब्राह्मण को भक्षण कर लिया।

ब्राह्मणीने निराश और क्रोधित होकर राजाको शाप दिया, कि वसिष्ठ मुनिके शापसे छूट कर जब तुम अपने राज्यपर पहुंचोगे,

तब तुम अपनी स्त्रीसे संग करते ही मृत्युके ग्रास हो जाओगे। यह कह कर वह विप्रपत्नी अपने पतिकी अस्थियां एकत्र करके अग्निमें प्रवेश कर गयी।

राजा बारह वर्ष बीत जाने पर शापमुक्त होकर अपनी राजधानी को गया। उसने अपनी भार्याको इस नूतन शापका वृत्तान्त कह सुनाया जिसको सुनकर वह अत्यन्त दुःखित हुई; और अपने प्राण त्यागका निश्चय किया। राजा भी दुःखी हुआ, उसने मंत्रीसे परामर्श लिया। मंत्री बहुत चतुर था, उसने कहा सब तीर्थोंकी यात्रा करनेसे आपका दुःख दूर होगा।

मंत्रीके कहे अनुसार राजा तीर्थयात्राको गया, अनेक तीर्थोंमें दान, धर्म, यज्ञ कर्मादि करता हुआ, मिथिलापुरीमें पहुंचा; वहां एक वृक्षके नीचे विश्रामके अर्थ बैठ गया। कष्ट दूर न होनेके कारण से निराश हो चिंता करने लगा। इतनेमें वहां अचानक गौतम मुनि आये। उन्होंने राजासे सब वृत्तान्त सुन कर कहा "तुम्हारा कष्ट निवारण करनेके योग्य बहुत श्रेष्ठ तीर्थ गोकर्ण महाबलेश्वर हैं; वहां पर भगवान् मृत्युंजय सदाशिव निरंतर निवास करते हैं, उनके स्मरण मात्रसे ब्रह्महत्यादि पापोंका नाश हो जाता है; जैसे अँधेरी रातमें कितनी ही अग्नि जलाई जाय अथवा चंद्रोदय भी होता है, परन्तु जब लों सूर्योदय नहीं होता अंधकारका नाश नहीं होता। वैसे ही सब तीर्थों की यात्रा करनेपर भी पाप दूर न हो तो गोकर्ण महाबलेश्वरके दर्शन करने चाहिये। सहस्र ब्रह्महत्याके पाप भी एक गोकर्ण महाबलेश्वर क्षेत्रमें प्रवेश करते ही नष्ट हो जाते हैं और मनुष्यका आत्मा शुद्ध हो जाता है। परदारादि षट् पाप भी इससे दूर हो जाते हैं; इंद्रादि सब देवता, और वसिष्ठादि ऋषि, सिद्ध, यक्ष, गंधर्व, किन्नरादि वहां तपश्चर्या करके फल प्राप्त कर लिया करते हैं। जो जो कामनाएँ मनुष्य करता है; सो सब पूर्ण होती हैं। वहां सब लोग अपने अपने नामसे लिंग स्थापन करते हैं; ब्रह्मा, विष्णु, कार्तवीर्य, गणपति, धर्म, क्षेत्रपाल, दुर्गा आदि अनेकोंने वरदान पा पाकर अपने अपने नामके लिंग स्थापन किये हैं; इसीसे वहां पर असंख्यात लिंग और तीर्थ हैं। तात्पर्य यह कि वहांपर जितने पाषाण हैं सबको शिवलिंग और जितने जलाशय हैं सबको तीर्थ जानो।

राजाने कहा, हे मुनि! इस स्थानका अनुभव पहिले किसको हुआ है? सो कृपा कर कहिये।

चांडालिनका उद्धार।

ऋषिने कहा, हे राजा! असंख्य जनोंको अनुभव हुआ है, मैं स्वयं वहां गया था, और जो कुछ मैंने देखा वही तुमसे कहता हूं। जब मैं वहां गया था उस समय और भी अनेक पुरुष आये थे; एक दिन मध्याह्नके समय मैं एक वृक्षकी छांहमें बैठा था, जहां एक वृद्धा, अंधी, कोढ़ी चांडालिनी भी आ पहुँची। इसके सारे अंगमें कोढ़ था, जिसमें कृमि पड़ गये थे, पीब और रक्तसे दुर्गंध फैल रही थी, कई दिनोंसे वह निराहार थी, इस कारणसे अशक्त हो गयी थी, मुंह में दांत नहीं था, और वह सूख गया था, गंडमाला और कुक्षिके रोग से भी वह पीड़ित थी, कफ़से उसका गला भर गया था, पहिननेके लिये उसके पास वस्त्र भी नहीं था, शौचकी व्याधिसे वह मृतप्राय हो रही थी; ऐसी वह चांडालिनी, जिसके मस्तक पर केश भी नहीं थे, चुड़ैलकी सी आकृतिवाली बारबार पृथ्वीपर गिरती, पड़ती, उसी वृक्षकी छायामें मेरे समीप आकर लेट रही, और थोडी ही देरमें मर गई। ज्यों ही उसने प्राण छोड़ा उसके लिये आकाशसे हाथोंमें त्रिशूल खट्वांग और टंकायुध, मस्तक पर मुकुट, ललाटमें चंद्रमा, कानोंमें कुंडल धारण करके, चंद्रके समान दिव्य कांति वाले, शिवजी के दूत विमान लेकर उतरे। मुझे विस्मय हुआ। तब मैंने शिवदूतों से पूछा कि भला यह पापिनी, अधमा किस प्रकारसे विमानके योग्य हुई? श्वानको सिंहासन पर बैठाना किस प्रकारसे योग्य हो सकता है? न तो यह शिवजीका ज्ञान रखती थी, न कोई जप, तप, दान, पुण्य, यज्ञ, योग, साधन जानती थी; केवल पाप ही का पर्वत थी; यह कैसे शिवलोककी अधिकारिणी बनायी गई?

शिवदूतोंने कहा:—सुनिये, मुनि! "पूर्व जन्ममें यह एक ब्राह्मणकी कन्या थी, इसका नाम "सौदामिनी" था, यह चंद्रमाके समान कांति वाली अत्यंत सुंदर स्वरूपवती थी; जब यह विवाहके योग्य हुई, उस समय एक ब्राह्मणसे इसका विवाह किया गया; कुछ काल बीतनेपर इसका पति किसी व्याधिसे पीडित होकर मर गया। पतिके मरण

से दुःखी हो यह कुछ काल पर्य्यन्त अपने पिताके घरपर खेल करती रही; पीछे तारुण्यकी चंचलतासे यह अपने धर्मको सम्हाल न सकी, परपुरुषोंको देख देख यौवन प्रबल होने लगा, जिसके कारणसे उन्मत्त होकर वह गुप्तरूपसे व्यभिचार करने लगी । हे मुनिवर्य ! पाप छिपा नहीं रहता; जब उसकी जातिके लोगोंने जाना, तो उसको बाहिष्कृत कर दिया । अब वह निःशंक होकर व्यभिचार करने लगी; और उसी नगरमें एक तरुण सुंदर स्वरूप बनियाकी कुलस्त्री होकर रही । उस शूद्रसे एक पुत्र हुआ । कहाहै—" स्त्रियः कामेन नश्यंति ब्राह्मणो हीन सेवया । राजानो ब्रह्मदंडेन यतयो भोग संग्रहात् ! " अर्थात् स्त्रियोंका कामसे, ब्राह्मणोंका हीन जातिके लोगोंकी सेवा करनसे, राजाओंका ब्राह्मणोंके क्षोभसे, और यतियोंका विषयभोगसे नाश होता है । उस शूद्रके संपर्कसे यह स्त्री भी नित्य मांस मदिराका प्रयोग करने लगी । एक दिन मदिराकी धुनमें ऐसी उन्मत्त हुई कि भेड़के धोखेमें गैयाके बछवेको मारकर मांस पका खाया, और बछवेका शिर दूसरे दिनके लिये रख छोड़ा । संध्याके समय मदके उतर जानेसे सुधमें आई, और गैया दूहनेके अर्थ बछड़ेको देखने गई, तब बछड़ेके स्थानमें भेडको बंधा पाया । अब उसने जानाकि बछवा मार खाया, और " शिव शिव !! हे चंद्रमौलि !! " कह कर वह दुराचारिणी विलाप करने लगी । उसने पतिके भयसे बछवे का शिर, हड्डियोंमें धर चर्मको भूमिमें गाड़ दिया । अड़ौस पड़ौस के लोगोंपर यह प्रसिद्ध किया कि बछड़ेको बाघ ले गया, और यही कह कह कर वह रोया करती ।

कितने ही दिन उस शूद्रके घरमें रही । पीछे जब मृत्यु हुई तब नरक में डाली गई; अनेक वर्ष वहां नाना प्रकारकी यातनाएँ भोग कर दूसरे जन्ममें चांडालके घर जन्मी । उत्पन्न होते ही अंधी हुई, रंगमें कज्जल के समान काली थी; माता पिताने कुछ दिनों मोहसे उसको पाला, उनकी मृत्युके उपरान्त इसके समस्त शरीरमें कोढ़ हो गया, स्वजनोंने इसका परित्याग कर दिया, तब भिक्षा मांग २ कर निर्वाह करती रही, कुछ काल बीतनेपर भिक्षाके द्वारा भी अन्न वस्त्र नहीं मिलने लगा, क्षुधासे सर्वकाल पीड़ित रहने लगी, वृद्धा हुई । सब शरीरमें रक्त और पीबसे दुर्गंधि आती थी ।

जब माघ मासमें नगरके लोग गोकर्ण महाबलेश्वरकी यात्राको चले तो यह भी उनके साथ चल निकली। यात्रियोंसे करुणा वचन बोलके, रो रोके, उनके मार्गमें गिरकर, उनका हाथ खींच कर, भिक्षा मांगती थी। सबसे कहती थी कि मेरी ओर देखो! मैंने दान पुण्य नहीं किया, इसीसे मेरी यह दुर्दशा हुई है; इसका विचार करो, मैं वस्त्रके बिना शीतसे, और अन्नके बिना भूखसे कितना कष्ट उठा रही हूँ? रोग से दुःखित हूँ!

और दिन तो वह किसी प्रकार भिक्षा पा जाया करती थी। परंतु शिव रात्रिके दिन उसको किसीने भिक्षा नहीं दियी। उस दिन यात्रियोंसे भिक्षा मांगती थी तो वे कहते कि आज महा शिवरात्रि (उपवास करने का दिन) है, आज कैसी भिक्षा? एकने हँसते हुए एक बिल्वपत्र उसके हाथमें डाल दिया; चांडालिनने बिल्वपत्रको सूँघा; और यह कहकर कि यह तो खानेका पदार्थ नहीं है, फेंक दिया; वह पत्र अकस्मात् शिवजीके लिंगपर गिर गया। भिक्षा न मिलनेसे दिन भर उपवास हुआ, बिल्वपत्र फेंकने और वह शिव लिंग पर गिरा इससे शिवजीकी पूजा हुई, और क्षुधाके कारण रात भर नींद न आनेसे जागरण हुआ; इस प्रकार अकस्मात् और अनायासमें शिवरात्रिके पुण्य दिन उस चांडालिन से व्रत हो गया। अंतमें पहिलेके रोग और क्लेशके अतिरिक्त क्षुधा जागरण आदिसे अधिक पीड़ित होकर त्यक्त प्राण हुई, अर्थात् वह सब पापोंसे मुक्त हुई, वह ईश्वर की प्रीति पात्र हुई"।

इस प्रकारसे शिवदूतोंने मुझसे कहा, और चांडालिनपर अमृत सींचा, जिससे उसका शरीर दिव्य हो गया; फिर उसको विमानमें बैठाकर वे शिव लोकको ले गये। हे राजा! गोकर्ण महाबलेश्वर ऐसा पुण्य स्थान है; तुम शीघ्र ही वहां जाओ। वहां पहुँचते ही तुम्हारे सब पाप दूर हो जायँगे, और फिर तुम इस लोकमें सुखसे जन्म बिता-कर अंतमें उत्तम गति पाओगे। राजा मुनिके कहे अनुसार गोकर्ण क्षेत्रको गया और सब पापोंसे मुक्त हो गया।

सिद्धने कहा, गोकर्ण महाबलेश्वरकी ऐसी महिमा है इसी कारण से श्रीपाद स्वामीने वहाँ निवास किया था।

अध्याय ८ ।

विष्णु शर्माने पूछा, हे महात्मा ! श्रीगुरु श्रीपाद स्वामी गोकर्ण क्षेत्रमें कितने दिनोंलों रहे ? और आगे क्या क्या हुआ ? सो अनुग्रह करके कहिये ।

महात्माने कहा "तीन वर्षलों श्रीगुरू वहां रहे, फिर वहांसे श्रीगिरि पर आये । जिनके चरणोंके दर्शनमात्रसे सब तीर्थोंके सेवनका फल मिलता है, उनको तीर्थाटन करनेसे क्या प्रयोजन था ? परंतु केवल भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही उन्होंने ऐसा करना स्वीकार किया था । चार मासतक वहां पर रहे । फिर निवृत्ति संगमपर आये, वहाँके साधुओंको दर्शन देकर फिर कुरवपुरमें आये ।

कुरवपुर बड़ा पुण्य क्षेत्र है, जहां कृष्णा गंगा पुण्यपावन नदी वहती है, इस क्षेत्रकी महिमाका वर्णन करना सर्वथा अशक्यहै तथापि संक्षेपसे कहता हूँ ।

मंदमति ब्राह्मणका षट्शास्त्रज्ञाता हो जाना ।

कुरवपुरमें एक ब्राह्मणकी स्त्री बड़ी सुशीला, सदाचारिणी और पतिव्रता अंबिका नामसे प्रसिद्ध थी; उसके पुत्र उत्पन्न होते ही मरजाया करते थे पूर्वार्जित पापोंकी निष्कृतिके अर्थ उसने तीर्थोंमें स्नान किया । तब उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह भी मंदमति । माता पिताने प्रेमसे उसका पालन पोषण किया, बड़ा होनेपर उसका व्रतबंध किया, और विद्याभ्यासका आरंभ कराया; अनेक प्रकारसे पढ़ाया परंतु उसको विद्या नहीं आयी । ब्राह्मणको भी चिंता हुई, उसने बहुत ताडना भी कियी, जिससे अन्य लोगोंको दुःख होता था, परंतु फल कुछ नहीं हुआ । ब्राह्मणसे उसकी स्त्रीने कहा " बहुत कष्टसे हमे यह पुत्र प्राप्त हुआ है, इसके प्रालब्धमें विद्या नहीं है तो कष्ट करना व्यर्थ है; रात दिन इसी प्रकार ताड़ना करनेसे किसी दिन मुझे अपना प्राण छोड़ना होगा ।" ब्राह्मणने पुत्रके विषयमें चिंता छोड़ दियी । कुछ काल बीतनेपर ब्राह्मण व्याधिसे पीड़ित होकर मर गया । ब्राह्मणी पुत्र सहित भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करने लगी ।

पुत्र विवाहके योग्य हो गया, परंतु किसी ब्राम्हणने उससे अपनी

कन्याका विवाह करना स्वीकार नहीं किया; किन्तु मतिहीन होनेके कारण सब लोग उसकी निंदा किया करते थे। कहते थे कि तुम पत्थर होते तो अच्छा था, तुमने अपने कुलको कलंक लगाया, हे मूर्ख ! तुम्हारे पिताका यश चारोंराष्ट्रोंमें प्रसिद्ध है, वे वेद शास्त्र और धर्मके ज्ञाता थे। उनके घर तुमने जन्म लेकर उनको अधोगतिमें डाला; भिक्षा मांगकर निर्वाह करनेसे तुम क्यों नहीं लजाते ? तुम पशुओंकी भांति जन्म विता रहे हो। इस प्रकारके निंदात्मक शब्द सुनते सुनते उस ब्रह्मचारीको वड़ी ग्लानि हुई; उसने अपनी मातासे कहा "मैं अब अरण्यवास करके अपने प्राणोंका परित्याग करूंगा ! मेरी यह देह किस कामकी है ? जो तुम्हारा पोषण न कर सके? सब लोग मेरी निंदा करते हैं सो अब सुनी नहीं जाती।" उसका ऐसा कथन सुन माता बहुत दुःखी हुई, उसका कंठ भर गया, दोनों दुःखी होते हुए गंगाजीके प्रवाहमें गये। वहां अकस्मात् सद्गुरू श्रीपाद योगीश्वरका दर्शन हुआ; दोनोंने चरणोंपर गिरकर दंडवत् प्रणाम किया, और हाथ जोड़ प्रार्थना कियी कि हे भगवन् ! हमारी इच्छा है कि गंगामें देह त्याग करें परंतु आत्महत्या करना महापातक है, इसलिये हमको ऐसा वरदान दीजिये कि इस पातकसे हम बचे रहें।

श्रीपाद स्वामीने देहत्याग करनेका कारण पूछा तब ब्राह्मणी सब वृतांत सुना गई। फिर उसने प्रार्थना कियी कि आगेके जन्ममें मुझे ऐसा मन्दमति पुत्र उत्पन्न न हो ! किन्तु आपके जैसा पूज्यमान पुत्र पाना चाहती हूं, जिसको उसके बचपन ही में मैं सब लोगोंसे पूजित देखूँ; और फिर मेरा उद्धार भी हो जाय, जिससे यह संसार चक्र छूट जाय; और सब पितर स्वर्गमें निवास करें।

योगीश्वरने कहा, हे सती ! एक ग्वालने जिस प्रकारसे ईश्वरकी आराधना कियी, उसी प्रकारसे तुम भी करो। श्रीहरिके समान पुत्र तुमको उत्पन्न होगा। ग्वालकी आराधनाकी प्रकार विस्तारसे मैं कहता हूं सुनो।

प्रदोष पूजाकी महिमा।

उज्जयिनी नगरीमें चंद्रसेन नामका राजा बड़ा धर्मपरायण था, उस राजाका मणिभद्र नामका एक मित्र था, वह सर्वकाल ईश्वरकी भक्ति

करता था, उसने ईश्वरको प्रसन्न करके उनसे एक चिंतामणि पाया; उस मणिका यह गुण था कि लोहा उसको स्पर्शकरते ही सुवर्ण होजाता था और उसका यह भी गुण था, कि जिसके पास वह मणि रहता था वह जो जो इच्छाएं करता था वे सब पुर्ण होती थीं। उसके गुण सुनकर अनेक राजाओंने माणिभद्रसे मणि ले लेनेके लिये अनेक प्रकार के प्रयत्न किये। सामोपचारसे मणि मिलनेकी आशा न देखी, तब सब राजाओंने मिलकर उज्जायिनी नगरपर चढ़ाई कियी; अपार सैन्य लेजाकर नगरको घेर लिया।

उस दिन शनिवार त्रयोदशी (शनिप्रदोष) थी राजा शंकरकी पूजा कर रहा था; राजाओंसे नगरके घेर जानेका वृतांत्त सुनकर भी राजा मनमें किसी प्रकारकी चिंता अथवा शंका न करके हर्ष पूर्वक एक चित्तसे पूजा करता रहा। उस समय एक ग्वालका पुत्र अकस्मात् वहां पूजा समारंभ देखनेकी इच्छासे जा पहुंचा; पूजा समारंभ देख उसने अपने साथी दूसरे लड़कोंसे कहा कि इसी प्रकारका खेल खेलना चाहिये। सब लड़कोंने मिलकर एक पाषाणमें शिवालयकी कल्पना करके और कल्पना ही का शिवलिंग, गंध, पुष्प, धुप, दीप नैवेद्यादि बनाकर सबके सब काल्पनिक पूजासमारंभमें निमग्न हुए। जब भोजन का समय हुआ, सबकी माताएं भोजन करनेके लिये बालकोंको बुलाने गयीं, तब सब बालक चले गये, केवल वह ग्वालकुमार नहीं गया; उसकी इच्छा काल्पनिक शिवमंदिर और पूजाको छोड़ जानेकी नहीं थी; इतना ही नहीं किंतु वह शिवजीके ध्यानमें निमग्न था। वह खेल नहीं खेल रहा था। वह अनन्य भावसे शिवजीकी भक्ति कर रहा था। उसकी माताने उसको पीटा, उसका खेल (नहीं, पूजा) तोड़ फोड़कर भ्रष्ट कर डाला, पाषाणोंको दूर फेंक दिया।

बच्चेको बहुत खेद हुआ, वह विलाप करता हुआ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। थोड़ी देर पीछे जब सावधान हुआ, तब शिवजी का ध्यान करता हुआ प्राणत्याग करनेको उद्यत हुआ। एक अज्ञान बच्चेके मनकी ऐसी दृढ़ता देख भगवान् चन्द्रमौलि प्रसन्न हुए। उस स्थान पर सूर्यके समान तेजस्वी माणिके शिवलिंग सहित रत्नजड़ित शिवालय बन गया। उसमें से शिवजी प्रगट हुए। उन्होंने बच्चेको कंठसे लगाया और उसको निजस्वरूपके दर्शन देकर कहा " मैं तुम्हारी

भक्ति देखकर प्रसन्न हुआ हूं, जो तुम्हारी इच्छा हो वरदान मांग लो ”

बच्चेने प्रार्थना कियी कि हे भगवन् ! मेरी माताने आपकी पूजा भ्रष्ट कियी, इसके लिये उसपर क्रोध न कीजिये, क्षमा कीजिये ।

महेश्वरने तथ स्तु कहकर यह भी कहा कि तुम्हारी माताके उदरसे भगवान् विष्णु अवतार लेंगे, और तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण होंगी, तुम्हारे वंशको सब प्रकारके सुखोपभोग मिलेंगे, यह कहकर शिवजी उसी शिवालयमें अदृश्य हो गये। शिवलिंग सहित शिवालय उस ग्वालके द्वारपर बना रहा । ग्वालके बालकने अपने घरपर पहुंचने पर मातासे सब वृत्तांत निवेदन किया ।

शिवालय और शिवलिंग निर्माण होने, और ग्वालिनके वरदान पानेके वृत्तान्त तत्काल नगरमें प्रसिद्ध हो गये। ग्रामवासी और वे राजा लोग जो सैन्य लेकर आये थे विस्मित हुए। राजा लोग द्वेष छोड़ छोड़ कहने लगे कि यह नगर बड़ा पवित्र है। इसका राजा बड़ा पुण्यवान् है। उससे विरोध करना उचित नहींहै, किंतु उसके दर्शन करने चाहिये-

फिर सब राजाओंने चंद्रसेनसे भेंट कियी और परस्पर बहुतेरी प्रेमकी वातें हुई। सबनें शिवालय औरशिवलिंगको देखा, शिवालय के रत्नोंका प्रकाश सूर्यके प्रकाशके समान दिखाई दिया, इसी प्रकार का ग्वालका घर भी रम्य और सुशोभित दिखाई पड़ा। राजाने ग्वालिन से सब वृत्तान्त पूछा सो उसने विस्तार सहित कह सुनाया। सुनकर सब राजा बहुत संतुष्ट हुए। चंद्रसेनने ग्वालको सब ग्वालोंका राजा बनाया, अनेक देश जायगीर दिये और बहुत संपत्ति भी दियी। इसके उपरान्त सब राजा अपने अपने देशको चले गये।

श्रीपाद स्वामीने ब्राह्मणकी स्त्रीसे कहा हे सती! इस प्रकारसे प्रदोष पूजा करके ग्वालने फल पाया। तुमको भी अपनी मनस्कामना पूर्ण करनेके अर्थ मनका संशय छोड़ शनिप्रदोषके दिन व्रत और शंभुकी पूजा करनेका नियम करना चाहिये; अवश्य तुम्हारा पुत्र ज्ञानी होगा।

यह कहते हुए विप्रवनिताकी दीन दशापर महात्माको अधिक दया उत्पन्न हुई। उन्होंने उसके पुत्रको अपने समीप बुलाया। उसके मस्तकपर अपना दहिना हाथ रखके आशीर्वाद दिया। और ब्राह्मणी का पुत्र तत्काल महा ज्ञानी हो गया।तीनों वेद उसको मुखाग्र हो गये।

वेद, शास्त्र, तर्क, भाषा, आदि अनेक विषयोंका वह ज्ञाता हो गया। ब्राह्मणीको बहुत आनंद हुआ। उसने स्वामीकी स्तुति किया कि "हे भगवान् आप साक्षात् ईश्वरके अवतार हैं! मेरे पूर्व पुण्यके प्रभावसे ही आप मेरे कष्ट निवारण करनेके अर्थ मनुष्य देह धारण करके मुझको दर्शन दे रहे हैं। अब मैंने निश्चय किया है कि सदैव प्रति शनि-प्रदोषको व्रत और शिवजीकी पूजा किया करूंगी; मुझे आपके वचनों पर विश्वास है; मेरा पुत्र अवश्य ही आपके समान ज्ञानी होगा।"

इस प्रकारसे प्रार्थना करके नित्य स्वामीकी पूजा करना आरंभ किया। और शनिप्रदोषको भी स्वामी ही की पूजा करती थी। पूजा और व्रत के प्रभावसे वह द्विजपुत्र बहुत ज्ञानी हुआ, सब ब्राह्मणोंमें अधिक पूज्य व सम्मान्य समझा जाने लगा, उसका विवाह होगया, पुत्र पौत्रादिक सहित उसने अपना जन्म सुखसे बिताया। जिसपर श्रीगुरूकी कृपा होती है उसको इसी प्रकारका सुख प्राप्त होता है।

अध्याय ९।

विष्णुशर्माने सिद्ध मुनिसे पूछा, हे दयाघन! महात्मा श्रीपाद स्वामीके कुरवपुरमें निवास करते हुए आगे और क्या क्या हुआ सो कृपा करके कहिये।

धोबीको राज्यप्राप्तिका वरदान।

सिद्ध मुनिने कहा "स्वामी नित्य गंगा स्नानको जाया करते थे; जिनका केवल दर्शन करना ही गंगास्नानसे अधिक फलदायक होता है, उनको गंगा स्नान करनेकी कौन आवश्यकता थी? परन्तु जन व्यवहार और लोगोंपर अनुग्रह करने तथा गंगाकी महिमा बढ़ानेके अर्थ वे नित्य विधिपूर्वक स्नान किया करते थे।

एक दिन गंगाजीके मध्य प्रवाहमें स्वामीको स्नान करते हुए एक धोबीने देखा। तबसे वह नित्य तीनों काल महाराजके दर्शनको जाया करता था; और दंडवत् प्रणाम करके मनोवाक्काय कर्मसे उनकी भक्ति किया करता था; उनका आँगन नित्य बुहारके उसपर पानी सींचा करता था। उसकी सेवा और उसका भाव देख स्वामी बहुत

संतुष्ट रहते थे। इस प्रकार बहुत काल बीतनेपर वसंत ऋतुमें एक दिन धोबी नित्यके अनुसार गंगाजीके तटपर कपड़े धो रहा था, उसी समय वहां पर एक म्लेच्छ राजा अपनी रानियों, दास, दासी, सैन्य, मंत्री आदि सहित जलक्रीडाके अर्थ आया। उसकी चद्रंकी जैसी कांतिवाली सुंदर स्वरूप स्त्रियोंने बहुमूल्य रत्नोंके आभूषण पहिने थे, उसके असंख्य हाथी घोड़े भी बहुमूल्य आभूषणोंसे सजे थे। उसके साथमें अनेक प्रकारके सुस्वर वाद्य थे, जिनका नाद चित्तको बहुतही आनंद देता था। इस प्रकारके समरोहके साथ राजाको अपनी स्त्रियाँ और परिवार सहित प्रवाहमें जलक्रीड़ा करते देख धोबीका मन भी उस ऐश्वर्यकी ओर खिंच गया। धोबी अपने मनमें बहुत विस्मित होकर कहने लगा। " इस राजाके वैभवकी अपूर्व शोभाने मेरा मन छीन लिया है! धन्य है यह राजा! यह ईश्वरका बड़ा भक्त है! जिनके प्रसादसे इसको इतना विभवे मिला। किस प्रकारसे इसको सदूगुरुका दर्शन हुआ होगा? जिनके उपदेशसे इसको ईश्वर भक्तिका अवसर मिला? अहा हा!! कैसे कैसे बहुमूल्य, मनोरम और सुंदर वस्त्राभरण राजा और रानी पहनते हैं? इतने वैभव और सुखके साथ जो जीवित है, उसीका जीवन सुफल है। मुझ जैसे जन्म दुःखीका जीवन तो पशुके जीवनके समान है।"

इस प्रकार दुखितांतःकरणसे मनमें चिंता कर रहा था, इतनेमें भक्तवत्सल सदूगुरू श्रीपाद स्वामी उसके मनका भाव जानकर प्रगट हो पूछने लगे " हे वत्स! किस चिंतामें तुम इस समय निमग्न हो रहे हो?"

धोबीने कहा " स्वामी!! राजाका वैभव देख मन अत्यंत संतुष्ट हुआ! यह राजा अवश्य ही श्रीगुरूका परम भक्त है! पूर्व कालमें इसने भगवदुपासना कियी है, उसीका फल यह पा रहा है; मुझ जैसे अविद्याग्रसित पापी प्राणीके ऐसे भाग्य कहाँ है? जो अपनी इंद्रियोंको ऐसे राजविलासोंका उपभोग करा सकूँ? इसलिये मैं आपके चरणोंके दर्शन हीसे सुखी रहूंगा " महात्माने कहा " हे वत्स! तुमने इस जन्ममें बहुत कष्ट उठाया है, अब तुमको भोगविलासकी इच्छा हुई है, सो तुम यथेच्छ राज्यभोगका अनुभव करके इंद्रियोंको संतुष्ट करो! क्योंकि असंतुष्ट इंद्रियां मोक्षकी बाधक होकर आगेके जन्ममें भी

बाधा करेंगी ।" धोबीने कहा "हे भक्तवत्सल ऐसा करनेसे तो आपके चरणोंके दर्शन मुझसे छूट जांयगे, जो किसी प्रकार मेरे लिये हितकारक प्रतीत नहीं होता है। आपका मुझपर पूरा पूरा अनुग्रह है, इसलिये मुझे ऐसा ज्ञानोपदेश कीजिये कि जिससे आपके चरण मुझसे न छूटें।"

स्वामीने कहा, "इस बातकी तुम किंचिन्मात्र भी चिंता न करो। तुम वैदुरा नामक नगरीमें म्लेच्छ राजाके घर जन्म पाओगे, वहां पहुंचकर हम तुमसे भेंट करेंगे, उस समय तुमको ज्ञान प्राप्त होगा. हमको और भी अनेक कार्य करने अवश्य हैं, जिनके लिये अवतार धारण करना होगा; और सन्यासीके वेषमें नृसिंह सरस्वती अपना नाम प्रगट करके तुमसे भेट करेंगे। अब तुम यह बताओ कि तुम इसी जन्म राज्यपभोग करना चाहते हो या दूसरे जन्ममें ?"

धोबीने कहा "हे दयासिन्धु! यह जन्म तो बीत चुका, इस वृद्धावस्थामें राज्यभोग सुखकर नहीं हो सकता है, वह तो तरुणावस्था ही में आनंद देता है" महात्माने कहा "तथास्तु" धोबीने तत्काल प्राण छोड़ वैदुरा नगरीके म्लेच्छ राज के घर जन्म लिया।"

सिद्ध मुनिने कहा हे तात! कुरवपुरमें रहते हुए महात्मा श्रीपाद स्वामीने अनेक कार्य किये। वहां उनकी महिमा बहुत बढ़ी, जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन करना अशक्य है, तथापि संक्षिप्त रूपसे आगे वर्णन किया जावेगा।

श्रीपाद स्वामी बहुत काल वहां निवास करके आश्विन बदी १२ मृग नक्षत्रको गंगामें अदृश्य हो गये। लौकिक दृष्टिसे तो वे अदृश्य प्रतीत होते हैं, परंतु जो पुरुष श्रीगुरुकी भक्ति निर्मल अंतःकरणसे करता है, उसको अब भी वे उसी स्थानमें दर्शन देते हैं।

अध्याय १० ।

चोरोंसे वध किये गये गुरु भक्तका पुनर्जीवन ।

सिद्ध मुनिने कहा,—"काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुआ वल्लभेश नामका एक सुशील और आचारवान् ब्राह्मण व्यापार द्वारा अपना उदर पोषण किया करता था, और प्रतिवर्ष श्रीपादकी यात्राको जाया करता था।

एक समय वह व्यापार करनेके अर्थ देशांतरको गया। घरसे निकलते समय उसने अपने मनमें निश्चय किया कि " व्यापारमें पूर्ण रूपसे लाभ होगा तो श्रीगुरु स्वामीके संस्थानमें उपस्थित होकर एक सहस्र ब्राह्मणोंको इच्छाभोजन कराऊंगा।" वह श्रीपाद वल्लभ स्वामीके चरणोंका ध्यान करता हुआ देशांतरमें उद्योग करता रहा, उस व्यापारमें उसको सौगुना लाभ हुआ, और मनमें अत्यंत आनंद पाकर उसने मनौती पूरी करनेके अर्थ अपने साथमें द्रव्य लेकर श्रीपाद क्षेत्रकी ओर यात्रा कियी। चोरोंने किसी प्रकार यह वृत्तांत जान लिया; वे भी कपटी वेषसे यात्राका निमित्त कहकर उसके साथ हो लिये, और मार्गमें रातके समय अचानक द्विजका मस्तक काट द्रव्य हथियाकर चलते बने। भक्तोंके रखवाले भगवान् श्रीपाद स्वामी भला यह अत्याचार कब सह सकते थे? तत्काल जटामंडित भस्मांकित वेष धारण करके त्रिशूल खट्वांग हाथमें लेकर चोरोंके सन्मुख आये और त्रिशूलसे उनका शिरच्छेद करने लगे; चोरोंके शिर काट लिये, एक चोर हाथ जोड़ स्वामीसे प्रार्थना करने लगा कि " हे प्रभु! मैं निरपराधी हूँ। मैं नहीं जानता था कि ये लोग ब्राह्मणका वध करेंगे; नहीं तो मैं इनके साथ न आया होता।" तब स्वामीने ब्राह्मणका गला जोड़के अभिमंत्रित भस्म ब्राह्मणके (प्रेतके) कंठमें लगा दिया, जिससे वह तत्काल सजीव हो गया, और स्वामी अदृश्य हो गये। जो चोर ब्राह्मणके पास था उसने सब वृत्तांत ब्राह्मणको कह सुनाया। ब्राह्मणको निश्चय हुआ, कि अवश्य ही वह साक्षात् त्रिपुरारि थे।

चोरसे अपना द्रव्य पाकर ब्राह्मण कुरवपुरको गया, श्रीपाद स्वामीकी पादुकाकी भक्तिपूर्वक पूजा करके सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन कराया। इस प्रकार सहस्रशः दुःखी जन मनौतियां करके अपनी कामनाएँ सुफल करते हैं, ऐसी कुरवपुरकी अपार महिमा है।

अध्याय ११

स्वामी नृसिंहसरस्वतीका जन्म।

शिष्यने सिद्ध मुनिसे विनंति कियी कि हे भगवन्! आगे अवतार

परंपरा किस प्रकारसे चली सो कहिये।

सिद्ध मुनिने कहा "हे वत्स! पहिले जिस विप्रस्त्रीकी कथा मैंने तुमसे कही है कि गुरुके उपदेशसे वह शनिप्रदोष और शिवपूजा करती रही थी, उसको देहवासना शेष रही और वह मृत्युको प्राप्त हुई; तव वह उत्तर देशमें करंज नामक नगरमें वाजसनेय शाखाके एक ब्राह्मणके घर जन्मी। उसका नाम भवानी रखा गया।

भवानी अपने माता पिताके घरपर स्नेहपूर्वक प्रतिपालित होती हुई विवाहके योग्य हुई, तब उसी गाँवमें माधव नामके ब्राह्मणसे उसका विवाह कर दिया गया।

यह ब्राह्मण शिवजीका भक्त था, विवाहके पश्चात् दोनों पतिपत्नी अनन्य भावसे प्रेमपूर्वक ईश्वरकी पूजा और शनिप्रदोषका व्रत सोलह वर्ष पर्य्यन्त करते रहे; पीछे वह ब्राह्मण-कन्या, जो अव माधव शर्माकी पत्नी है गर्भवती हुई। दौहदके समय उसके मनोरथ ब्रह्मज्ञान कहने ही पर समाप्त हुए; तीसरे पाँचवें और सातवें मासमें जनरीत्यनुसार तथा शास्त्रानुसार उत्साह किये गये। नव मास पूर्ण होते ही भवानी प्रसूता हुई और उसके पुत्र उत्पन्न हुआ।

यह पुत्र जन्मते ही ओंकार (ॐ) का उच्चार करने लगा, सोलह वर्षलों ईश्वरकी उपासना करनेपर जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका माता पिताको अत्यानंद होना स्वाभाविक ही है। ब्राह्मणोंको यथेच्छ दक्षिणा दियी गयीं, जन्मनाम शालिग्राम देव और प्रसिद्ध(पुकारनेका) नाम नरहरि हुआ। पुत्रका ओंकार उच्चारण सुनके सब नगरवासी विस्मित हुए। ज्योतिषियोंने कहा "वहुत ही उत्तम लग्नमें पुत्र उत्पन्न हुआ है, वड़ा ही प्रतापी ऋषि होगा! जिस पुरुषपर इसका अनुग्रह होगा वह अखिल जगत्में वंदनीय हो जायगा। अष्ट सिद्धियां और नव निधियां इसके द्वारपर सर्वकाल निवास करेंगी, इसके दर्शन मात्रसे पतित जन पुनीत होंगे; ऐसा पुत्र तुम्हारे यहां उत्पन्न हुआ है, मानों तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण हो गये।" यह सुन माता पिताको असीम संतोष हुआ, उन्होंने दृष्टि लग जानेके भयसे अनेक उपचार किये, और पीछे भी वे करते रहे।

साक्षात् जगदुत्पादकको किसकी दृष्टि लग सकती है? परंतु माता पिता उनके स्वरूपको क्या जानते थे? वे अपनी ओर से लौकिक

धर्मके अनुसार प्रयत्न करते रहे।

अब शालिग्राम देव दिन दिन बढ़ने लगे। एक दिन उनकी माताने अपने पतिसे कहा, बच्चेको स्तनके दूधसे तृप्ति नहीं होती, या तो कोई स्तनपान करानेवाली स्त्री ढूँढनी चाहिये या कोई भैंस लेनी चाहिये; यह संवाद सुन शालिग्राम देव हँसे और लपकके उन्होंने अपनी माता का स्तन दहिने हाथसे स्पर्श किया, तत्काल स्तनसे बत्तीसों धाराएँ वेगसे बहने लगीं, यह चमत्कार देख माता पिता विस्मित और आनंदित हुए। उन्होंने यह चमत्कारिक वृत्तांत किसीपर प्रगट नहीं होने दिया। ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता गया, नये नये चारित्रोंसे माता पिता को आनंदित करता गया! परंतु एक वर्षका हुआ तबलों भी वह ॐ के अतिरिक्त अन्य कोई भी शब्द मुँहसे नहीं बोलता था! माता पिताने उसके बोलनेके अर्थ सात वरसलों अनेक प्रयत्न किये परंतु वह हास्यमुखसे ओंकार हीका उच्चारण करता था, अन्य कुछ भी नहीं बोलता था। उन्होंने जब देखा कि वेटा मूक (गूंगा) है तब उनका सब आनंद जाता रहा और वे दुःखित होकर कहने लगे "अहो!! बड़ा ही अन्याय है कि हमने सोलह वर्षलों शिव गौरीकी सेवा की, त्रयोदशी शिवरात्रिको उपवास किये, वे सब व्यर्थ हुए! एक ही पुत्र हमको प्राप्त हुआ! उसकी भी यह दशा है!! पुत्र उत्पन्न हुआ तब ही से हम आशा करते थे कि यह हमारा संरक्षण करेगा परंतु हमारी सब आशा व्यर्थ हो गई।"

इस प्रकार शोक करते हुए माताको देख नरहरि देवने फिर माता पिताको एक चमत्कार दिखाया! घरमें एक लोहेका दंड था उसको स्पर्श किया और वह तत्काल सुवर्ण हो गया।

यह चमत्कार देख उनको जैसा कुछ आनंद हुआ, उसकी सीमा न रही। अब उन्होंने जान लिया कि यह कोई अवतारी पुरुष हैं! वे प्रार्थना करने लगे "हे तात! हे कुलदीपक! तुम्हारे अवतारसे हमने बहुत सुख पाया। अज्ञानवश अबलों तुमको हम मूक समझते रहे, अब कृपा करके अपनी तोतली बोलीसे हमारे अंतःकरणोंको आनंदित कीजिये।" यह सुन पुत्रने उनको संकेतसे समझाया, कि "मौंजीबंधन हो जानेपर बोलने लगूंगा।" तब जाकर माता पिताको संतोष हुआ।

मौंजीबंधनका उपक्रम किया गया। नगरवासी कहने लगे कि

मूकको किस प्रकार गायत्री उपदेश किया जावेगा ? उन्हींमेंसे एकने कहा:-"हमको इससे क्या प्रयोजन? हमको तो इसी बहानेसे चार दिन मिष्टान्न भोजनका लाभ उठाना है।" चौल और यज्ञोपवीत धारणके पश्चात् मौंजीबंधन हुआ, फिर मंत्रोपदेश हुआ, जिसका उच्चार शालिग्राम देवने मनही मनमें किया। उपदेश होनेके पीछे माताने ब्रह्मचारीको पहिली भिक्षा दियी। उस समय ब्रह्मचारी शालिग्रामदेवने "अग्नि मीड़े पुरोहितम्" इत्यादि ऋग्वेदका उच्चारण किया, दूसरी भिक्षाके समय "इषेत्वादि" यजुर्वेदका, तीसरी भिक्षाके समय "अग्न आयाहि" सामवेदका गायन किया।

जिस बालकको अबलों सब पुरजन मूक समझते थे, उसको विना सिखाये पढ़ाये इस प्रकार वेदोच्चार करते देख सब नर नारी आश्चर्यित और चकित होगये। अब सब लोग शालिग्राम देवको ईश्वरका अवतार और जगद्गुरु मानने लगे, सबने उनको दंडवत् प्रणाम किया। माता पिताके आनंदकी सीमा नहीं थी। परंतु वह आनंद अल्पकालीन ठहरा! क्योंकि उसी समय शालिग्रामदेवने अपनी मातासे कहा "तुमने अभी मुझको भिक्षा मांगनेका उपदेश किया है, सो कदापि मिथ्या नहीं हो सकता है; अब मुझको आज्ञा दीजिये, मैं तीर्थाटन करूंगा।" यह सुनते ही माता पितापर मानों दुःखका पर्वत टूटा पड़ा, कंठ भर आया! बोला नहीं जाता था। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। मूर्छित होकर कुछ देरलों निर्जीवकी भांति पड़े रहे! जब सावधान हुए तब शोकसे विकल होकर बोले "हे तात! हम जानते थे कि ईश्वरकी सेवाराधना सुफल हुई। परंतु वह निरा भ्रम था! अब हमारा दुःख कौन दूर करेगा? हम किसकी शरण जावेंगे? हमारा जीवन किस प्रकार बीतेगा?" इस प्रकार कह कहकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे। तब ब्रह्मचारीने कहा "तुम दुःख न करो! तुमको और भी चार पुत्र उत्पन्न होंगे, वे तुम्हारी सेवा करेंगे। पूर्व जन्ममें तुमने शिवजीकी सेवा पूजा कियी है वह कदापि निष्फल न होगी।" यह कहकर माताके मस्तकपर अपना दहिना हाथ रखा, जिससे उसको पूर्व जन्मका स्मरण और ज्ञान हुआ। अब उसने जाना कि यह पुत्र नहीं है, साक्षात् श्रीपाद स्वामी हैं! भवानीने स्वामीको दंडवत् प्रणाम किया।

ब्रह्मचारीने कहा "हे माता! मैं तो यति हूँ, मैं संसारसे अलिप्त

रहूंगा, मुझको अभी अनेक कार्य करने हैं, जिनके लिये तीर्थयात्रा करनी अवश्य है। इसलिये मुझको आज्ञा दीजिये।" माताने कहा "हे तात! तुम्हारा वियोग हमसे कैसे सहा जायगा? कैसे हमारे प्राण बचेंगे? फिर कब तुम्हारे दर्शन हमको होंगे? धर्मशास्त्रमें तो चार प्रकारके आश्रमधर्म कहे हैं—प्रथम बारह वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य, फिर गृहस्थाश्रम जिसमें अनेक प्रकारके पुण्यकर्म किये जा सकते हैं, इसके पीछे वानप्रस्थ और फिर सन्यास। तुम बचपनमें ही सन्यास ग्रहण करना चाहते हो, यह किस प्रकारसे योग्य हो सकता है? यह तो शास्त्रके विरुद्ध आचरण है।"

अध्याय १२

श्रीपाद स्वामीका माताको उपदेश।

ब्रह्मचारी, जिनको अब सद्गुरु कहना चाहिये, मातासे कहते हैं "तुम धर्मशास्त्रका प्रमाण देती हो सो यथार्थ है, परंतु तुम स्वयं जानती हो कि "अनित्यानि शरीराणि वैभवं नैव शाश्वतम्। नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः"। अर्थात् शरीर अनित्य है, वैभव अशाश्वत है, मृत्यु सर्वकाल ताक लगाये रहती है; इस कारणसे मनुष्यको धर्मका संग्रह करना उचित है; तुम्हारा उपदेश किसी चिरंजीवीको उपयुक्त हो सकता है, मैं तो यह जानता हूँ कि देहका भरोसा नहीं, जबलों देह सुदृढ़ है, जितना बन पड़े पुण्य संग्रह कर लेना चाहिये; जो मृत्युको जीत सकता हो वह शरीरको चाहे नित्य माने। सूर्यका रथ दिन रात चलता रहता है और एक निमिषमें बाईस सहस्र गाँव पहुँच जाता है, इसी प्रकार आयु क्षण क्षणमें जा रही है; मेघकी बूंदें जैसी वृक्षोंके पत्रोंपर अस्थिर रहती हैं, इसी प्रकार मनुष्यकी आयु भी क्षणिक होती है; थोड़े पानीमें मछलियोंकी आयुकी जैसी स्थिति दिखाई पड़ती है, तैसी ही दशा मनुष्यकी आयुकी है; नदियोंसे बहा हुआ जल फिर नहीं लौटता, तैसे ही आयुके बीते हुए दिन फिर नहीं लौटते; पुत्र, दारा, धन, गोधन, घर और आयु इनपर जो मनुष्य भरोसा रखता है, वह पशु समान समझा जाता है; संसारस्वप्न बेलेके फूल अथवा बिजलीकी भांति है,

तत्काल नष्ट हो जाता है; इसलिये तरुणाईमें ही मनुष्यको धर्मकार्य करलेने चाहिये।"

तात्पर्य यह कि अनेक प्रकारसे माता पिताको स्वामीने उपदेश किया, जिसको देख सुन सब सभासदोंने आश्चर्य किया कि अभीतो यह मूक ही था, और इतने हीमें कैसी कैसी तत्वज्ञानकी बातें करने लगा? जब माताने देखा कि कुछ वश नहीं चलता है, तब प्रार्थना कियी कि कमसे कम जबलों मेरे दूसरा पुत्र उत्पन्न न हो ले, तुमको घरपर अवश्य रहना चाहिये! पीछे जैसी तुम्हारी इच्छा हो, कीजियो।" तब स्वामीने एक वर्ष पर्यंत रहनेका वचन दिया।

स्वामीकी विद्वत्ताका परिचय थोड़े ही दिनोंमें ऐसा प्रसिद्ध हुआ कि बड़े बड़े विद्वान् पुरुष उनके शिष्य होकर उनके पास वेदाध्ययन करनेके अर्थ आने लगे।

थोड़े ही दिनोंमें माता गर्भवती हुई, नव मास पूर्ण होते ही एक साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए, गुरुका वचन सत्य हुआ, इसीलिये कहते हैं कि गुरुके वचनोंपर भरोसा रखना चाहिये।

स्वामीने एक वर्षलों पिताके घर निवास करनेका वचन दिया था, तदनुसार एक वर्ष पूर्ण होनेका समय समीप आया, तबलों ये दोनों पुत्र तीन मासके हो गये। अब स्वामीने फिर मातासे तीर्थाटन को जानेकी आज्ञा चाही, और कहा कि "ये तुम्हारे दोनों पुत्र दीर्घायु होंगे इनके अतिरिक्त दो पुत्र और एक कन्या और भी होंगे, तुम्हारा जन्म सुखसे बीतेगा।" माता पिताने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रखके कहा "तुम हमारे कुलदेवता हो, हमको तुम्हारे स्वरूपका ज्ञान नहीं हुआ था, माया मोहसे हमारी बुद्धि वेष्टित थी, इस कारणसे हम तुमको पुत्र भावसे मानते रहे सो क्षमा कीजिये! तुम हमारे वंशका उद्धार करनेके लिये अवतीर्ण हुए हो; जैसे भागीरथने गंगाको लाकर सगरके कुलका उद्धार किया, तैसे ही तुमने हमारी बयालीस पीढ़ियोंको पावन कर दिया। इस धुरंधर संसारसागरमें हम तुम्हारे दर्शन हीसे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं।"

इस प्रकार माता पिताके करुणाभरे वचन सुन स्वामीने कहा, "तुम किसी प्रकारकी चिंता न करो, तुम सदैव लक्ष्मीवान् बने रहोगे, कभी दीनता तुम्हारे समीप न जायगी, और जब जब तुम मुझे स्मरण

करोगे तत्काल मैं तुम्हारे समीप उपस्थित हुआ करूँगा; तुमने ईश्वर की पूजा प्रदोष समय कियी है, उसकी महिमा ऐसी ही है कि इस जन्ममें अनेक प्रकारके सुखोंका उपभोग करके देहके अंतमें पुनर्जन्म होनेका कारण शेष नहीं रहेगा; इक्कीस वर्षमें फिर मैं तुमसे भेट करूंगा, अब मैं बदरिकाश्रमको जाता हूं।"

स्वामीका यात्राको जानेका निश्चय सुन, पुरके सब नर नारी इकट्ठे हुए। कोई कहता था, "इनके माता पिताका हृदय नहीं पाषाण है, जो ऐसे अल्पवयस्क बालकको यात्रा करनेकी आज्ञा देते हैं"। दूसरा कहता था "इनको बालक न समझो! यह ईश्वरके अवतार हैं। भला! सोचो तो सही, आठ वर्षकी वयमें कोई भी बालक अपने आप चारों वेद पढ़ सकता है?" सबने स्वामीको दंडवत् प्रणाम किया, स्वामीने भी प्रणाम किया। पुरजन सब अपने अपने घरको चले गये। माता पिता फिर भी कुछ दूरलों उनके साथ २ गये। स्वामीने उनको निज स्वरूपका दर्शन दिया, उन्होंने दत्तात्रेय स्वरूपमें भगवान् कर्पूरगौरका भी दर्शन किया, साष्टांग दंडवत् करके स्तुति कियी, फिर वे स्वामीसे आज्ञा पाकर संतोष पूर्वक घरको लौट आये।

स्वामीका सन्यासदीक्षाग्रहण।

स्वामी बदरिकाश्रमको जानेके हेतुसे निकले, सो प्रथम तीनों लोकमें अनुपम्य ऐसी अविमुक्त पुण्यपुरी काशी (आनंदवन वाराणसी) पहुँचे; वहाँ कुछ काल रहकर अष्टांग योग द्वारा तपश्चर्या करने लगे। उस समय उस नगरमें और भी अनेक तपस्वी पुरुष अनुष्ठान करते थे। वे स्वामीकी तपश्चर्या देख बहुत विस्मित हुए; उनका स्वार्थत्याग, तीव्र वैराग्य, दृढ़ सन्यास, त्रिकालस्नानका नियम आदि देख सब तपस्वी और सन्यासी उनके दर्शनको आते थे।

इन सन्यासियोंमें एक कृष्णसरस्वती नामके वृद्ध थे, जो बड़े तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी थे; वे स्वामीके साथ बहुत प्रेम रखते थे; और अन्य सब यतियोंसे वे कहते थे कि इनको (स्वामी शालिग्राम देव को) मनुष्य न समझो, यह कोई अवतारी पुरुष दिखाई देते हैं; सब जनोंके लिये इनकी वंदना करना ही भूषणास्पद होगा; यह सच है कि हम संन्यासी हैं, अल्पवयस्क ब्रह्मचारीको नमन करनेसे जन-

समुदाय हमारी निंदा करेगा, परंतु यह महात्मा, लोगोंपर अनुग्रह करनेके योग्य और समर्थ होंगे ; इनसे सन्यास ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये, इनके दर्शन मात्रसे पतित जन पुनीत होंगे ।

इस प्रकारका विचार कर सब यतियोंने मिळकरके स्वामीसे प्रार्थना कियी " हे स्वामी ! जनोपकारार्थ संन्यास ग्रहण करके हम लोगोंका उद्धार कीजिये और हमसे आप पूजा लीजिये । कलियुगमें संन्यासीकी सब लोग निंदा करते हैं, कहा है " अग्निहोत्रं गवालंबं संन्यासं पलपैतृकम् । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत् " । अर्थात् यज्ञ, दान, गवालंवन, संन्यास, पलपैतृक और देवरसे पुत्रोत्पन्न कराना, ये पाँच बातें कलियुगमें वर्ज्य हैं, परंतु यदि ऐसा होगा तो इस आश्रमका उद्धार किस प्रकार होगा ? पूर्व कालमें जब इस मार्गको सब लोग निषिद्ध कहने लगे थे, तब शंकराचार्यने अवतार धारण करके इस मार्गको वेदसंमत सिद्ध कर दिखाया था ; तबसे आजपर्य्यन्त मार्ग चल रहा है; कालि दिन दिन प्रबल हो रहा है, इससे लोगोंमें फिर निंदा होने लगी है, इसलिये सब यतियोंपर दया करके आश्रमका उद्धार कीजिये । "

यतियोंकी इस प्रकारकी विनंति सुनकर कृष्णसरस्वतीको गुरु करके शालिग्रामदेवने उनसे सन्यासदीक्षा ग्रहण कियी और नृसिंहसरस्वती अपना नाम रखाया ।

विष्णुशर्माने पूछा "महाराज ! मुझे एक शंका उत्पन्न हुई है । आपने स्वामीको साक्षात् त्रिमूर्ति दत्तात्रेयका अवतार बताया है अर्थात् वे स्वयं गुरु हैं; उन्हें कृष्णसरस्वतीको अपना गुरु बनानेकी क्या आवश्यकता थी ?

सिद्ध मुनिने कहा "तुम जानते हो कि श्रीरामचंद्रने वसिष्ठ मुनिको गुरु किया था, और भगवान् श्रीकृष्णने संदीपनको । इसका कारण यही है कि उन्होंने मनुष्यका स्वरूप धारण किया था, इसलिये मनुष्योंकेलिये जो मर्यादा नियमित है, उसीके अनुसार व्यवहार करना उचित है; कृष्णसरस्वती वृद्ध तपस्वी थे, इसलिये उनको गुरुत्व देकर उनका स्वामीने सम्मान किया ।

शिष्यने पूछा "हे कृपासिन्धु ! कृष्णसरस्वतीकी आदिपीठ कौन थी ? और फिर पीठपरंपरा किस प्रकार चली ? सो कहिये ।

सिद्धने कहा " आदिपीठ आद्य शंकराचार्य थे, उनके पीछे क्रमशः विश्वरूप, ज्ञानबोधगिरि, सिद्धगिरि, ईश्वरतीर्थ, नरसिंहतीर्थ, विद्यातीर्थ, शिवतीर्थ, भारतीतीर्थ, विद्यारण्य, श्रीपाद, विद्यातीर्थ, मलयानंद, देवतीर्थ, यादवेंद्रसरस्वती, और कृष्णसरस्वती इस प्रकार शिष्य-परंपरा हुई।"

उत्तरीय तीर्थोंकी यात्रा।

संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् संन्यासमार्गकी स्थापना करनेके अर्थ उन्होंने चारों वेदोंका अर्थ कहा, इसीसे काशीपुरीमें वे सबसे अधिक पूजनीय थे। वहाँसे बहुतेरे शिष्योंको अपने साथ लेकर बदरिकाश्रमकी ओरको प्रयाण किया; मेरुको दहिनी ओर छोड़कर अनेक तीर्थोंकी यात्रा करते हुए, अनेक शिष्योंको साथमें लेते हुए, भूमिकी प्रदक्षिणा करते हुए, गंगासागरको पहुँचे। गंगासागरकी तटयात्रा करके स्वामी प्रयागराजमें आये। जिन जिन तीर्थोंको उन्होंने देखा, जहाँ जहाँ जो जो कार्य उन्होंने किये, उन सबका यथा तथ्य वर्णन करना बहुत कठिन है; तथापि संक्षेपसे कहता हूँ।

प्रयागमें माधव नामका एक ब्राह्मण उनके पास दर्शनको आया, उसको ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया और संन्यास देकर उसका नाम माधव सरस्वती रखा इस शिष्यपर अन्य शिष्योंकी अपेक्षा स्वामीका अधिक प्रेम था।"

अध्याय १३

शिष्यने कहा " हे स्वामी! जिस प्राणीने कभी स्वप्नमें भी मठा नहीं देखा, उसको सुदैवसे यदि दूधका सरोवर मिल जाय, तो दूध बार बार पीनेपर भी वह तृप्त नहीं होगा; इस प्रकार गुरुचरित्रका अमृत बार बार प्राशन करनेपर भी मेरा अंतःकरण तृप्त नहीं होता। मैं अल्पज्ञ हूँ, श्रीगुरुकी महिमा नहीं जानता था; अविद्याके अंधःकार में भ्रमण करता हुआ मैं कष्ट उठा रहा था; आपने मेरे अंतःकरणको ज्ञानकी ज्योतिसे प्रकाशित कर दिया! आपकी इस असीम कृपाका प्रतिफल कुछ नहीं है जो मैं दे सकूँ! न इससे मैं उत्तीर्ण हो सकता हूँ! अब प्रयागराजमें माधवसरस्वतीको दीक्षा देनेके पश्चात् क्या हुआ?

सो कृपा करके कहिये ।

स्वामीने कहाः—हे वत्स ! गुरुचरित्र श्रवण करनेकी तुम्हारे अंतःकरणमें विशेष लालसा देख मुझे बहुत संतोष होता है ! निश्चय ही तुम्हारे ऊपर श्रीगुरुकी विशेष कृपा है ।

माधवको उपदेश करनेके पीछे स्वामी कुछ काल वहाँ रहे, उनकी महिमाकी प्रसिद्धि हुई ! असंख्य पुरुष उनके शिष्य हुए, उन सबके नाम कहनेसे विस्तार होगा । उनमें मुख्य माधवसरस्वती और सात और भी थे—बालसरस्वती, कृष्णसरस्वती, उपेन्द्रमाधव-सरस्वती, सदानंद, ज्ञानज्योति, एक और यति, और आठवां मैं था ।

जनक जननीसे स्वामीकी भेट ।

हम लोगोंको साथमें लेकर अनेक तीर्थोंका पर्यटन करते हुए फिर एक बार करंज नगरमें पहुँचे । जनक जननीने उनके चरणोंका वंदन किया ! चारों भाई और भगिनीकी ओर आपने कृपादृष्टिसे देखा, पुरवासियोंको बहुत ही आनन्द हुआ । उन्होंने स्वामीसे भेट करके उनकी पूजा कियी । घर घर स्वामीजी भिक्षाके अर्थ समारोहके साथ बुलाये गये । सब लोग उनको भगवान् विष्णुका अवतार मानते थे । जनक जननी भी भावभक्तियुक्त हो पूजा करते थे, जननीको पूर्व-जन्मका स्मरण हुआ, उसने जाना कि भगवान् चंद्रमौलिकी पूजा सुफल हुई, उसने अपने पति से पूर्वजन्मका वृत्तांत कहा, तब जनक जननीने करुणापूर्ण वचनोंसे श्रीगुरुकी प्रार्थना कियी कि हे स्वामी अब हमारा इस भवार्णवसे छुटकारा कर दीजिये ।

स्वामीने कहा "जिसके कुलमें पुत्र उत्पन्न होकर संन्यास ग्रहण करता है उसकी बयालीस पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है; सो मैंने सन्यास दीक्षा ग्रहण कर लियी है, अब तुमको अपने उद्धारकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं रही, तुमको अवश्य ही ब्रह्मपद मिलेगा, तुम्हारे पुत्र शतायुषी होंगे, वे अष्टैश्वर्य होकर जन्म बितावेंगे, उनके पुत्रोंको भी तुम सुखपूर्वक देखोगे, और काशी क्षेत्रमें अन्त और मोक्ष पाओगे ।"

उनकी भगिनीने जिसका नाम रत्नाबाई था प्रार्थना कियी कि "हे स्वामी ! मैं इस असार भवसागरमें डूब रही हूँ, मेरा उद्धार कीजिये"।

स्वामीने उससे कहा " तुमको अपने पतिकी सेवा करनी चाहिये वही तुम्हारे लिये मोक्षका साधन है; संसार सागरके पार जानेके लिये स्त्रीको पतिकी सेवाकी अपेक्षा अधिक लाभदायक अन्य कोई साधन नहीं है । "

रत्नाबाईने कहा हे स्वामी ! आप भूत, भविष्य और वर्तमान कालके ज्ञाता हैं, सो मेरे प्रारब्धका वृत्तान्त बता दीजिये ।

स्वामीने कहा " तुम्हारी इच्छा तपस्या करनेकी है, परंतु तुमको अपना पूर्वार्जित कर्मभोग करना होगा । पूर्व जन्ममें तुमने गैयाको लात मारी थी, और पड़ोसीकी स्त्री और पुरुषोंमें तुमने कलह कराया था, इस पापके कारणसे तुम्हारे सर्वांगमें कोढ़ होगा; तुम्हारा पति तपस्वी होगा । वह तुमको छोड़ देगा । " यह सुन रत्नाबाई अत्यंत दुःखिनी होती हुई स्वामीके चरणोंपर मस्तक रख स्तुति करने लगी, " हे स्वामी मेरा उद्धार कीजिये ! " स्वामीने कहा हे वत्से ! कुछ काल पर्यन्त तो तुम अच्छी रहोगी, उत्तर वयमें तुम्हारा पति तपस्वी होगा, तिस पीछे तुम्हारी देहमें कोढ़ होगा, भोग भोगनेके पीछे तुम्हारी देह शुद्ध होगी, अंत समय मेरी भेट होगी, जब तुम्हारी स्थिति बिगड़े तुम अमरजा संगम भीमानदीके तीरपर गंधर्वपुर नामके क्षेत्रपर पहुँच जाना । "

पीछे सद्गुरु करंज नगरसे शिष्य मंडली सहित प्रयाण करके गौतमी नदीके तीर नाशिक त्र्यंबक क्षेत्रको पहुँचे । इस क्षेत्रकी अपार महिमा है, संक्षेपसे कहताहूँ ।

नाशिक त्र्यंबक क्षेत्रकी महिमा ।

इस स्थानपर गौतम नामके एक ब्राह्मण महा तपस्वी ब्रह्मर्षि सदा सर्वेश्वरको अपने जटामुकुटमें धारण किये रहते थे, अपने अनुष्ठान स्थानके समीप व्रीहि नामका एक प्रकारका धान बोया करते थे । एक समय उस स्थानके पास रहनेवाले अन्य ऋषियोंने यह विचार किया कि गौतम मुनि किसी प्रकारसे ऐसे संकोचमें डाले जाँय, जिससे वह इस स्थानपर गंगाको ले आवें । गंगा यहाँ आजायँगी तो हम सब लोग पुण्यके भागी होवेंगे। कहा है " या गतिर्योगयुक्तानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ सा गतिः सर्वजंतूनां गौतमीतीरवासिनाम ॥ १ ॥ " अर्थात्

ऊर्ध्वरेत मुनियोंकी योगाभ्यास करनेसे जो गति होती है, वही गौतमी के तीरपर निवासकरनेवाले सब जीवोंकी होती है। यह विचार करके उन ऋषियोंने दूर्वाकी एक गैया वाछा सहित बनाकर उसको मुनिका धान चरनेके लिये जानेकी आज्ञा दयी। गौतम मुनिने धान चरती हुई गैया देख दर्भका पवित्रा उसके प्रतीकारके अर्थ फेंक दिया, जिसकी चोट वज्रके प्रहारके समान गैयाको लगी, जिससे गैयाने उसी समय प्राण छोड़ दिया। इस प्रकार मुनिके हाथसे गोवध होनेका दोष लगाकर ऋषियोंने उनको प्रायश्चित्त दिया, कि वह गंगाजीको लावें, और कहा कि इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारसे शुद्धि नहीं हो सकती।

गौतम मुनिने एक सहस्र वर्ष पर्य्यन्त तपस्या करके भगवान् व्योमकेशको प्रसन्न किया, और उनसे गंगा मिलनेका वरदान माँग लिया; भगवान्‌की आज्ञासे गंगा इस स्थान पर आयीं, उसीको गौतमी कहते हैं इस गौतमी गंगाकी महिमा अपूर्व है।

गौतमीके तीरकी यात्रा करके स्वामी और भी लोककल्याणके अर्थ पृथ्वीपर भ्रमण करते हुए मंजरीक नामके नगरमें पहुँचे; वहाँ माधवारण्य नामके ऋषि नृसिंहमूर्तिकी मानस पूजा किया करते थे, ज्यों ही मानसमूर्ति (जिसकी मनही मनमें पूजा करते थे) को प्रत्यक्ष देखा दंडवत् प्रणाम करके अनेक प्रकारसे स्तवन किया—

श्लोक—यद्दिव्य पादद्वयमेव लक्षितम् देवैर्न दृष्टं तदिदं समीपे।
यदुत्तरे तीर निवासमानं लक्ष्मीसमीपे निवसद्विनीतम् ॥ १ ॥

अर्थः—जिन दिव्य चरणोंको देवताओंने भी नहीं देखा और जो पहुँचसे बाहिर हैं, एवं जो सदा लक्ष्मीके समीप विशेष करके विद्यमान रहते, उन दोनों चरणकमलोंको मैंने अपने हृदयमें प्रत्यक्ष देखा।

तब स्वामीने कहा—

श्लोक—अत्यंतमार्ग स्थिति मार्गरूपमत्यंत योगैरधिगम्यतत्वम्।
मार्गप्रदं मार्गविचिन्वतो मे मार्गोदयो माधवदर्शनं च॥

अर्थः—हे माधव! जो दर्शन पूर्ण रूपसे सत्पथ तथा मर्य्यादाका दिखानेवाला है और जिसका तत्व कठिन योगबलसे जाना जाता है तथा मेरे समान मुक्तिपथके परिचिन्तकोंको मार्गपर ले जाता है, वही दर्शन आज मेरे पथका प्रकाशक हुआ।

गुरुके स्वरूपका दर्शन करके माधवारण्य कृतकृत्य हुए ! उन्होंने हाथ जोड़ स्तुति कियी कि "हे जगद्‌गुरु ! आप त्रिमूर्तिके अवतार हैं ! आप अन्य लोगोंको मनुष्य रूपमें दिखाई देते हैं, वास्तवमें विश्वका उद्धार करनेके अर्थ आपने मनुष्य रूप धारण किया है !"

श्रीगुरुने हर्षयुक्त होकर कहा:-तुम्हारा मंत्र सिद्ध हुआ। तुमको अवश्य ही सद्गति प्राप्त होगी।

कुक्षिकी व्यथावाले ब्राह्मणका कष्ट निवारण।

इस प्रकारसे कहकर स्वामी वासर ब्रह्मेश्वर क्षेत्रमें गंगाके तीरपर आये। इस क्षेत्रमें स्वामी अपने शिष्यवृंद समेत स्नान कर रहे थे, इसी अवसरमें एक ब्राह्मण कुक्षिकी पीड़ासे व्याकुल होता हुआ वहाँ आया; वह व्यथासे इतना पीड़ित था कि मरणोन्मुख हो पृथ्वीपर लोटने लगा; व्यथाके कारणसे वह नित्य फलाहार किया करता था, अन्न उसका वैरी था, जब जब एक मासमें या पंद्रह दिनोंमें भोजन करता था, इसी प्रकारसे दुःख पाता था। यहाँ आनेके पूर्व दिन महा नवमी का त्योहार था, उस दिन मिष्टान्न भोजन किया था। उसीसे उक्त पीड़ा हो रही थी। इस कष्टमय जीवनकी अपेक्षा वह गंगाको देह समर्पण करके छुटकारा पाना सुखकर समझता था और इसी इच्छासे वह गंगाके तीरपर आया था। फिर उसने पेटपर पत्थर बांध गंगामें प्रवेश किया। मनमें भगवान् कर्पूरगौरका ध्यान करता हुआ यह कहता था कि "मैंने इस पृथ्वीपर मनुष्यदेह धारण करके कोई परोपकार नहीं किया पूर्व जन्ममें भी कोई सत्कार्य नहीं किया, किंतु मुझे जो कष्ट इस समय भोगना पड़ता है इससे ज्ञात होता है कि यातो मैंने किसी ब्राह्मणकी वृत्ति छीन लियी हो, या किसी गायका ग्रास छीन लिया, या किसीके साथ विश्वासघात या गुरुकी निंदा अथवा माता पिताकी आज्ञाका उल्लंघन किया हो, अथवा पशुहिंसा कियी हो, या वनमें अग्नि लगाई हो अथवा जनक जननीको छोड़ अपनी स्त्री सहित विभक्त होकर रहा होऊं या वैश्वदेवके समय अतिथिको अन्न नहीं दिया हो"

इस प्रकार पछताता हुआ ब्राह्मण गंगामें आगेको बढ़ा। उसको देख स्वामीने बुलाकर कहा " हे विप्र ! आत्महत्या करना महापाप है। किस कारण आत्महत्या कर रहे हो ? सो बतलाओ।"

ब्राह्मणने अपना सब वृत्तांत कह सुनाया; तब स्वामीने दयायुक्त होकर कहा "प्राणत्याग न करो, तुम्हारी व्याधि दूर हो जायगी। तुम क्षणभर इसी स्थानपर ठहरो।"

इसी समय उस नगरीका अधिकारी सायंदेव नामका एक ब्राह्मण गंगास्नानके निमित्त वहाँ आया, स्वामीको देख भक्तिपूर्वक उसने दंडवत् प्रणाम किया। स्वामीने कुशलप्रश्न किया। सायंदेवने कहा– "मैं कौंडिन्य गोत्रमें आपस्तंबीय शाखाका ब्राह्मण हूँ, मेरा जन्मस्थान कांचीपुरी है। उदरनिर्वाहके निमित्त यहाँ आकर यवनकी सेवा कर रहा हूँ। आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हुआ। मेरे सब पाप दूर हुए। कहा है-

श्लोक–गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापंच दैन्यंच सद्यः साधुसमागमः॥

अर्थ–गंगाके सेवन करनेसे पाप, चंद्रसे ताप और कल्पवृक्षसे दीनता दूर हो जाती है परंतु साधु पुरुषके समागमसे पाप ताप, और दीनता तीनों दूर हो जाते हैं; सो हे स्वामी! आपके दर्शनसे मेरा जन्म सफल हुआ। अब कृपा करके स्वामी शिष्य वृंद सहित चलकर इस सेवकका घर पवित्र करें। यह विनंति स्वामीने स्वीकार कियी, जब स्वामी उसके घर गये, तब ब्राह्मणको अपने साथ ले गये सायंदेवने। अपनी भार्या सहित भक्ति भावसे स्वामीकी पूजा कियी। अनेक प्रकारके मिष्टान्नोंसे स्वामीको भोजन कराया। जठरव्यथावाले ब्राह्मणने भी सब प्रकारके पकान्न यथेच्छ भोजन किये। श्रीगुरुके प्रसादसे फिर उसको कभी किसी प्रकारकी बाधा नहीं हुई। नगरके सब लोग आश्चर्य करके कहतेथे कि जो ब्राह्मण मासमें एकबार भोजन करनेसे भी प्राणांत कष्ट पाता था वह स्वामीकी कृपासे नीरोग हुआ।

सिद्ध मुनिने कहा:–हे वत्स! मैं स्वयं उस समारंभमें वहाँ स्थित था भोजनके पीछे सायंदेवने स्वामी और शिष्यवृंदको दंडवत् प्रणाम किया। स्वामीने प्रसन्न हो उसको वरदान दिया कि तुम्हारे घर ऐसी संतति उत्पन्न होगी जो वंशपरंपरा पर्य्येन्त गुरुभक्त होगी।

सिद्धने कहा:— जिसपर श्रीगुरुकी कृपा होती है, उसके अनेक जन्मके दोष तत्काल दूर हो जाते हैं। व्याधिका दूर होना तो कुछ बात ही नहीं है?

अध्याय १४

यवन राजाका शासन।

सिद्धने कहा "इस प्रकार स्वामीके भिक्षा करनेपर सायंदेवने स्वामीसे प्रार्थना कियी कि मैं जिस यवनका सेवक हूँ वह दुष्ट ब्राह्मणोंका घाती है। आपकी सेवा करनेके वृत्तान्त सुन यवन अवश्य मेरा प्राण ले लेगा। इसलिये मेरा संरक्षण कीजिये।"

स्वामीने अभय वचन देकर कहा "तुम किसी प्रकारकी चिंता न करो। भय छोड़कर यवनके पास जाओ। वह संतुष्ट होकर प्रीतिपूर्वक फिर तुमको हमारे पास भेजेगा और जबलों तुम लौटके न आजाओगे, मैं इसी स्थानपर ठहरा रहूंगा। तुम गुरुभक्त हो, इसलिये वंशपरंपरा अखंडैश्वर्यका भोग करोगे और कभी कोई विपत्ति तुम्हारे ऊपर नहीं आवेगी। निश्चित रहो।

गुरुकी आज्ञा पाकर सायंदेव यवनके समीप गया। सायंदेवको देखते ही यवनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं, मानो अग्निकी ज्वाला निकल रही है।

सायंदेव भयभीत होता हुआ श्रीगुरुका स्मरण करता रहा। गुरुकी लीला ऐसी हुई कि यवनकी अंतःपुरमें जानेकी इच्छा हुई। वहाँ जाते ही उसने निद्राके वशमें होकर शयन किया। कुछ तो वह अचेत था कुछ जागता भी था, ऐसी अवस्थामें उसने स्वप्न देखा कि एक ब्राह्मण शस्त्र से उसके हाथ पैर काटा चाहता है। इस भयसे वह चौंक पड़ा जागृत होते ही उसके कलेजेमें दाह उत्पन्न हुई, जिससे प्राणांतक व्यथा होने लगी। तब उसको सायंदेवका स्मरण हुआ और उसने दौड़कर सायंदेवके चरण पकड़के कहा "मैं आपका अपराधी हूँ क्षमा कीजिये। आप मेरे स्वामी हैं। मेरी रक्षा कीजिये।" यह कहकर बहुत कुछ गिड़गिड़ाया और बहुमूल्य वस्त्र आभूषणादि भेट करके सन्मान पूर्वक सायंदेवको उसने बिदा किया। सायंदेवने स्वामीकी सेवामें उपस्थित हो सब वृत्तांत निवेदन कर स्तवन किया।

जब स्वामीने अपनी इच्छा दक्षिणको यात्रा करनेकी सायंदेवसे प्रगट कियी, सायंदेवने कहा "जैसे राजा सगरका उद्धार करनेके

अर्थ गंगा इस भूमंडलपर आयी है, तैसे ही आप मेरा उद्धार करनेके अर्थ अवतीर्ण हुए हैं। सो हे भक्तवत्सल! मेरा परित्याग न कीजिये। यदि आपकी इच्छा यात्रा करनेकी है तो मुझे भी अपने साथ चलनेकी आज्ञा दीजिये।" स्वामीने पंद्रह वर्षमें फिर दर्शन देनेका वचन दिया। अनेक प्रकारसे उसका सामाधान करके अपने शिष्यों सहित दक्षिण यात्राको प्रयाग किया।

दक्षिणके अनेक तीर्थोंकी यात्रा करते हुए स्वामी पुण्यक्षेत्र वैद्यनाथमें पहुंचे। वहां पर उन्होंने गुप्तरूपसे निवास किया।

विष्णुशर्माने पूछाः—हे स्वामी श्रीगुरुका गुप्तरूपसे निवास करनेका क्या प्रयोजन था? उनके साथ शिष्य बहुत थे। उनको किस प्रकार गुप्त रखा होगा?

अध्याय १५

सिद्ध ने कहाः—परशुरामजी पृथ्वीको निःक्षत्री करके ब्राह्मणोंको राज्य देकर आप समुद्रको चले गये थे; परंतु ब्राह्मण ऐसे लोभी थे कि वह स्थान भी उनसे ले लेनेकी इच्छासे उनके पास पहुँचे। तब और भी माँगेंगे ऐसा जानकर परशुरामजीको गुप्तरूपसे समुद्रके मध्य भागमें जाकर निवास करना पड़ा। तैसे ही जब स्वामीके चरित्रों की प्रसिद्धि हुई, तब साधु, असाधु, धूर्त सबलोग उनका भजन, पूजन करके उनसे वरदान पानेकी आशासे उनके पास भीड़ लगाने लगे। सब ही उनके शिष्य बननेकी इच्छा करने लगे। वह तो विश्वव्यापक जगदीश्वर थे। वरदान देना उनके लिये कौन कठिन था? परंतु पात्रापात्रका विचार करके दिया जा सकता था। सारांश यह कि अपात्र जनोंसे अपना पीछा छुटानेकी इच्छा करके उन्होंने गुप्तरूपसे निवास किया, और अपने साथ के अन्य सब शिष्योंको तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा दियी। केवल मैं एक उनकी सेवा करनेके लिये उनके समीप रहा।

तीर्थ स्थानोंका वर्णन।

शिष्योंने प्रयाणके समय श्रीगुरुसे तीर्थोंके नाम और उनकी महिमा पूछी, सो स्वामीने इस प्रकारसे उनका वर्णन किया:—

काशीपुरीः–इस ब्रह्मांड गोलमें सबसे अधिक पुण्यपावन तीर्थ है। इस क्षेत्रका विस्तार साठ योजन है, और साठ कृच्छ्रका फल है।

प्रयाग और गंगाद्वारका फल काशीसे दुगुना है।

यमुना नदीः–इसके किनारेपर पचीस गाँवोंका क्षेत्र है। इसका भी कृच्छ्र फल विशेष है।

सरस्वतीः–यह प्रसिद्ध गंगा है। इसके किनारे पर चौबीस गाँवोंका क्षेत्र है। प्रति गाँवमें स्नान करना चाहिये। जो मनुष्य पचीसों गावोंमें स्नान करता है वह अपने सब पितरों सहित सर्वकाल ब्रह्मलोकमें निवास करता है।

देव नदी–इसके किनारेपर पंद्रह गाँवोंका क्षेत्र है। उन सबोंमें स्नान करना चाहिये। जितने गाँव हैं, उतने ही कृच्छ्रका फल है। केवल स्नान करने हीसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है।

वरुणा–इसके तीरपर सोलह गाँवोंका क्षेत्र है। उन सबोंमें स्नान करना चाहिये।

महालय तीर्थ–इसमें पितृतर्पण करनेसे बयालीस पुरुषोंका उद्धार हो जाता है।

गोदावरी–इसके तीरपर छः योजनकी यात्रा है। यहाँ ग्रहणमें दाहिने बाएँ तीन बार स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। स्नान करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होकर महा ज्ञानी हो जाता है।

भीमेश्वर–यह तीर्थ बंजरा संगमपर है। यह प्रयागके समान फलदायक है।

कुशतीर्थ–इसमें बारह गाँवोंकी यात्रा है। यहाँ तर्पण करना चाहिये। यह तीर्थ भी प्रयागके समान फलदायक है।

गोदावरी संगमपर षट्कर तीर्थ है; जो अस्सी कृच्छ्रका फल देने वाला है।

पूर्णा नदी–इसके तीरपर चार गाँवोंका क्षेत्र है। उनमें स्नान करना चाहिये।

कृष्णा– } इनके किनारेपर पंद्रह गाँवोंकी यात्रा है। कृष्णाके
वेणी– } तीरपर अनेक ऋषियोंके उत्तमोत्तम स्थान हैं। उनमें स्नान करनेसे मनुष्य उत्तम ज्ञानी हो जाता है। इसके (कृष्णाके)

तीरपर भुवनेश्वरीका स्थान है वहाँ जो पुरुष तप करता है, वह इश्वररूप हो जाता है ।

अमरापुर पंचगंगा संगम-यह कृष्णाके तीरपर है । यहाँ स्नान करनेसे प्रयागसे भी अधिक पुण्य होता है । यहाँ सब तीर्थ निवास करते हैं, और सब मुनियोंने यहाँ तप किया है। तीन दिन अनुष्ठान करने से सब कामनाएँ पूरी होती हैं, और तत्काल परमार्थ प्राप्त होता है ।

तुंगभद्रा-इसके तीरपर बीस गाँवोंकी यात्रा है । यहाँ स्नान करनेसे भीमा और कृष्णाके संगमपर स्नान करनेके फलकी अपेक्षा तिगुना फल मिलता है ।

भीमरथी-इसके तीरपर दस गाँवोंकी यात्रा है। यहाँ भी तुंगभद्रा के स्नानका फल मिलता है ।

गाणगापुर-यह अमरजा संगमपर है। यहाँ आठ तीर्थ हैं १ कोटि-तीर्थ २ नृसिंहतीर्थ ३ वाराणसी तीर्थ ४ पापविनाशिनी तीर्थ ५ रुद्र-पाद तीर्थ ६ चक्रतीर्थ ७ मन्मथ तीर्थ ८ केशव देव विनायक । इनके अतिरिक्त काँकिणी संगम आदि अनेक तीर्थ प्रयागके समान फल देने वाले हैं । कोटि तीर्थमें अश्वत्थका वृक्ष है; जो कल्पवृक्षके समान मन-वांछित फल देता है ।

कल्लेश्वर तीर्थ-यहाँ गांधार भवन है ।

पातालगंगामें स्नान
मल्लिकार्जुनके दर्शन } करनेसे कृष्णा और भीमाके संगमपर स्नान करनेके फलकी अपेक्षा छःगुना फल मिलता है ।

लिंगालयमें स्नान करनेका फल कृष्णाभीमा संगम के फलकी अपेक्षा दुगुना होता है ।

कृतमाला
पयस्विनी
भयनाशिनी } इनमें स्नान करनेसे बड़े बड़े पाप दूर हो जाते हैं ।

पद्मनाथ क्षेत्रमें श्रीअनंत नारायणकी पूजा करनी चाहिये ।

महालक्ष्मी-कोल्हापुरमें इनका स्थान है। उनके दर्शन करने चाहिये ।

कोल्हगाँव-यहाँ नरसिंह देवका स्थान है । उनको साक्षात् सदा शिव समझो ।

वरुणा (?) इसके संगमपर स्नान करके मार्कण्डेय महादेवके

दर्शन करना चाहिये।

मलप्रभा संगम—इसमें स्नान करनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं। यहाँ मिश्वामित्रने तप किया था।

श्वेतशृंगी तीर्थ—यहाँ कपिल मुनिका स्थान है। उनपर गायत्री प्रसन्न थीं। यहाँपर भगवान् विष्णुकी मूर्ति है, यहाँपर स्नान करनेसे काशीसे भी अधिक पुण्य होता है। यहाँ एकबार मंत्रोच्चार करनेसे कोटि मंत्र जपके बराबर फल होता है।

पीठापुर-यहाँ श्रीगुरु दत्तात्रेय निवास करते हैं।

मणिगिरि—यहाँपर सप्त ऋषियोंने तप किया था।

अहोबल—यहाँ दर्शन करनेसे साठ यज्ञोंका फल मिलता है।

श्रीगिरि—के दर्शनसे पुनर्जन्म नहीं होता है।

तुंगभद्रा वरदा संगम } इनमें स्नान करनेसे सौ जन्मोंके पाप
मलप्रभा—संगम } दूर हो जाते हैं।

निवृत्तिसंगम—इसमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्या दूर होती है और कृष्णाभीमा संगमके फलसे चौगुना फल मिलता है।

भीमा और कृष्णाके संगमपर स्नान करनेसे सात जन्म पर्य्यन्त ब्राह्मणके वंशमें जन्म मिलता है।

कावेरी और समुद्रके संगमपर स्नान करनेसे भीमा कृष्णाके संगम के फलसे पंद्रह गुना फल होता है। ताम्रपर्णीका भी ऐसाही फल है।

इन तीर्थोंके अतिरिक्त और भी असंख्य तीर्थ हैं; जिनमेंसे मुख्य मुख्यके नाम कहते हैं:—

वरुणा, कुशावर्त, श्रुतकृष्णा, वितस्ता, शरावती, मरुद्विधा, मधुमती, पयस्विनी, चंद्रभागा, रेवती, सरयू, गौतमी, वेदिका, कौशिका, मंदाकिनी, सहस्रवक्त्रा, पूर्णायुष्या, श्वेतबंध, भीमेश्वरी, श्रीरंग, पुरुषोत्तम, मनोहारी, नैमिषारण्य, पुष्कर, वैरोचनी, गंगातीर्थ, बदरीनारायण, नंदीतीर्थ, कुरुक्षेत्र, केदारतीर्थ, पुष्करतीर्थ, कोटितीर्थ, नर्मदातीर्थ, मातृकेश्वर, कुब्ज तीर्थ, कोका मुखी, प्रसादतीर्थ, विजयतीर्थ, पुरींद्रचंद्र नंदी तीर्थ, गोकर्ण, शंखकर्ण, अयोध्या, मथुरा, कांची, द्वारावती, गया, शालिग्राम तीर्थ, शंमलग्राम, पंपासरोवर, हरिहर क्षेत्र, पांडुरंग, मातुलिंग, भीमरथा दसगाँव, समुद्रस्कंद, शेषाद्रि, श्रीरंगनाथ, तूर्णामलक्षेत्र, कुंभकोणक्षेत्र, कन्या कुमारी, मच्छतीर्थ, पक्षतीर्थ, रामेश्वर,

धनुष्य कोटी, कावेरी, रंगनाथ, पुरुषोत्तमचंद्रकुंड, दक्षिण काशी, कावीर, युगालय, शूर्यालय केदारेश्वरतीर्थ, वृषमतीर्थ, इन नदियों और तीर्थोंमें अवश्य स्नान करना चाहिये। त्रिवेणी संगम और जहाँ जहाँ नदियोंके संगम हैं तहाँ तहाँका फल अधिक है। वहाँ वहाँ अवश्य ही स्नान करना।

सिंह राशिपर जब बृहस्पति आते हैं, तब सब तीर्थोंमें भागीरथी निवास करती हैं। तुलामें तुंगभद्रामें, और कर्कराशिपर जब सूर्य आते हैं, मलप्रभा कृष्णा संयुक्त रहती हैं, इन समयोंपर उक्त नदियोंमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्यादि बड़े बड़े पाप दूर हो जाते हैं।

कर्कसंक्रांतिके आरंभसे लेकर दो मास पर्य्यन्त नदियाँ रजस्वला रहती हैं। उन दिनोंमें किसी नदीमें स्नान न करना चाहिये। संकटके समय तीन दिन जब कि नया पानी नदीमें आवे, अवश्य स्नान वर्ज्य करना चाहिये। नदीके किनारेपर निवास करने वालोंको रजस्वलामें स्नान करनेका दोष नहीं होता। ग्रीष्म कालमें सब नदियाँ दस दिनलों रजस्वला रहती हैं। भागीरथी, गौमती, चंद्रभागा, सिंधु, नर्मदा, सरयू, इन नदियोंको रजस्वला स्थितिमें तिन दिन वर्ज्य करना चाहिये। वापी, कूप, तड़ागको एक रात्रि वर्ज्य करना चाहिये।

अध्याय १६

तपस्वी ब्राह्मणके प्रति श्रीगुरुका गुरुभक्ति कथन।

सिद्ध मुनिने कहा:—स्वामीके वैजनाथमें निवास करते हुए एक दिनकी बात है कि वहाँ एक तपस्वी ब्राह्मणने स्वामीकी सेवामें उपस्थित हो हाथ जोड़कर प्रार्थना कियी कि "हे स्वामी! मेरा उद्धार कीजिये, मैं अविद्याके समुद्रमें डूब रहा हूँ; बहुत दिनसे मैं तपसे शरीर कस रहा हूँ, परंतु मन शांत नहीं होता; न ज्ञानका मार्ग मिलता है; बिना ज्ञानके तपस्या करनेसे परिश्रम मात्र होते हैं लाभ, कुछ नहीं होता। आपके दर्शनोंसे मुझे विश्वास हुआ है कि आप मुझे ज्ञानोपदेश करेंगे तो अवश्य मुझे ज्ञान होगा।"

तपस्वीकी प्रार्थना सुनकर स्वामीने कहा:-पहिले यह बताओ कि तुमको किस गुरुने तपस्या करनेका मार्ग बताया है?

मुनिकी आँखोंसे आँसू बहने लगे, कंठ भरगया, दुःखके मारे मुँहसे शब्द नहीं निकलता था। मनको दृढ़ करके उन्होंने कहना आरंभ किया:—

“ मुझे एक बड़े दुष्ट गुरुसे काम पड़ा था। वह सर्वकाल मुझे कटु वचन कहा करता था और सर्वकाल मुझपर क्रोध किया करता था। जो सेवा मुझसे बन नहीं सकती, थी वही मुझसे लेना चाहता था; वेद, शास्त्र, तर्क भाष्यादि कुछ नहीं पढ़ाता था और यह कह करके कि “ अभी तुम्हारा अंतःकरण शुद्ध नहीं हुआ ” अन्यान्य कार्य मुझसे कराया करता था। जब उसके कहनेसे मैं नहीं करता तो अधिक क्रोध करके कठोर वाक्योंका प्रहार करता था। बहुत दिनों लों उसके पास रहा, उसके कठोर वचनोंको सुनते सुनते मैं विकल हो गया, तब मैं भी उसपर क्रोध करके चला आया। ”

ब्राह्मणका कथन सुनकर स्वामी मुस्कुराये और उन्होंने कहा “ हे! द्विज तुम आत्म घाती हो। तुमने गुरुकी महिमा नहीं जानी, तुम्हारा कहना ऐसा है, जैसा कोई मनुष्य अपने देवालयमें मलविसर्जन करके अपनी वह करतूत अभिमानपूर्वक दूसरोंसे कहता फिरे, अथवा अपनी नाक काटके दूसरोंको दुःशकुन करना चाहे। जबकि तुम अपने ही गुण दोष नहीं पहचानते, तुमको किस प्रकारसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है? तुम गुरुद्रोही हो। अल्पबुद्धि होनेके कारणसे तुम अपने गुरुके गुण दोष हर्षपूर्वक अपने मुँहसे दूसरोंपर प्रगट करते फिरते हो। क्या तुम यह नहीं जान सकते कि जिसके पास द्रव्यका कोष होता है, वह क्यों वन वन मारा फिरेगा? गुरुरूपी कामधेनुको छोड़कर तुम मेरे पास आये हो। परंतु गुरुद्रोहीको ज्ञान होना दुःसाध्य है। जो गुरुकी महिमा जानता है वह गुरुको प्रसन्न रखता है। जिसपर गुरुकी कृपा होती है वह शीघ्र ही वेद शास्त्रोंका ज्ञाता हो जाता है, आठों सिद्धियां उसकी दासियाँ होजाती हैं। ”

तपस्वीने गुरुकी वाणी सुनकर उनके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया। हाथ जोड़ करुणा वचनोंसे वह विनंति करने लगा:—“ हे जगद्गुरु! हे ज्ञानसागर! निर्गुण! निर्विकार!! वास्तवमें मैं गुरुकी महिमा नहीं जानता! अब मेरा उद्धार कीजिये। मैं अज्ञानसे वेष्टित हो गया हूँ। अब मुझे ज्ञानोपदेश कीजिये कि किस प्रकारसे गुरुकी

महिमा पहचाननी चाहिये और किस रीतिसे गुरुकी सेवा करनी चाहिये। जिससे मेरा मन स्थिर हो और मैं गुरुको पहचान सकूँ। सोही उपदेश कीजिये।

स्वामीने कहा "जो उपदेश करता है वही गुरु है, वही जनक, जननी, हरि, हर, विरंचि सब कुछ है। एकाग्र मनसे उसीकी सेवा करनी चाहिये, इस विषयमें मैं तुमसे एक इतिहास कहता हूँ, सुनोः—

"द्वारावती नगरमें धौम्य नामके एक ऋषि रहते थे। उनके पास तीन शिष्य विद्याभ्यास कर रहे थे, (१) अरुण पांचाल (२) वैद (३) उपमन्यु।"

पूर्वकालमें शिष्योंके अंतःकरणकी शुद्धता देखनेके अर्थ उनसे सेवा लिया करनेकी रीति थी। जब गुरु देखते थे कि शिष्यके अंतःकरणमें निर्वाण भक्ति निवास करने लगी, तब शीघ्र ही उसकी मनस्कामना पूरी कर दिया करते थे।

तैसे ही धौम्य ऋषिने अपने प्रथम शिष्य अरुण पांचालको अपने खेतमें तालसे भूमि तृप्त होने पर्य्यन्त पानी देनेकी आज्ञा दियी।

खेत तालके सन्निकट नीचेको था, उसमें धान बोया गया था।

गुरुकी आज्ञा पाते ही शिष्य दौड़कर खेतपर पहुँचा तो क्या देखता है कि नहरके द्वारा तालका पानी बड़े वेगसे बह रहा है। खेत उंचाई पर है। पानी चढ़ नहीं सकता है। पत्थर डालकर पानी चढ़ाना चाहा तो पत्थर बहगया। पानी नहीं चढ़ा। तब मनमें बहुत चिंता करता हुआ अनेक प्रकार से परिश्रम करता रहा। अंतमें परिश्रम करते २ थकगया। कार्य सिद्ध होनेकी आशा न देख वह मनमें विचार करने लगा कि गुरुका यह क्षुद्र कार्य भी मैं न कर सका तो किस प्रकारसे गुरुको मुँह दिखाऊँगा। गुरु मेरी कर्तव्यशून्यता ही समझेंगे। मुझको धिक्कार है! इस समय मेरी कोई बुद्धि चतुराई काम नहीं देती। इससे तो मेरे प्राणोंका छूट जाना ही उत्तम है। जीवन मेरा व्यर्थ है और गुरुका कार्य किये बिना गुरुको मुँह दिखाना अच्छा नहीं। इस प्रकार विचार करता हुआ मनमें गुरुका ध्यान कर अरुण पांचाल आप स्वयं नहरमें लेट गया। ज्यों ही वह लेटा, पानी खेतमें चला गया। संध्याके समयलों पानी बराबर खेतमें जाता रहा। खेतकी भूमि पूर्णरीतिसे तृप्त हो गई।

इधर गुरुने देखा कि संध्या समय हो जाने पर भी शिष्य नहीं

लौटा, तब गुरु स्वयं खेतपर पहुँचे। देखा कि खेत पूरा पूरा भर गया है। वह बहुत संतुष्ट हुए। जब शिष्य कहीं दिखाई नहीं दिया तब पुकार-ने लगे पुकारने पर भी उत्तर नहीं मिला तब मनमें चिंता करने लगे कि व्याघ्रादिकने तो न मार खाया? तत्काल भक्तिपूर्वक की हुई सेवा का चित्र गुरुके अंतःकरण पर खिंच गया और उन्होंने प्रेम भरे ऊँचे स्वरसे पुकारा "अरे वत्स! हे पुत्र! अरुण पांचाल! तुम कहाँ हो?" गुरुका करुणायुक्त स्वर पहचानकर अरुणने नहर से उठ गुरुके समीप जाकर दंडवत् प्रणाम किया। धौम्य मुनिने हर्षयुक्त हो शिष्य को अपने कंठसे लगाया और वरदान दिया कि अब तुम सब विद्या ओंमें निपुण हुए। आश्रमपर आते ही गुरुने अरुणको अपने घर जाने और विवाह करनेकी आज्ञा दे दियी। शिष्य गुरुके वरदानके अनुसार सर्व विद्याविशारद हो गया। भक्तिभावसे गुरुको दंडवत् प्रणाम करके घरको चला गया।

दूसरे शिष्यको जिसका नाम वेद था, मुनिने खेतकी रखवाली की आज्ञा की थी। वह भी गुरुकी आज्ञाके अनुसार तत्काल खेत पर गया और खेतकी रखवाली करने लगा। सारा २ दिन और सारी २ रात एकसा वह रखवाली करता रहा। जब धान्य एकत्र हो गया शिष्यने गुरुके समीप जाकर धान्य घरपर लानेके लिये आज्ञा माँगी। गुरुने संतुष्ट होकर एक लढ़िया जिसमें एक ओर एक भैंसा जोता गया था और दूसरी ओर जोतनेके लिये कुछ नहीं था, देदी थी; जिसको अपने साथ लेकर शिष्य खेतपर पहुँचा। चालीस मन धान लाढ़ियामें लादकर एक ओर भैंसा जोता दूसरी ओर वह स्वयं जुत गया और लढ़ियाको खींच ले चला। भैंसा शीघ्र २ चलने लगा। शिष्यसे शीघ्र चला नहीं जाता था तब शिष्य ने जुआ अपने गलेमें बाँध लिया जिससे वह शीघ्र चल सका चलते २ मार्गमें एक स्थानपर भैंसा कीचड़में फँस गया, तब भैंसे को जुएसे निकालकर बाहर किया और अपने ही बलसे लढ़िया खींचकर कींचसे निकाली, परंतु लढियाके खींचनेमें शिष्यके गले में फांसी लगकर प्राण छूटनेका समय समीप आ पहुँचा। इसी समय धौम्य ऋषि उस स्थानपर पहुँच गये। शिष्यकी दशा देख उनके हृदयमें असीम प्रेम उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसको जुएसे छड़ाकर कंठ लगाया और करुणायुक्त हो वरदान दिया कि तुम वेदशास्त्रोंके ज्ञाता

हुए । वरदान पाते ही सब विद्याओंमें वह निपुण हो गया और गुरु की आज्ञा पाकर अपने घरको गया ।

तीसरा शिष्य उपमन्यु भी गुरुकी सेवा करनेमें निपुण था ; परन्तु उसका आहार अधिक था । इसके कारणसे उसको विद्या प्राप्त नहीं होती थी । गुरु सर्व काल चिंता किया करते थे कि इसके लिये क्या उपाय किया जाय ? सोच विचार करके एक दिन उन्होंने शिष्यसे कहा कि तुम मेरी गैयाओंको वनमे चराया करो और उनकी रक्षा किया करो ।

गुरुकी आज्ञाके अनुसार शिष्य उनकी गैयाओंको नित्य वनमें लेजाया करता और चराया करता था । एक दिन क्षुधा प्रबल हो गयी इस कारणसे नित्यकी अपेक्षा कुछ शीघ्र गोधनको घरपर ले गया तब गुरुने क्रोध करके कहा " लौटाकर गोधनको वनमें लेआजो " गुरुकी आज्ञाके अनुसार शिष्य भी तत्काल गोधनको लौटाकर वनमें ले गया और क्षुधाके मारे व्याकुल होता हुआ गुरुका ध्यान करता रहा ।

अब वह गोधनको नदीके किनारेपर चरने छोड़ आप नित्य स्नान संध्यादि अनुष्ठान करके नदीके तीरपर निवास करने वाले मुनियोंके आश्रमसे भिक्षा माँग भोजन करके उदरपोषण करने लगा ।

इस प्रकार नित्यका क्रम रखके सायंकालके समयमें गोधन का सुरक्षित रूपसे गुरुके आश्रमपर ले जाया करता था । एक दिन गुरुने पूछा कि तुम नित्य उपवास करते हो सो कहो किस उपायसे अपनी देह पूर्ववत् पुष्ट रखते हो ? शिष्यने आश्रमोंसे भिक्षा माँग निर्वाह करनेका क्रम निवेदन किया सो सुनकर गुरुने कहा " जो भिक्षा आश्रमोंसे पाते हो वह भी नित्य मुझको दिया करो । " शिष्यने इस आज्ञाका पूर्ण रीतिसे पालन किया और मनमें किंचिन्मात्र भी क्लेश नहीं किया ।

अब उसने दूसरा क्रम निश्चय किया, दुधार गौओंके बछड़ोंके दूध पीते समय उनके मुँहसे कुछ उच्छिष्ट दूध पृथ्वीपर गिरकर व्यर्थ जाता था सो वही पीने लगा, इससे वह और भी पुष्ट दिखाई देने लगा । फिर गुरुने पूछा तब भी उसने अपना यथार्थ वृत्तांत निवेदन कर दिया जिसको सुनकर गुरुने कहा उच्छिष्ट भक्षण

करनेसे मनुष्य बुद्धिहीन हो जाता है इस लिये उच्छिष्ट दूध कभी पान न करना।

अब शिष्य अपने निर्वाहका कोई साधन नहीं देखता था। दूसरे ही दिन उसको एक मदारका वृक्ष दिखाई दिया जिसमेंसे दूध भूमिपर गिर रहा था। उपमन्यु इस दूधके गुणदोष न जान मनमें यह विचार कराकि यह उच्छिष्ट नहीं है, एक दोनियामें पीनेकी इच्छासे इकट्ठा करने लगा; अकस्मात् दूध उड़कर उसकी आंखोंमें पड़ गया जिससे वह तत्काल अंधा हो गया। अब वह गौओंकी रक्षा करनेसे असमर्थ हो गया। उसने अपनी दृष्टिहानिकी इतनी चिंता नहीं कियी जितनी गौओं के संरक्षण करनेकी कियी। उसके पास लाठी भी नहीं थी, बिना लाठी के वह दृष्टिहीन दीन गौओंकी खोज करता हुआ वनमें घूमता हुआ अचानक एक गड़हेमें गिरगया। तब भी वह अपनी आंखोंका और गड़हेमें गिरनेका दुःख न कर इसी बातकी चिंतासे अधिक दुःखी हुआ कि अब मैं अपने गुरुके गोधनका संरक्षण किस प्रकारसे कर सकूँगा क्योंकि अब तो मेरे गड़हेसे ऊपर निकलनेका ही कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता है। गोरुओंके भटक होजानेसे गुरुकी हानिका कारण स्वयं मैं हुआ यह विचार वह बहुत पछताता था, गुरुके क्रोधसे वह भयभीत होता था, परंतु अपने उबारका कोई यत्न नहीं कर सकता था। इतनेमें सूर्यनारायण भी अस्ताचलको जा पहुँचे।

गुरुने देखा कि रात हो गयी पर न तो शिष्य लौटा न गोधन तब आप स्वयं खोज करते हुए वनमें गये, गौएँ तो चरती हुई मिलीं परंतु शिष्य दिखाई नहीं दिया। तब तो मुनिको बहुत खेद हुआ उन्होंने करुण स्वरसे पुकारा। प्रत्युत्तर सुनकर के समीप पहुँचे शिष्यके मुँहसे उसका सब वृत्तान्त सुन उनके अंतःकरणमें कृपा उपजी, उन्होंने कहा "हे वत्स! घबराओ मत तुम अश्विनीकुमार देवोंका स्मरण करो अभी तुम्हारा कष्ट दूर होता है। शिष्यने अश्विनीकुमार देवोंका स्मरण किया और उसकी दृष्टि तत्काल शुद्ध होगई। उसने उठकर गुरुको दंडवत् प्रणाम किया, गुरुने प्रसन्न होकर उसको अपने कंठसे लगाया और उसके मस्तकपर अपना हाथ रखा; जिससे वह तत्काल वेद-शास्त्रसंपन्न होगया। गुरुने कहा हे पुत्र! अब तुम विवाह करके सुखसे रहो तुम बहुकीर्तिमान् होओगे बहुतेरे पुरुष जगत्में तुम्हारे

शिष्य होंगे, उत्तंक नामका तुम्हारा एक शिष्य होगा वह भगवान् शेषनारायणको जीतकर उनसे कुंडल लाकर तुमको दक्षिणामें देगा वही जनमेजय राजाको उपदेश करके सर्पयज्ञ द्वारा सर्पोंका विनाश करवावेगा ।

स्वामीने कहा:-हे विप्र ! उसी उत्तंकने जन्मेजयसे सर्पयज्ञ कराके इंद्र सहित तक्षकको बुलवाया था। यह सब गुरुकी कृपाकी सामर्थ्य है । कौन वह पदार्थ है जो गुरुको संतुष्ट करनेवाला मनुष्य न पासके ? वेद शास्त्रादिकके ज्ञानकी राशिके प्राप्त करादेनेके लिये गुरुको एक क्षणका भी विलंब करनेकी आवश्यकता नहीं होती है । केवल उनको संतुष्ट रखना ही कार्य है । जो पुरुष गुरुका द्वेष करता है उसको परलोक नहीं मिल सकता है और अंतमें वह कुंभीपाक नरकका अनुभव करता है इसलिये तुमको अपने उन्हीं गुरुकी शरणमें जाना उचित है, वही तुम्हारा उद्धार करेंगे; जाओ। मनका दृढ़ निश्चय करके गुरुको संतुष्ट करो।

स्वामीका उपदेश सुनकर विप्रको कुछ ज्ञान हुआ उसने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रखके स्तवन किया कि हे भगवन् ! आपके उपदेश से मैंने जाना कि यथार्थमें ही मैं गुरुद्रोही हूँ मैंने बड़ेही अपराध किये हैं; मैंने गुरुका चित्त दुखाया है अब किस प्रकारसे उनको मैं संतुष्ट कर सकता हूँ ? सुवर्णादि धातुएँ टूटनेपर जोड़ी जा सकती हैं परंतु मोती टूटनेपर किस प्रकार जोड़ा जासकता है ? अंतःकरण भिन्न हो जानेपर फिर जोड़ना कदापि सम्भव नहीं है इसलिये अब इस पापी देहको जीवित रखके मैं कोई लाभ नहीं देखता अब मुझे अपने चरणों-में देह समर्पण करनेकी आज्ञा दीजिये । यह कहकर उसने प्राणत्याग करनेका निश्चय किया ।

स्वामीने देखा कि ब्राह्मणके अंतःकरणमें विराग उत्पन्न होगया है, उसको अपने कृतकर्मका पश्चात्ताप हुआ है, उसने सचमुच अपनी देह निरर्थक जान लियी है, उसका अंतःकरण निर्मल होगया है, जैसे तृण और कपास, जो अग्नि स्पर्श होते ही जल उठते हैं ।

सिद्धने कहा कि पाप करनेवाले पुरुषको जब अनुताप होता है तब उसके किये हुए पापोंका क्षय हो जाता है इसी प्रकारसे ब्राह्मणको निर्दोष जाना तब स्वामीने कहा "हे द्विज़ ! तुम किसी प्रकार की चिंता न करो अब तुम्हारे सब पाप दूर होगये हैं अब एकाग्र

चित्तसे अपने गुरुका स्मरण करो।"

ब्राह्मणने मन ही मनमें अपने गुरुका ध्यान करके भक्तियुक्त हो अनेक प्रकारसे स्तवन किया उस समय उसके शरीरमें रोमांच हो गये कंठ गद्गद् होगया।

स्वामीने उसके मस्तकपर अपना दहिना हाथ रखा जिससे उसी समय उसको वेद शास्त्र मुखाग्र होगये और सब प्रकार से वह ज्ञानी होगया। गुरुदयालु जब उसपर प्रसन्न हुए तब उसको किस बातकी कमी थी? लोहको पारस मणिका स्पर्श होजाय तब उसके सुवर्ण बननेमें कौन विलंब है? ब्राह्मणको जब अचानक ज्ञानका भांडार हाथ लग गया तब उसे असीम आनंद हुआ। गुरुने आज्ञा कियी कि अब तुम मेरा कहना मानकर अपने गुरुकी शरण जाओ और भक्ति-पूर्वक उनका वंदन करो वह अवश्यही प्रसन्न होंगे। ब्राह्मण स्वामीकी आज्ञाके अनुसार अपने गुरुके पास गया।

श्रीगुरु वहांसे प्रयाण करके भिल्लवड़ी क्षेत्रमें पहुँचे वहां उन्होंने कृष्णा नदीके पश्चिम तीरपर एक औदुंबर वृक्ष के नीचे गुप्त रूप से निवास किया।

अध्याय १७

सिद्धने कहाः- भिल्लवड़ी क्षेत्रमें स्वामीने चातुर्मास्य भर महा धुरंधर अनुष्ठान किया। गुरुके निवास करनेसे उस स्थानकी महिमा बहुत बढ़गयी।

विष्णुशर्माने पूछा हे स्वामी! श्रीगुरुका उस स्थानपर निवास करने, तप करने और भिक्षावृत्तिके स्वीकार करनेसे क्या प्रयो-जन था?

सिद्ध मुनिने कहा स्वामीने अपनी वृत्ति भिक्षार्थीके जैसी बना रखी थी वास्तवमें यह कार्य उन्होंने लोगोंपर उपकार होनेके अर्थ किया था। पृथ्वीपर एकसे एक अनूप तीर्थ हैं जिनकी महिमा सब लोग नहीं जानते हैं। उनको लोकोद्धारके लिये प्रगट करनेके उद्देश्य-से स्वामीने देशाटनादि करना स्वीकार किया था।

मूर्ख ब्राह्मणका विद्वान् होजाना ।

करवीर नामक क्षेत्रमें एक वेदपाठी, शास्त्री, और कर्ममार्गी प्रसिद्ध ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्री के एक महा मंदमति पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह एक मासका हुआ कि उसके माता पिताका देहांत होगया। सात वर्षके होनेपर उसका व्रतबंध कियागया स्नान संध्याका प्रयोग गायत्री मंत्र आदि पढ़ानेका बहुत कुछ प्रयत्न किया गया परंतु उसको कुछ आया नहीं उस गाँवके सब विद्वान् पुरुष उसकी निंदा किया करते थे और धिक्कार किया करते थे। वे कहते थे कि तुम्हारे पिता कैसे अनुपम विद्वान् थे उनके घर तुम पत्थर उत्पन्न हुए हो उनकी कीर्तिमें तुमने धब्बा लगाया। तुम अपने गलेमें पत्थर बाँधकर किसी कुएमें क्यों नहीं डूब मरते? तुम पृथ्वीपर जन्म धारण करके पशुके समान भूभार स्वरूप जन्म बिता रहे हो। अवश्य ही तुमको यमराजका बड़ा घर देखना होगा। विद्यारूप चिंतामणि जिसके अनुकूल होता है वह सब ऐश्वर्यका अनुभव कर सकता है वही सब लोगोंमें पूज्य और यशस्वी होसकता है उसीका विदेशमें सम्मान हो सकता है उसके लिये विदेश भी स्वदेश होजाता है वह लघुवयस्क भी श्रेष्ठ माना जाता है। जिसके कोई भाई नहीं है, उसकी, विद्या भाईकी अपेक्षा अधिक सहायता करती है, विद्वान्‌की राजा भी पूजा करता है, विद्वान्‌की देहमें सब देवता निवास करके उसके द्वारा अन्य सब पुरुषोंकी पूजा ग्रहण करते हैं और इसी लिये सब लोग उसकी पूजा करते हैं। जिसके पास द्रव्य नहीं है परंतु विद्या है तो वह द्रव्य से अधिक उसको लाभ देती है। वही द्रव्य उपार्जन करनेका उत्तम साधन है।

इस प्रकारके तीव्र वाक्य सुनते २ एक दिन उसने अपने जातिभाइयोंसे प्रार्थना कियी कि निःसंदेह मैंने पूर्व जन्ममें विद्यादान नहीं किया है यही कारण है जो मुझे विद्या प्राप्त नहीं होती, अब सब महानुभाव कृपा करके मुझे ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मुझे विद्या प्राप्त हो और मेरा उद्धार होजाय। ब्राह्मणोंने उपहासयुक्त वचनोंसे कहा "अब तुम दूसरा जन्म धारण करोगे तब तुमको विद्या प्राप्त होगी फिर उद्धार हो जायगा।"

अंतके कटुवचनोंने ब्रह्मचारीके अंतःकरणमें विराग उत्पन्न कर दिया। ब्रह्मचारी अपने प्राणोंके परित्याग करनेका निश्चय करके घरसे निकला; मनमें कहता जाता था कि धिक्कार है मुझे! जो ऐसा मति-हीन पशुके समान अपना जीवन बिता रहा हूँ; सब लोग मेरी निंदा करते हैं; ऐसे जीवनसे तो मृत्युकी शरण लेलेना अच्छा है। यह कहता हुआ वह भिल्लवड़ी ग्राममें पहुँचा और भुवनेश्वरीका दर्शन करके उसी जगदंबाके द्वारपर तीन दिन पर्य्यन्त उपोषण करता धरना देकर बैठ रहा। जब देखा कि भगवतीके कृपाप्रसादका कुछ अनुभव नहीं होता है तब द्वेषमें आकर शस्त्रसे आप ही अपनी जिव्हा काटकर देवीके चरणोंमें अर्पण करदी और फिर देवीसे प्रार्थना कियी कि "हे देवि! इतनेपर भी तुम यदि मेरा कष्ट दूर न करोगी तो मैं अपना मस्तक भी काटकर तुम्हारे चरणोंमें अर्पण करदूँगा।", वास्तवमें इसी प्रकारका दृढ़ निश्चय भी उसने किया था।

रातको स्वप्नमें भगवतीने ब्रह्मचारीसे कहा "हे बालक! हमारे ऊपर तुम क्यों रुष्ट होतेहो? कृष्णा नदीके पश्चिमी तटपर औदुंबर वृक्षके नीचे एक अवतारी महापुरुष निवास करते हैं उनके पास तुम जाओ वह तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे।"

यह स्वप्न देखते ही वह जाग पड़ा और तत्काल नदीके प्रवाहमें हलकर दौड़ता हुआ स्वामीके निवासस्थानपर पहुँचा श्रीगुरुको देखते ही चरणोंपर मस्तक रखके उसने स्तवन किया जिससे स्वामी संतुष्ट हुए उन्होंने अपना हाथ उसके मस्तकपर रखा जिससे तत्काल उसकी जिव्हा पूर्ववत् होगयी और वह महाज्ञानी होगया। जैसा काग मानसरोवरपर जानेसे हंस होजाता है लोह चिंतामणिके स्पर्शसे सुवर्ण होजाता है, जैसे मृत्तिका जांबुनदमें पड़नेसे सुवर्ण होजाती है उसी प्रकार स्वामीका हस्तस्पर्श होते ही ब्राह्मण सर्वविद्याविशारद होगया; वेद शास्त्र तर्क भाष्यादि सब उसके मुखाग्र होगये।

अध्याय १८

दरिद्र ब्राह्मणके घर द्रव्य निकलना।

विष्णुशर्माने कहा हे स्वामी! सद्गुरुकी लीला रूपी अमृत

फलका मधुर रस पान करनेसे मुझे तृप्ति नहीं होती किंतु इच्छा अधिकाधिक प्रबल होती जाती है सो कृपा करके और भी इस अमृत-संजीविनीका अनुभव कराइये ।

सिद्धने कहाः—भिल्लवड़ीमें जब गुरुने देखा कि मेरी महिमाकी प्रसिद्धि होने लगी है तब वह वहाँसे प्रस्थान करके वरुणाके संगमपर और दक्षिण वाराणसीको होतेहुए कृष्णा तीरके क्षेत्रोंको पवित्र करते हुए पंचगंगा संगमपर पहुँचे वहाँ उन्होंने बारह वर्ष पर्यन्त निवास किया ।

इस संगमका नाम पंचगंगा संगम इसलिये है कि यहाँ पाँच पुण्य नदियोंका संगम हुआ है १ शिवा २ भद्रा ३ भोगावती ४ कुंभी ५ सरस्वती । इस तीर्थकी महिमा भी काशी प्रयाग और कुरुक्षेत्रकी महिमाके समान है । इसी संगमके समीपमें अमरपुर नामका एक ग्राम है वहाँपर एक औदुंबरका वृक्ष है मानों कल्पवृक्ष ही है । यहीं अमरेश्वर महादेवका मंदिर भी है अमरेश्वरके समीप ही चौंसठ योगिनी शक्तितीर्थ प्रसिद्ध है । प्रयागराजमें माघस्नान करनेसे जो फल मिलता है उसका सौगुना फल पंचगंगा संगममें एक ही बार स्नान करनेसे मिलता है । इस स्थानमें असंख्य तीर्थ हैं उन सबका वर्णन करनेसे विस्तार होगा, इसलिये मुख्य मुख्य कहते हैं । उत्तर दिशामें कृष्णा पश्चिमाभिमुख बहती हैं वहाँ उसका शुक्रतीर्थ नाम है उसमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्या जैसे बड़े बड़े पाप दूर होजाते हैं । ”

औदुंबर वृक्षके समीपमें तीन तीर्थ हैं १ पापविनाशिनी २ काम्यं-तीर्थ ३ वरदतीर्थ । इनके आगे प्रयागतीर्थ, शक्तितीर्थ, अमरतीर्थ आदि हैं । उपर्युक्त पाँचों नदियाँ, कृष्णा और वेणी मिलकर सात नदियों का यहाँ संगम हुआ है । इस संगमके दर्शन मात्रसे ब्रह्महत्यादि महापाप दूर होजाते हैं स्नानकी महिमा तो अपार है ।

यहाँ पर गुप्तरूपसे निवास करते हुए स्वामी नित्य ग्राममें भिक्षा-को जाया करते थे । इस ग्राममें एक वेदाभ्यासी ब्राह्मण रहता था, उसकी भार्या सब पतिव्रताओंकी शिरोमणि थी । ब्राह्मण कर्मिष्ठ था नित्य शुष्क भिक्षा करके सात्विक वृत्तिसे अपना निर्वाह किया करता था । अपने घरमें उसने शाकपत्र के लिये घेंवड़ा की बेल लगायी थी जिसमें बहुत फल लगा करते थे । जिस किसी दिन ब्राह्मण

ग्राममें भिक्षा नहीं पाता था घेवड़ाकी फलीसे उदरपूर्ति कर लिया करता था।

एक दिन ब्राह्मणके घरपर श्रीगुरु भिक्षाके अर्थ गये। ब्राह्मणने भक्तियुक्त होकर पूजा कियी और अनेक रसके पक्वान्नोंसे स्वामीको भोजन कराया। ब्राह्मणकी भक्तिसे स्वामी प्रसन्न हुए, उन्होंने ब्राह्मणको आश्वासन दिया कि तुम्हारे सब दोष दारिद्र दूर होगये। चलते समय स्वामी घेवड़ेकी जड़ काटकर चलेगये। ब्राह्मणकी स्त्री बेल कटीहुई देख बहुत दुःखी हुई, उसने पतिसे कहा कि हमने कौन अपराध किया था जिसके पलटेमें स्वामीने हमारा ग्रास काट दिया।

पतिने कहा "स्वामी तो हमारा उद्धार करनेके हेतु आये थे और अंतमें वही हमारा उद्धार करेंगे, उनको दोष देना उचित नहीं है। हमारे प्रारब्धयोग और ईश्वरी इच्छासे यह हुआ है पूर्व जन्ममें हमने जो दुष्कर्म किये हैं उनका फल हमही को भोगना चाहिये, ईश्वर चिउंटीसे लेकर हाथी पर्यन्तके लिये आहार नियत करता है और वह रंकसे लेकर राजालों सब जगत्को समान दृष्टिसे देखता है, ऐसी दशामें स्वामीने हमारे हितकी हानि करनेकी इच्छा कियी तो जानना चाहिये कि यह पूर्व संचितका फल है।"

इस प्रकारसे पत्नीका समाधान करके ब्राह्मणने बेलको गंगामें बहा दिया। पीछे उसने बेलकी जड़ जो पृथ्वीमें शेष रही थी खोदी तो वहाँ द्रव्यसे भरा हुआ एक घड़ा मिला। उसको देख दोनों विस्मित हुए। अब उन्होंने जाना कि बेलको काट देनेसे स्वामीका क्या अभिप्राय था। अब उनको विश्वास होगया कि यह स्वामीकी कृपाका फल है, वह नर नहीं हैं किंतु योगीश्वरके स्वरूपमें साक्षात् परमेश्वर हैं। फिर दोनोंने संगमपर जाकर श्रीगुरुकी भक्ति भावसे पूजा कियी। स्वामीने उनसे कहा कि द्रव्यके पानेका वृत्तांत तुम किसीपर प्रगट न करना तुम्हारे घरपर अखंड लक्ष्मी निवास करेगी और तुम पुत्र पौत्रादि सहित सुखसे रहोगे। सिद्ध मुनिने कहा श्रीगुरुके वचनोंके अनुसार ब्राह्मणका दारिद्र्य नष्ट होगया और उसने पुत्र पौत्रादि सहित अखंडैश्वर्यका उपभोग करके अंतमें मोक्ष पाया।

अध्याय १९

औदुंबर वृक्षकी महिमा ।

शिष्यने पूछा कि स्वामी ! गुरुकी प्रीति औदुंबर वृक्षके साथ विशेष पायी जाती है इसका क्या कारण है ?"

सिद्धने कहाः-नरसिंह अवतारके समय नृसिंह भगवान्ने अपने हाथोंके नखोंसे दैत्यका देह विदीर्ण किया था, उस समय दैत्यके उदरका कालकूट विष भगवान्के नखोंमें प्रवेश करगया जिससे भगवान्के नखोंमें अत्यंत जलन होने लगी थी, तब महालक्ष्मी, औदुंबर वृक्षके फल लाई, उनमें भगवान्ने नखोंका प्रवेश कराया जिससे तत्काल जलन शांत होगयी । इसलिये भगवान्ने प्रसन्न होकर वृक्षको वरदान दिया कि "तुम सबकाल सफल रहोगे तुम्हारा नाम कल्पवृक्ष होगा । जो पुरुष तुम्हारी पूजा भक्तियुक्त होकर करेगा उसके ब्रह्महत्यादि सब पाप दूर होकर मनोरथ सिद्ध होंगे । जो वंध्या स्त्री तुम्हारी सेवा करेगी वह पुत्रवती होगी, दरिद्री धनवान् होगा तुम्हारी छायासे युक्त जलमें स्नान करनेसे भागीरथीमें स्नान करनेका पुण्य होगा । तुम्हारी छायामें बैठकर जो पुरुष अनुष्ठान करेंगे उनको ज्ञान और इच्छित फल प्राप्त होगा। उनको कभी कोई व्याधि नहीं सतावेगी; मैं लक्ष्मी सहित सर्वकाल तुम्हारे समीप निवास करूँगा। इस प्रकारका यह औदुंबर वृक्ष है यही कलियुगका कल्पवृक्ष है इसी कारणसे श्रीगुरुकी इसके साथ अधिक प्रीति है ।

चौंसठ जोगिनीकी कथा ।

श्रीगुरु जितने दिन उक्त स्थानपर निवास करते रहे उतने दिन वहाँपर माध्याह्न कालके समय नित्य एक समारंभ हुआ करता था । चौंसठो जोगिनियाँ श्रीगुरुके आश्रमपर आया करती थीं और श्रीगुरुकी वंदना करके अपने साथ अपने मंदिरको लेजाया करती थीं, वहाँ भक्तिपूर्वक विधिसे स्वामीकी पूजा करके उत्तमोत्तम पक्वान्नोंका भोजन कराके फिर उनको आश्रमपर पहुँचा जाया करती थीं ।

पुरवासियोंने देखा कि स्वामी भिक्षाको नहीं आते, उनके मनमें यह देखनेकी इच्छा हुई कि एकांत और अरण्यमें किस रीतिसे स्वामी

उदर पूर्ति करते हैं। यह विचार एक दिन कुछ पुरुष मध्याह्नके समय संगमपर गये परंतु वहाँ एकाएक उनके अंतःकरणोंमें ऐसा भय उत्पन्न हुआ कि उनको वहाँसे लौट जाना पड़ा।

एक गंगानुज नामका ब्राह्मण अपना खेत रखाता था उसने देखा कि योगिनियाँ श्रीगुरुके पास आयीं और उनके साथ श्रीगुरु गंगाके प्रवाहमें गये। गंगामें गुरुके आने जानेके लिये मार्ग होगया था उस दिन वह विस्मय करता रहा। दूसरे दिन जब समय हुआ गंगानुज भी चुपके चुपके स्वामीके पीछे पीछे चलागया। नदीमें प्रवेश करते समय जलके दो विभाग होगये थे अर्थात् गुरुके जानेके लिये गंगाने मार्ग देदिया था। भीतर गये तब वहाँ अमरावतीके समान एक सुवर्णयुक्त बना हुआ अपूर्व शोभायमान नगर दिखाई दिया पुरवासी लोग आरती लेकर गुरुके सन्मुख आये आरती उतारकर स्वामीको एक भवनमें लेगये और रत्नजड़ित ऊँचे सिंहासनपर बैठा दिया। विधियुक्त पूजा करके षट्रस पक्वान्नोंका भोजन कराया।

गंगानुजको देखकर स्वामीने पूछा "तुम यहाँ किस कारणसे आये?" ब्राह्मणके हाथ पैर कँपने लगे उसने घबराकर गिड़गिड़ाकर कहा "वैसेही स्वामीके दर्शनोंको चला आया।" फिर प्रार्थना करने लगा "हे भगवन्! मैं आपकी शरण हूँ, मैंने आपका स्वरूप नहीं जाना था। मुझे क्षमा कीजिये, मैं संसारकी मायासे घिरा हूँ, मुझ अज्ञानीके हृदयका अंधकार दूर कर दीजिये।" इस प्रकार कहके अनेक प्रकारसे स्तवन किया जो सुनकर स्वामी प्रसन्न हुए; उन्होंने आज्ञा की कि तुम्हारे दरिद्र और पाप दूर होगये, तुम्हारे सब मनोरथ सिद्ध होंगे, तुमने यहाँ जो कुछ देखा है वह किसीपर प्रगट न करना जब कभी दूसरे पर प्रगट करोगे तत्काल मुक्ति पाओगे।" इस प्रकारसे कहकर स्वामी आश्रमको लौट आये उनके साथ ही गंगानुज भी लौट आया उसने अपने खेतको जातेहुए निधि पायी और वह पुत्र पौत्रादि सहित सुखसे रहा।

गंगानुज नित्य नियमसे स्वामीकी पूजा सेवा किया करता था। एक दिन जब माघ मासकी पूर्णिमा समीप थी गंगानुजने स्वामीसे प्रार्थना कियी कि प्रयागराजमें माघस्नान करनेका माहात्म्य अधिक कहा जाता है और काशीकी भी महिमा सुनी जाती है सो कृपा करके

कहिये कि किस प्रकार के उक्त स्थान और वाराणसी हैं ।

स्वामीने कहा पंचगंगा संगमको ही काशी और प्रयाग समझो और कोल्हापुरको दक्षिण प्रयाग समझो परंतु यदि तुम्हारी इच्छा प्रत्यक्ष काशी प्रयागको देखनेकी हो तो हम बता सकते हैं यह कहकर स्वामीने ब्राह्मणसे कहा कि व्याघ्रांबरको (जिसपर स्वामी बैठे थे) दृढ़ थामलो । प्रातःकालमें ब्राह्मण सहित बैठे बिठाए मनके समान वेगसे स्वामी प्रयागराजमें पहुँचगये वहाँ स्नान करके मध्यान्ह समय में उसी दिन काशी पहुँचे वहाँ स्नान करके विश्वनाथका दर्शन किया और उसी समय गयाको पहुँचे इस प्रकार तीनों स्थानकी यात्रा कराके संध्या समयलों लौटकर अपने स्थानको आपहुँचे ।

विश्वनाटक श्रीगुरु महाराजकी इस लीलाका चमत्कार सब लोगोंपर प्रगट होगया इसलिये स्वामीने स्थलांतर करनेका निश्चय किया । उस समय चौंसठ योगिनियोंने स्वामीसे प्रार्थना कियी कि हे स्वामी हमको नित्य आपका दर्शन होता था जिससे हमारे त्रिविध ताप दूर होजाते थे अब आपने स्थलांतर करनेका निश्चय किया और आप हमको यहीं छोड़ जाना चाहते हैं तब हम आपको अन्नपूर्णा किस प्रकारसे पहुँचा सकेंगी ? इससे यह अच्छा होगा कि हमको भी साथमें लेते जाइये ।

चौंसठ योगिनियोंके विनयसे स्वामी प्रसन्न हुए, उन्होंने उनको आज्ञा दियी कि तुम औदुंबरके समीपमें सर्वकाल निवास करो यही मेरा स्थान है अन्नपूर्णाका कार्य्य हम औदुंबरको सौंपते हैं यह स्थान बहुत प्रसिद्ध होगा। सब लोग यहाँ पूजा आराधना किया करेंगे और उनकी कामनाएँ सुफल हुआ करेंगी । तुम उनकी सहायता किया करना । तुमारी और मेरी पादुकाकी इस स्थानपर जो मनुष्य सेवा करेगा उसके सब मनोर्थ सिद्ध होंगे । पापविनाश काम्यतीर्थमें जो पुरुष सात बार स्नान करेगा उसकी साठ वर्षकी वंध्या स्त्रीको भी शतायुषी पुत्र होगा । ग्रहण, मकरसंक्रांति, सोमवती अमावास्या, व्यतीपातादि पर्वणियोंपर स्नान करनेसे इतने फल मिलते हैं सुवर्णके सींग और चाँदीके खुर सहित एक सहस्र गाय गंगा नदीमें दान करनेसे जो फल मिलता है वह एक बार स्नान करनेसे मिलता है एक कोटि ब्राह्मणभोजन करानेसे जो फल मिलता है वही औदुंबर

के नीचे एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे मिलता है। इसी प्रकार जप और हवन करनेका फल होगा। एकादश रुद्र जप करनेसे अतिरुद्र-का फल होगा, प्रदक्षिणा करने से प्रति पदपर एक वाजपेय यज्ञका फल मिलेगा। कोढ़की व्याधि वालोंको एक लक्ष प्रदक्षिणा करनी चाहिये अवश्य ही उसकी देह दिव्य होजायगी।

इस प्रकारसे चौसठ योगिनियोंसे कहकर स्वामी गाणगापुरको चलेगये अब औदुंवरके समीप गुप्त और गाणगापुरमें प्रगट रूपसे स्वामी रहने लगे।

अध्याय २०

विष्णुशर्माने पूछा "औदुंवरकी महिमाका किस किसको अनुभव हुआ?"

स्वामीने कहाः-संपूर्ण महिमा वर्णन करना तो सर्वथा अशक्य है उदाहरणार्थ एक दो प्रसंग कहता हूँ।

मृतपुत्रा स्त्रीको पुत्रप्राप्ति।

शिरोल नामके एक गाँवमें एक वेदपाठी सदाचारी ब्राह्मण रहता था। उसकी भार्या पतिव्रता शांत और सुशीला थी परंतु उसके जो पुत्र उत्पन्न होते थे वे मर जाया करते थे। पाँच पुत्र उसके हुए थे उनमें से एक भी नहीं बचा। अनेक देवताओंकी आराधना कियी, तीर्थ व्रत उपवासादिक किये, कुछ लाभ नहीं हुआ; संतान न होनेसे वह अत्यंत दुःखी रहती थी।

कर्मविपाकमें देखनेसे विदित हुआ कि जो तामसी जन स्त्रियोंसे गर्भपात कराते हैं; जो अश्ववध अथवा गोवध करते हैं, जो परद्रव्या-पहरण करते हैं, उनकी स्त्रियाँ अन्य जन्ममें वंध्या होती हैं अथवा उनके संतान मर जाया करते हैं।

कर्मविपाक देखनेवाले ब्राह्मणने कहा "शौनक गोत्रके एक ब्राह्मणसे तुमने पूर्व जन्ममें ऋण लिया था वह तुमने नहीं चुकाया इस कारणसे उस लोभी ब्राह्मणने तुम्हारे ऊपर आत्महत्या करलियी। अब वह पिशाच हुआ है वही तुम्हारे गर्भ पात करता है; अब इसका

उपाय यही है कि पंचगंगा संगमपर औदुंबर वृक्षकी आराधना करो और "पापविनाशिनी" तीर्थमें स्नान करके गुरुचरण पादुकापर गंगा-जलसे अभिषेक पूजा करो, ब्राह्मणोंको भोजन कराओ, पीछे काम्यतीर्थ में स्नान करके गुरुपादुकाकी पूजा करो, और सौ रुपये शौनक गोत्रके ब्राह्मणको दान करो तब तुम शतायुषी पुत्र पाओगे ।"

ब्राह्मणीने कहा व्रतोपवासादिक शारीरिक कष्टके कार्य तो मैं कर सकूँगी परंतु सौ रुपये मैं कहाँ पाऊँ जो दान करसकूँ ?

ब्राह्मणने कहा यदि तुम्हारे पास रुपये नहीं हैं तो कुछ चिंता नहीं एक चित्तसे गुरुकी सेवा पूजा करना गुरु बड़े दयालु और समर्थ हैं इतने ही पर वे तुम्हारी कामना पूर्ण करदेंगे ।

ब्राह्मणोंके वचनानुसार ब्राह्मणीने श्रीगुरुके स्थान औदुंबरके निकट पहुँचकर तीन दिनलों स्नान पूजा व्रतोपवासादि किये । रात्रि-के समय ब्राह्मणकी स्त्रीने स्वप्नमें एक ब्राह्मणको देखा जो कहता था कि मेरे सौ रुपये देदो नहीं तो मैं तुम्हारे जीवनका नाश करूंगा और तुम्हारा वंश चलने नहीं दूँगा । ब्राह्मणी भयभीत होती हुई औदुंबर वृक्षकी आड़में छुपनेकी इच्छा करके दौड़ी त्योंही उसको श्रीगुरु दिखाई पड़े । उनकी शरणमें गयी । स्वामीने उसको अभय दिया और ब्राह्मणका निवारण करके उसका वृत्तांत पूछा ।

ब्राह्मणने अपना वृत्तांत स्वामीसे निवेदन किया और प्रार्थना कियी कि हे स्वामी ! यह (स्त्री) मेरी शत्रु है मेरे शत्रुका आप पक्षपात न कीजिये आप सबोंपर कृपा करते हैं मुझपर भी कृपा कीजिये ।

स्वामीने कहा मेरे भक्तके साथ तुम उपद्रव करते हो यह उचित नहीं है मैं तुम्हारी सद्गतिका उपाय कररहा हूँ । ब्राह्मणी तुम्हारे लिये विधिपूर्वक दशकर्म करेगी जिससे तुम्हारा उद्धार हो जायगा । ऐसीही ब्राह्मणीको स्वामीने आज्ञा दियी इतनेमें ब्राह्मणी जाग पड़ी ।

ब्राह्मणीने अष्ट तीर्थमें स्नान करके दश दिन पर्यन्त स्नपन किया जिससे ब्राह्मणका मोक्ष होगया ।

दूसरे दिन स्वप्नमें स्वामीने ब्राह्मणीकी गोदमें दो नारियल देकर व्रत छोड़नेकी आज्ञा दियी और कहा तुम चिंता न करो तुम्हारे अवश्य ही पुत्र उत्पन्न होंगे ।

गुरुके प्रसादसे ब्राह्मणी निष्पाप हुई, समय अनुकूल होनेपर उसको दो पुत्र उत्पन्न हुए जब ज्येष्ठ पुत्र व्रतबंधके योग्य हुआ तब उसके व्रतबंधका दिन नियत हुआ नियत दिनके पूर्व दिन मध्य रात्रिके समय अकस्मात् उसी पुत्रको धनुर्वातकी पीड़ा उत्पन्न हुई और एकके पीछे दूसरी इस प्रकारसे अनेक बाधाओंने बालकको ग्रसित किया; उसकी सब इंद्रियाँ वक्र हो गयीं आकृति भयानक होगई तीन दिन लों वह बहुत कष्ट पाता रहा चौथे दिन संध्याके समय मृत्युका ग्रास हो गया।

पुत्रकी यह दशा देख जननीपर शोकका पर्वत टूट पड़ा, वह अत्यंत दुःख और आक्रोश करती हुई भूमिपर गिरगई, पाषाणसे शिर और छाती पीटती आँखोंसे आंसूकी धारा बहाती वह बिकल हो मृतकपर लोटने लगी, बार बार वह मूर्छित होती थी फिर जागृत होकर रुदन करती विलाप करती थी " हे पुत्र ! ! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चलेगये मेरे स्तनोंसे दूध व्यर्थ बह रहा है उसको क्यों नहीं उठकर पान करते हो ! ! अब मैं तुम्हारे गुण किस प्रकार भूलूँगी ! ! तुम्हारा वह बालभाषा ! तुम्हारा वह उन्नत स्वरूप ! तुम्हारी वह सुन्दर आकृति और सुशील वृत्ति मैं कहां देख पाऊँगी !! तुम्हारा जन्म मुझे स्वप्नकी संपत्ति कासा हो गया ! ! मैंने आशा कियी थी कि बुढ़ापेमें तुम मुझको सुख दोगे और मेरा संरक्षण करोगे परंतु वह समय कहाँ तुम पहिले ही मुझको दुःख देकर चले गये ! यह तुम्हारा धर्म नहीं है ! तुम्हारी प्राप्तिकी आशासे मैंने बहुत बहुत कष्ट उठाये हैं परंतु तुमको देख मैं सब भूलगगी थी !!" इस प्रकारसे वह विलाप कर रही थी । नाते गोतके लोगोंने तथा इष्टने बहुत कुछ समुझाया कि देव दानव ऋषीश्वरादि कोई भी होनहारसे कभी नहीं बचे । ब्रह्मदेव जो कुछ ललाटमें लिख देते हैं वही होता है । हरिहरादिकके अवतार हुए वे भी स्थिर नहीं रहे, मनुष्यकी क्या बात है तुम व्यर्थ शोक करती हो सुनो अब धीरज धरो ।

ज्यों ज्यों लोग उसको समझाते थे. त्यों २ वह पुत्रके गुणोंका अधिकाधिक स्मरण और उच्चारण करके अधिक :दुःख करती थी कि मुझे श्रीगुरुने वरदान दियाथा उनका बचन क्यों मिथ्या होता है ? हे त्रिमूर्ति ! ! हे सत्य-संकल्प ! मैं आपके बचनोंको सत्य मानती

थी परंतु आपने विश्वासघात किया! आप भगवान् दत्तात्रेयके अवतार हैं, आपही स्वामि नृसिंह सरस्वती हैं. आपहीने ध्रुव और विभीषणको वरदान दिया था अब आपके वरदान मैं किस प्रकार सत्य मानूं? मैं आपके विश्वाससे रही अब मैं आपके ऊपर प्राण दूंगी और जब ऐसा होगा कोई पुरुष आपका भजन पूजन नहीं करेगा। ब्रह्मदोषसे पीड़ित होकर मैंने आपके चरणोंका आश्रय किया था, प्रथम तो आपने हमे स्वीकार किया परंतु अब बीचही में आपने मुझको छोड़ दिया यह कोई धर्म नहीं है। आपने मेरे साथ ऐसा कार्य किया है जैसे कोई गाय व्याघ्रके भयसे किसी पुरुषकी शरणमें जाय और वह पुरुष ही गायको भक्षण कर डाले।

ब्राह्मणीको विलाप और दुःख करते हुए तीन दिन बीतगये तबलों मृतकसंस्कार भी नहीं होने पाया। ग्रामवासियोंने ब्राह्मणी-से कहा अब अधिक दुःख करना मूर्खता है प्रेतक्रिया होनी चाहिये। उसने मृतकको अपने पेटसे चिपका कर कहा इसके साथही मेरा भी दहन करो और यदि तुमलोग यह बात स्वीकार न करोगे तो मैं इसे कदापि न दूंगी। इसी अवसरमें वहांपर एक ब्रह्मचारी पहुंचे।

अध्याय २१

मृत पुत्रका पुनर्जीवन।

ब्रह्मचारीने ब्राह्मणीसे कहा तुम व्यर्थ शोक करती हो सृष्टिमें कोई स्थिर नहीं रहता, पानीके बुलबुलेके समान जीवन अस्थिर है, यह देह पंचमहाभूतोंसे बनायी जाती है, यह नाशवान् है आज इसका नाश हुआ तो क्या? और सौ वर्षमें हुआ तो क्या? किसी न किसी दिन देहका नाश अवश्य होता है, कहा है:—

अद्य वाब्दशतांते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः।

गर्भ धारण होतेही मृत्युका भी जन्म हो जाता है और पूर्व कर्मके अनुसार जितना भोग भोगना होता है सो भोगकर प्राणी मृत्युका ग्रास होता है, कोई पूर्व वयमें मर जाता है कोई उत्तर वयमें; जैसा जिसका पूर्व संचित होताहै उसके अनुसार कार्य होताहै। कोई किसीकी जननी नहीं है न कोई किसीका पुत्र है चर्म अस्थि मांस

मज्जादि के समूहका नाम देह है जिसके लिये क्या इतना रुदन कर रही हो ?

इस प्रकार स्वामीने बहुत कुछ ज्ञानोपदेश किया परंतु ब्राह्मणी के जीमें कुछ नहीं समाया उसने कहा " हे स्वामी ! यदि प्रारब्ध हीके अनुसार यह सब होता है तो परमेश्वरका भजन करना भी व्यर्थ है पारसके स्पर्श होने पर भी यदि लोहा सुवर्ण न हो जाय तो पारसका क्या उपयोग ? पहिले ही दुर्दैववश मैंने गुरुकी शरण लियी थी उन्होंने अभय वचन दिया था जिससे मुझको विश्वास हो गया था कि अब जो पुत्र होगा उसका मरण न होगा परंतु अनुभव तो विपरीत हुआ मैं नहीं जानती कि श्रीगुरुका दिया हुआ वरदान क्यों मिथ्या हो गया ? परंतु अब मैं अवश्य ही गुरुके शिर प्राण दूंगी ।

ब्राह्मणीका निश्चय देखकर ब्रह्मचारीने कहा जब कि गुरुके प्रसादसे तुमने पुत्र पाया है तो मृतकको उन्हींके द्वारपर लेजाना उचित है । ब्राह्मणीने ऐसाही किया । वह मृतकको पंचगंगा संगम पर लेगयी और वहां भी आक्रोश और रुदन करती रही, इतनेमें रात होगई, भयानक अरण्यमें रातके समय रहनेका किसीको साहस नहीं होता था, इस कारणसे उसके साथी सब उनको उसी निर्जन बनमें छोड़के चले गये । ये दोनों स्त्री पुरुष प्रेत सहित रुदन करते रहे । पुत्रशोकके कारणसे तीन दिन तकसे दोनों सोये नहीं थे आज तीन पहर रात बीतने पर स्त्री की कुछ आंख लग गयी तो वह स्वप्नमें क्या देखती है कि जटा भस्म धारण किये हुए, व्याघ्रचर्म पहिने हुए कंठमें रुद्राक्षके आभूषण पहिने हुए, एक तपस्वीने उस स्थान पर प्रगट होकर मृतकके सर्वांगमें लेपन कर दिया और प्रेतसे कहा कि मुँह फैला, प्रेतने मुँह फैलाया उसमें तपस्वीने भस्म डाल दिया फिर तपस्वीने ब्राह्मणीसे कहा तुम्हारे पुत्रका प्राणवायु भूलसे बाहर चलागया था उसको उसके शरीरमें भेजदिया है अब यह सजीव होगया है ।

इतना स्वप्न देखके ब्राह्मणी जागपड़ी उसने स्वप्नका वृत्तांत पतिसे कहा, उधर मृतक भी सजीव होकर उठ बैठा और उसने क्षुधाशांतिके अर्थ भोजन माँगा । माताने स्तनपान कराया । पुत्र

घरपर लेगये और सुखसे रहने लगे इस प्रकारका इस पंचगंगापर अनुभव होता है अनेक पुरुषोंको अनुभव हुआ है । हृदय शूल, गंडमाला, अपस्मार आदि सब रोग यहाँ गुरु पादुकाकी पूजा करनेसे दूर हो जाते हैं । वंध्या स्त्रीके पुत्र होता है, अंधेको नेत्र, बहरेको श्रवण-शक्ति, मंद मतिको बुद्धिमत्ता, मूकको वाचा; पंगुको चरण; दरिद्र-को धन प्राप्त होता है किन्तु भक्ति मात्र पूरी पूरी होनी चाहिये ।

अध्याय २२

वंध्या भैंसका दूध देना और दरिद्र ब्राह्मणका धनवान् होना ।

शिष्यने पूछा कि श्रीगुरु गाणगापुर पहुँचने के पश्चात् क्या हुआ ?

स्वामीने कहा गाणगापुरमें स्वामी गुप्त रूपसे निवास करते थे, उत्तरवाहिनी भीमा नदीके तीर पर (अमरजा संगम पर) एक अश्वत्थका वृक्ष है यह एक वरदानी स्थान है इस तीर्थकी बहुत बड़ी महिमा है यहाँ एक कारण ऐसा हुआ है कि जिससे यद्यपि गुरु गुप्त रूपसे रहते थे तथापि प्रगट हो गये । सहस्त्र किरणोंसे प्रकाशमान होनेवाले भगवान् सूर्य नारायणका गुप्तरूपसे रहना और श्रीगुरु का गुप्त रहना एकही सा है, अर्थात् श्रीगुरुका गुप्त रहना सर्वथा अशक्य ही है ।

मध्याह्न समय स्वामी नित्य ग्राममें भिक्षाको जाया करते थे । इस ग्राममें उस समय एक सौ घर वेदपाठी ब्राह्मणोंके थे जिनमें एक दरिद्र ब्राह्मणभी अपनी पतिव्रता स्त्री सहित रहताथा इस ब्राह्मण के घरमें एक बूढ़ी वंध्या भैंस थी उसकी नाकमें नाथ डाल दीगयी थी ग्रामवासी इस भैंसको नित्य खेतोंमें राख मट्टी कूड़ा कर्कट डालनेके लिये लेजाते और उसका केराया (भाड़ा) जोकुछ मिलता उससे ब्राह्मण अपना निर्वाह किया करता था । कभी कभी इसके घरपर श्रीगुरु भिक्षाको जाया करते थे यह देख अन्य ब्राह्मण उनकी निंदा किया करते थे कि यह कैसा यती है जो हम श्रौत स्मार्त कर्मों के अनुष्ठान करने वालोंके घर तो भिक्षाको नहीं आता जहाँ उत्तमोत्तम

पक्वान्नोंका भोजन मिल सकता है और दरिद्रके घर जाता है।

श्रीगुरुतो भक्तवत्सल थे, उनको सेवक और दीन जनोंका उद्धार कर्त्तव्य था वे ऐसे अभिमानी पुरुषोंके घर क्यों जाते? भगवान् शार्ङ्ग-धर ने भी तो विदुरके घर शाक पत्रका भोजन किया था परंतु अभिमानी दुर्योधनके कर वह नहीं गये । इसी प्रकार श्रीगुरु भी सात्विक मनुष्योंके साथ प्रीति रखते थे।

एक दिन भैंसके द्वारा ब्राह्मणको कुछ लाभ नहीं हुआ इस कारण से ब्राह्मण भिक्षा केलिये नगरमें गया था इधर स्वामी नृसिंह सरस्वती उसके घर पर भिक्षाके लिये आये ब्राह्मणीने स्वामीके चरणों पर मस्तक रखके प्राथना कियी कि हे स्वामी मेरे पति ग्राममें याचनाको गये हैं शीघ्र ही उत्कृष्ट धान्य लावेंगे तबलों आप कृपाकरके विश्राम कीजिये । ब्राह्मणीने स्वामीको आसन दिया उसपर स्वामी विराजमान हुए।

स्वामीने ब्राह्मणीसे पूछा कि तुम्हारे घरमें भैंस है फिर दूध क्यों नहीं पिलाती! ब्राह्मणीने कहा भगवन् ! यह भैंस नाम भरके लिये है जबसे यह जन्मी है आजलों न तो गर्भिणी हुई न बच्चा जनी । दूध कातो कहना ही क्या ? अब यह बूढ़ी होगई, मिट्टी आदि लादनेके कार्य से इस से जो कुछ द्रव्य मिलता है उससे हमारा निर्वाह होता है आज इस व्यवसायमें भी कुछ नहीं मिला इसीसे मेरे पति याचना करने गये हैं।

स्वामीने कहा तुम्हारा कहना मुझको मिथ्या प्रतीत होता है, मेरे सामने दूहकर दिखाओ तो मैं सत्य मानूं।

ब्राह्मणीने स्वामीके सामने दूहनेका प्रयत्न किया तो सहज हीमें भैंसने इतना दूध दिया जिससे पात्र भरगया।

ब्राह्मणीको आनंद और विस्मय एक ही साथ हुए उसने जान लिया यह तपस्वी नहीं हैं साक्षात् ईश्वर हमारा कल्याण करनेके अर्थ मनुष्यका स्वरूप धारण करके प्रगट हुए हैं। ब्राह्मणीने शीघ्र भली भाँति दूध औटाया और भक्ति सहित स्वामीको पान कराया। दूध पान कर चुकनेपर स्वामीने ब्राह्मणीको आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे घर पर अखंड लक्ष्मी निवास करेगी और तुम पुत्र पौत्रादि सहित सुखसे रहोगी। यह कहकर स्वामी अपने स्थानको चलेगये।

स्वामीके चले जाने पीछें ब्राह्मण घरंपर आया और स्त्री के मुखसे वृत्तांत सुन आनंदित हुआ। उसने भी जाना कि स्वामी ईश्वरके अवतार हैं। फिर दोनोंने स्वामीके स्थानपर जाकर भक्तिपूर्वक स्वामीकी पूजा कियी अनेक प्रकारसे स्तवन भजन किये गुरुकी कृपासे उन्होंने गुरुभक्ति करते हुए सुखसे आयु बितायी।

अध्याय २३

गाणगापुरमें स्वामी का पदार्पण।

भैंसका वृत्तांत गाणगापुर भरमें शीघ्र ही फैल गया जो सुनता था वह विस्मय करता था; यहाँलों कि उस ग्रामका अधिपति स्वयम् यह चमत्कारके देखनेके अर्थ ब्राह्मणके घर गया और ब्राह्मणसे सब वृत्तांत सुनकर अपने पुत्र कलत्रादि सहित स्वामीके आश्रमपर गया और स्वामीको दंडवत् प्रणाम करके उसने स्तुति कियी कि हे भगवन्! आप जगद्गुरु हैं, मैं मंदमति आपकी महिमा नहीं जानता, मैं माया मोहसे अंध होरहा हूँ मेरा उद्धार कीजिये और गाणगापुरको पावन कीजिये। गाणगापुर में अपना मठ स्थापित कीजिये और उसीमें निवास कीजिये।

स्वामीने मनमें कहा "अब तो प्रगट होना पड़ा"। फिर उन्होंने राजासे कहा तुम्हरा अंतःकरण भक्तियुक्त है इसलिये जैसी तुम्हारी इच्छा होगी उसी के अनुसार किया जायगा।

तब राजाने स्वामीको नगरमें लेजानेका निश्चय किया। हाथी घोड़े रथ, अनेक बहुमूल्य आभूषणों से सजाकर आगे किये गये, रत्नजड़ित उच्च सिंहासनयुक्त बहुमूल्य आभूषणोंसे सजे हुए एक हाथी पर स्वामीजी आरूढ़ कराये गये। राजा अपने पुत्र कलत्रादि सहित स्वामीके हाथीके साथ रहा। मृदंग झांझ आदि अनेक प्रकार के वाद्य बजाते हुए मंगल गीत और भजनके सुस्वर गायन करते हुए छत्र पताका सहित समारंभके साथ स्वामी नगर की ओर चले मार्गमें ब्राह्मण वेदघोष करते थे, बंदीजन विरद उच्चारते थे।

नगरमें प्रवेश करते समय पुरजनोंने विधिवत् पूजा कियी, राजा की भक्ति देख स्वामी प्रसन्न हुए। अब नगरमें प्रवेश हुआ।

ब्रह्मराक्षसका उद्धार ।

इस ग्रामकी पश्चिम दिशामें एक अश्वत्थका वृक्ष है उसीके समीप में एक उजाड़ घर था जिसमे नित्य मनुष्योंका आहार करनेवाली एक महाभयंकर और क्रूर ब्रह्मराक्षस रहता था इसी कारणसे वह घर उजाड़ था । स्वामीने अपने निवास के लिये इसी घरकी योजना कियी ।

घरमें प्रवेश करतेही ब्रह्मराक्षसने प्रगट होकर हाथ जोड़ प्रार्थना कियी कि हे भगवन् मेरा उद्धार कीजिये मैं बहुत कष्ट उठारहा हूं । स्वामीने दया करके उसके मस्तक पर हाथ रखा और वह तत्काल मनुष्यके स्वरूप में होकर स्वामीके चरणों में लिपटगया । स्वामीने आज्ञा दियी कि संगम पर जाकर स्नान करो तब तुम्हारी मुक्ति होगी और फिर संसारके फेरमें न पड़ोगे । ब्रह्मराक्षसने स्वामीकी आज्ञा के अनुसार किया और वह मुक्त होगया ।

यहाँ निवास करते हुए स्वामी नित्य संगममर स्नान को जाया करतेथे और राजा भक्तियुक्त होकर सैन्यादि सहित साथमें जाया करता था। नित्य भजन पूजन अनुष्ठानादिक का बडाही आनंद आता था राजा स्वयम् स्वामी की पूजा अर्चा में भक्तिपूर्वक रहता था। स्वामीका मठ बहुमूल्य उपचारों से सजाया गया था । कभी कभी राजा अपनी पालकी में स्वामी को बैठाकर सैन्य सहित बनयात्रा को लेजाता लौटते समय स्वामीको मठपर पहुँचाकर सैन्य सहित दंडवत् प्रणाम करके स्वामीसे आज्ञा लेकर राजभवन को जाता स्वामी सदैव भक्ताधीन रहते हैं जैसी जैसी भक्तकी इच्छा देखते हैं तैसाही कार्य करते हैं ।

अध्याय २४

त्रिविक्रम भारती को विश्वरूप दर्शन ।

कुमसी नामके नगरमें त्रिविक्रम भारती नामक एक तपस्वी तीनों वेदके अधिकारी रहते थे । उन्होंने स्वामी का वृत्तांत सुनकर निन्दा करना आरंभ किया; वह कहते थे कि चतुर्थाश्रम की स्थिति में

"पालकी पर आरूढ़ होना, सैन्यादिक साथ में रखना" इन कार्यों से यति का ढोंगी होना सिद्ध है। स्वामी अंतर्यामी थे। उन्होंने भारती के मनका भाव तत्काल जान लिया तब उन्होंने, कुमसी जाने का अपना निश्चय राजासे निवेदन किया। राजाने तत्काल हाथी घोड़े, पालकी सैन्य आदि सब सजाकर स्वामी के सम्मुख उपस्थित करदिये। स्वामी पालकी में बैठे और भजन गीत वाद्य आदि समारंभसे प्रस्थान हुआ।

भारती भगवान् नृसिंहावतार की मूर्तिकी नित्य मानसी पूजा किया करते थे. इस दिन उनका ध्यान स्थिर नहीं होता था यह देख वह मनमें चिंता करने लगे कि क्या कारण है जो आज भगवान्की मूर्ति ध्यानमें नहीं आती? क्या भगवान् ने मुझपर से प्रेम हटा लिया अथवा क्या मेरी आज पर्यन्तकी तपस्या निष्फल होगई! इस प्रकार चिंता कररहे थे कि इतनेमें दूर नदीके किनारेपर उसी स्वरूपकी सहस्रों मूर्तियां दिखाई पड़ीं जिसका वह ध्यान किया करते थे अर्थात् स्वामी नृसिंह सरस्वती और उनके सब साथी एकही स्वरूप में पृथक पृथक दिखाई दिये। यह देखकर भारतीको बड़ा विस्मय हुआ वह तत्काल घरसे निकलकर दंडवत् प्रणाम करते हुए स्वामी के सन्निध जाकर उनके चरणोंसे लिपटगये और स्तुति करने लगे हे भगवान्! हे त्रिमूर्ति! जगद्गुरु! आपके स्वरूपका ज्ञान मुझे नहीं है; अविद्यासे मेरी बुद्धि नष्ट होगयी है और ज्ञान चले गये हैं "आप सब जगत्में व्याप्त हैं अब दया करके अपने स्वरूपका दर्शन दीजिये और मेरे अंतःकरणका अंधकार दूर कीजिये। आज मेरे भाग्यका उदय हुआ है अबलों जो मैंने आपका ध्यान किया वह आज सुफल हुआ। इस प्रकार अनेक प्रकारसे स्तुति भारतीने कियी तब स्वामीने निज स्वरूपका दर्शन दिया और उनके साथकी सब सैन्य पृथक दिखाई दियी। स्वामी ने कहा "तुम नित्य मेरी निंदा किया करते थे अब बताओ कौन ढोंग करता है?

फिर भारतीने स्तवन किया "हे भगवन्! मैं अपराधी हूं क्षमा कीजिये। मैं अज्ञानके समुद्रमें डूब रहा हूं ज्ञानकी नौकामें बैठाकर मुझे पार कीजिये।" इस भांति और भी अनेक प्रकारसे स्तवन करने पर श्रीगुरुने प्रसन्न होकर कहा "मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हुआ

तुम सद्गति पाओगे। तुम संसार चक्रसे छूट जाओगे।" इतना कहकर स्वामी अपने स्थानको लौट गये।

अध्याय २५

ब्राह्मणोंका यवनके सम्मुख वेदपठन।

वैदुर नामका एक नगर है वहाँका राजा यवन था यह राजा ब्राह्मणोंसे द्वेष किया करता था। जीवहिंसाके विषयमें ब्राह्मणोंसे वाद किया करता था। ब्राह्मणोंसे अपने सम्मुख वेद पढ़ता, जो ब्राह्मण उसके सम्मुख वेद पढ़ता उस को प्रसन्न होकर द्रव्य देता था और उसका सम्मान करता था। वेदका अर्थ कहनेवाले ब्राह्मणोंसे वह अधिक प्रसन्न होता था, उनकी योग्यता देखकर अपार द्रव्य देता था। यह देख ज्ञानीजन कह देते कि हम वेद नहीं जानते। मूर्ख द्रव्य-लोभी उसके सम्मुख उपस्थित होकर उसकी आज्ञाके अनुसार वेद पढ़कर यथेच्छ द्रव्य संपादन करते थे। इन ब्राह्मणोंसे राजा यज्ञ कांडादिकका भेद पाकर ब्राह्मणों की निंदा करता था। कहता था कि ब्राह्मण लोग स्वयम् तो यज्ञमें जीवहिंसा करते हैं परंतु हम लोग जब हिंसा करते हैं तो हमको म्लेच्छ कहकर हमारी निंदा करते हैं।

राजाकी यह परिपाटी देख और सुनकर देश देशांतरके लोभी ब्राह्मण आकर यथेच्छ द्रव्य लाभ करने लगे। एक दिन दो ब्राह्मण वेदपाठी राजाके सम्मुख उपस्थित हुए और उन्होंने अपने मुंह अपनी प्रशंसा करके राजासे कहा " हमारे समान विद्वान् शास्त्रार्थ करने वाला सृष्टिमें कोई पुरुष नहीं है, यदि आपके राज्यमें कोई हो तो बुलवाया जाय, और चारों वेदोंका वाद कराया जाय। "

राजाने अपने नगरके सब विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर वाद विवाद करनेकी आज्ञा दियी। इनमें जो अज्ञानी थे वे तो स्वभावतः ही किसी योग्य नहीं थे परंतु जो ज्ञानी और योग्य थे उन्होंने भी कह दिया कि जो दो ब्राह्मण आपके यहां उपस्थित हैं वे वास्तवमें महाविद्वान और सर्व मान्य हैं उनके साथ वाद विवाद करनेके योग्य हममेंसे कोई नहीं है। यह सुन राजाने दोनों ब्राह्मणोंका वस्त्र आभूषण

द्रव्यादिसे सम्मानकर उनको हाथीपर बैठा नगरमें फिराया और उनको ब्राह्मणोंका राजा बनाया।

अब इन ब्राह्मणोंके राजाओंने मारे अभिमानके मदसे उन्मत्त होकर एक दिन राजासे कहा कि आपने हमारा सम्मान तो बहुत कुछ किया परंतु हमसे किसीने शास्त्रार्थ नहीं किया हमारे मनका वाद विवाद करनेका उत्साह मनहीमें रहगया। हमारा विद्याभ्यास करनेका परिश्रम निरर्थक हुआ, इसलिये यदि आपकी आज्ञा होतो आपके राज्यमें घूम फिरकर हम देखें कि कोई हमसे वाद करनेके योग्य है या नहीं। राजाने ब्राह्मणोंको आज्ञा दे दियी और वे गाँव गाँव और घर घर घूम फिरकर शोध करने लगे परंतु कोई उनसे वाद विवाद करनेको उद्यत नहीं हुआ। सबसे जयपत्र लेतेहुए कुछ कालमें भीमा नदीके तीरपर कुमसी ग्राममें पहुंचे। यहाँ त्रिविक्रम भारती रहते थे।

अभिमानी विप्रोंसे त्रिविक्रमका छल।

कुमसीमें ब्रह्मराजोंने विद्वान् ब्राह्मणोंकी खोज कियी तो ग्रामवासियोंने त्रिविक्रम भारतीको शास्त्रार्थ करनेके योग्य विद्वान् बताया। दोनों ब्राह्मण अभिमानसे फूलकर देहमें नहीं समाते थे उन्होंने भारतीके पास पहुँचकर उनसे कहा तुम त्रिवेदी कहे जाते हो सो हमसे वाद करो अथवा जयपत्र लिखदो।

भारतीने कहाः-त्रिवेदी क्या यदि मैं एकही वेद पढ़ा होता तो क्या अरण्य वासका क्लेश सहना स्वीकार करता? तुम्हारी भांति मैं भी राजासे पूजित होकर सुखोपभोग न करता? मैं कुछ नहीं जानता मैं तो एक भिक्षुक तपस्वी हूं मैं तुमसे शास्त्रार्थ करने योग्य नहीं हूं।

ब्राह्मणोंने अधिक अभिमानसे अपने पासके जयपत्र निकालकर भारतीको दिखलाए और कहा इसी प्रकारका आपभी जयपत्र लिख दीजिये। भारतीने बहुत कुछ प्रार्थना कियी परंतु वे कुछ नहीं मानते थे; तब भारतीने अपने मनमें विचार किया कि इन ब्रह्मणोंने अभिमान के मदसे अंध होकर अनेक सत्पुरुषोंका अपमान किया है इसलिये इनको श्रीगुरुके पास लेजाकर शिक्षा कराना उचित होगा। फिर भारतीने ब्राह्मणोंसे कहा यहांसे थोड़ी दूरपर हमारे गुरु रहते हैं तुम

कृपा करके वहांतक चलनेका परिश्रम करोगे तो उत्तम होगा; याती वहांपर मैं तुमको जयपत्र लिख दूंगा या तुम्हारे अंतःकरणका अभिमान ही गमन होजायगा।

ब्राह्मणोंने भारतीको पादचारी आगे किया, आप पालकी पर आरूढ़ होकर पीछे पीछे चले। गुरुके स्थानपर पहुंचकर भारती ने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रख अनेक प्रकारसे स्तवन किया, पीछे स्वामीके पूछनेपर ब्रह्मराजोंका वृत्तान्त निवेदन किया। स्वामीने ब्राह्मणोंसे कुशलप्रश्न करके कहा कि हमलोग तपस्वी संन्यासी हैं हमसे जयपत्र लेके आपकी कौन बड़ाई होसकती है?

ब्राह्मणोंने कहा हम अखिल भूमंडल जीत चुके हैं, कोई मनुष्य हमारे साथ वाद करनेके अर्थ उपस्थित नहीं हुआ, हमारे समान विद्वान् अखिल जगत्में कोई नहीं है, तुमको वेद शास्त्र व्याकरणादिकका कुछ ज्ञान हो तो हमसे वाद करो नहीं तो जयपत्र लिखदो। यही हमने भारतीसे कहा था परंतु उसने जयपत्र नहीं लिखा किंतु वह हमको तुम्हारे पास लेआया। क्या तुम कुछ वेदांतका वाद विवाद करना जानते हो?

स्वामीने कहा "हे ब्राह्मणो, वेदका अन्त तो ब्रह्मादिक भी नहीं जानते तुम्हारा वेदांतके विषयमें अभिमान रखना व्यर्थ है तुमको अभिमान छोड़ देना उचित है, अभिमान बहुत बुरा होता है, अभिमान के कारणसे पुरुषोंका नाश होजाता है, राजा बलि, बाणासुर, रावण, कौरवादिकी अभिमान ही के कारणसे क्या दशा हुई है, उसका विचार करो, तुम अपने आपको वेदांती बताते हो सो बताओ तुम कितना वेदांत जानते हो?"

ब्राह्मणोंने कहा "तीनों वेद, भाष्य, तर्क, व्याकरण, संहिता जानते हैं।"

अध्याय २६ ।

वेदरचनाका वर्णन ।

श्रीगुरुने ब्राह्मणोंसे कहा " तुम किस भ्रममें भूले फिरते हो ? वेदांत साक्षात् ब्रह्मदेव भी पूरा पूरा नहीं जानते; अनंत वेद हैं, साक्षात् नारायणने अवतार धारण करके वेदोंको प्रसिद्ध किया जिससे उनका नाम वेदव्यास प्रसिद्ध हुआ, परंतु उन्होंने भी साधारण ही वेदांत वर्णन किया । वेदव्यासके चार शिष्य थे १ पैल, २ वैशंपायन, ३ जैमिनि और ४ सुमंत । चारोंने वेदाभ्यास करनेकी इच्छा कियी उनसे वेदव्यासने कहा " चारों वेद प्रतिशिष्यके लिये पढ़ना अशक्य है एक वेद पढनेके लिये कल्पांत का समय चाहिये, चारों वेद कब पढ़ पाओगे ? इससे यह उत्तम होगा कि एक एक वेद चारों जन पढ़ो क्योंकि तीन ब्रह्म कल्प बीत गये तब लों भरद्वाज मुनि पढ़तेरहे परंतु उन्होंने वेदका पार नहीं पाया । भरद्वाजने पहिले कुछ अभ्यास कियाथा, फिर तपस्या करके ब्रह्मदेव को प्रसन्न किया; उन्होंने पर्वतप्राय तीन ढेर दिखाकर कहा इतने वेद हैं सब वेद पढ़ना तो असंभव है, जितना पढ सको पढो । भरद्वाजने पर्वतप्राय ढेरोंको देखकर कहा " वास्तवमें इतने वेदका पढ़ना अशक्य है अब जैसी आप आज्ञा करेंगे तैसाही मैं करूँगा । तब ब्रह्मदेवने तीन मुट्ठी मंत्र दिये उनसे चार वेद बने, उनका भारद्वाजने अभ्यास किया । येही चार वेद व्यासजीने अपने चारो शिष्यों को (प्रतिशिष्य एक) पढ़ाए । पैलको ऋग्वेद, वंशपायनको यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद और सुमंतको अथर्वणवेद, चारों वेदोके स्वरूप निम्न लिखित तालिकाके अनुसार हैं—

वेद	उपवेद	गोत्र	देवता	छंद	ध्यान
ऋग्वेद	आयुर्वेद	अत्रि	ब्रह्मा	गायत्री	रक्तवर्ण, कमलके सदृश-नेत्र, विस्तीर्ण ग्रीवा, कंबुके जैसा कंठ, श्मश्रुके समान कुंचित केश, छिररत्नी दीर्घ।
यजुर्वेद	धनुर्वेद	भारद्वाज	रुद्र	त्रिष्टुप्	कांचनके जैसा मनोहर वर्ण, किंचित्स्थूल देह, हाथमें कपाल, भूरी आँखें, पाँच अरत्नीस्थूल
सामवेद	गंधर्व	काश्यप	विष्णु	जगती	कांचनके सदृश वर्ण, सूर्यके समान किरण, शुचि वस्त्रप्रावर्ण, क्षौम दंती चर्म, दंडधारी, कानोंलों नेत्र, षड रत्नी दीर्घ।
अथर्वण	मंत्रशास्त्र	वैजान	इंद्र	अनुष्टुप्	कृष्णवर्ण, तीक्ष्ण चंड-क्रूर कामरूपी क्षुद्र कर्म सदार नाम विश्वसृजक साध्यकर्म फल मूर्घ्नि

अब इन चारों वेदोंके पृथक् पृथक् भेद, शाखा, मूल आदि विस्तार सहित स्वामीने ब्राह्मणोंसे कहे। उनका ब्यौरा इस प्रकार है:—

ऋग्वेद। इस वेदके बारह भेद हैं। १ श्रावका २ श्रवण ३—४ पराक्रमी (२) ५–६ षट्क्रम (२) ७ दण्ड ये सात निर्गुणी भेद हैं। ८ अश्वलायनी ९ शांखायनी १० शाकला ११ बाष्कला १२ मान्डुक्य। व्यास मुनिने ऋग्वेदके भेद उपर्युक्त रीतिसे पैलसे (शिष्यसे) कहे हैं और वैशम्पायनको यजुर्वेदके।

यजुर्वेद। इसके भेद इस प्रकार हैं १ चरका २ अन्हेरिका ३ कठा

४ प्राच्याकठा ५ कपिष्ठला ६ चारायण ७ वारतनतविया ८ श्वेत ९ श्वेततर १० मैत्रायणी।

(इस दसवीं शाखाके सात भेद हैं। १ मानवा २ दुंदुभी ३ ऐकेय वराह ५ हरिद्रव्य ६ शाम ७ शामायणी)

वाजनीय शाखाके अठारह भेद हैं।

१ वाजसनीय २ जाबालीक ३ बौध्य ४ कण्व ५ मध्यंदिन ६ शाबीय ७ स्थापायनी ८ कापाला ९ पौण्ड्रवत्स १० कोटी ११ परमवाटिका १२ पाराशर १३ वर्धेय १४ वैजतेय १५ औख्या १६ गालव १७ वैजरा १८ वैज।

तैत्तरीय शाखाके ५ भेद हैं। १ आपस्तंबी २ बौधायनी ३ सत्याषाढ़ी ४ हिरण्यकेशी ५ औखेय। इसके छः अंग हैं १ शिक्षा २ व्याकरण ३ कल्प ४ निरुक्त ५ छंद, ६ ज्योतिष। १ प्रातिपद २ अनुपम ३ छंद ४ भाषा ५ धर्म ६ मीमांसा ७ न्याय ८ कर्मसंहिता-ये आठ उपांग हैं।

वैशंपायन ने कहा कि शाखाभेद तो आपने कहे; परन्तु यजुर्वेदका मूल जानना चाहता हूं। व्यासने कहा-मंत्र, ब्राह्मण और संहिताका मिश्रण भी मूल होता है। यह यज्ञादिक कर्म क्रियाके लिये है। अन्य सब शाखा पल्लव हैं।

वैशम्पायनने कहा-यजुर्वेदका मूल विस्तार पूर्वक कहिये। मुनिने कहा-तीन ग्रन्थ हैं, संहिता के सात अष्टक हैं।

कांड	पन्न		अनुवाक	पचासे
१	१	इषेत्वा	१४	२८
	२	आपउंदन्तु	१४	३४
	३	देवस्यत्वा	११	३१
	४	आददे	४६	५४
	५	देवासुरा	११	५१
	६	संत्वासिं चामि	१२	५१
	७	पाकयज्ञ	१३	५१
	८	अनुमत्यै	२२	४२
२	१	वायव्य	११	६५
	२	प्रजापति	१२	७५

कांड	पन्न		अनुवाक	पचासें
	३	आंदित्य	१४	५६
	४	देवामनुष्या	१४	४८
	५	विश्वरूप	१२	७४
	६	समिधा	१२	७०
३	१	प्रजापति	११	४२
	२	योवैपवमान	११	४६
	३	अग्नेतेजस्वि	११	३६
	४	विवा	११	४६
	५	पूर्णा	११	३६
४	१	युंजान	११	४६
	२	विष्णोक्रम	११	४८
	३	अपांत्वा	१३	३६
	४	रश्मिरसी	१२	३७
	५	नमस्तेरुद्र	११	२७
	६	अश्मन्नूर्जं	९	४६
	७	अग्नाविष्णू	१५	३९
५	१	सावित्राणी	११	५९
	२	विष्णुमुखा	१२	६४
	३	उत्सन्नयज्ञ	१२	४८
	४	देवासुरा	१२	५८
	५	यदेके	२४	६२
	६	हिरण्यवर्णा	२३	५४
	७	योवाआयथा	५६	५८
६	१	प्राचीनवंश	११	७६
	२	यदुभव	११	५९
	३	चात्वाल	११	६२

कांड	पन्न		अनुवाक	पचासे
	४	यज्ञेन	११	५१
	५	इंद्रोवृत्र	११	४२
	६	सुवंगाय	११	४३
७	१	प्रजनन	२०	५२
	२	साध्या	२०	५०
	३	प्रजवेवा	२०	४२
	४	बृहस्पति	२२	५३
	५	गावावा	२५	५४

तीन अष्टक ब्राह्मणमें हैं, जिनका क्रम यह है:—

अष्टकोंकी संख्या	पन्नोंकी संख्या	पन्नोंके नाम	अनुवाक	दशक
१	१	ब्रह्मसंधत्त	१०	८०
	२	उद्धन्य	६	५०
	३	देवासुरा	१०	६५
	४	उभये	१०	६६
	५	अग्नेकृत्तिका	१२	६२
	६	अनुमत्य	१०	७५
	७	एतद्ब्राह्मण	१०	६४
	८	वरुणस्य	१०	३७
२	१	अंगिरस	११	६०
	२	प्रजापति	११	७३
	३	ब्रह्मवादिन	११	५०
	४	जुष्टो	८	८०
	५	प्राणोरक्षति	८	४५
	६	स्वाद्वींत्वा	२०	९४
	७	त्रिवृत्	१८	६६
	८	पीवोन्ना	९	७९
३	१	अग्निर्नःपातु	६	६३

अष्टकोंकी संख्या	पन्नोंकी संख्या	पन्नोंके नाम	अनुवाक	दशक
	२	तृतीयस्याम्	१०	८५
	३	प्रत्युष्ठ	११	७९
	४	ब्रह्मणे	१	१९
	५	सत्य	१३	२९
	६	अंजंती	१५	३८
	७	सर्वान्चा	१४	१३०
	८	सांग्रहण्य	१३	९१
	९	प्रजापतिरश्वमेध	२३	८४
	१०	संज्ञान	११	४९
	११	लोकोसि	१०	६२
	१२	तुभ्यम्	९	५६

अरणके दस पन्न इस प्रकारके हैं।

१	भद्र	३२	१३०
२	स्वाध्या	२०	२४
३	चित्तिब्राह्मण	२१	५२
४	मंत्रब्राह्मण	४२	६२
५	श्रेष्ठब्राह्मण	१२	१०८
६	पितृमेध	१२	२७
७	शीक्षा	१२	२३
८	ब्रह्मविदा	९	१४
९	भृगुर्वै	१०	१९
१०	नारायण	३०	१०४

अब जैमिनिको सामवेद पढ़ाया उसका विस्तार कहते हैं:—इसको नारायणके सिवाय और कोई नहीं जान सकता। कुछ कुछ व्यासने कहे हैं। वे इस प्रकार हैं।

१ असुरायणीया २ वासूरायणीया ३ वार्ततियावा ४ प्राञ्जली ५ ऋग्विधाप्रातरेय ६ प्राचीनयोगशाख ७ ज्ञानयोग ८ आरायणीया।

इसके दस भेद हैं १ नारायणी २ सांख्यायनी ३ शाठया, ४ मुद्गल ५ खल्वला ६ महाखल्वला ७ लांगूला ८ कैमुथा ९ गौतमा १० जैमिनि।

अब अथर्वण वेदका विस्तार कहते हैं। इसके ९ भेद हैं १ पैपल २ दांत ३ प्रदांत ४ स्तोता ५ औता ६ ब्रह्मदालव ७ सौनली ८ शौनक देवल ९ चरणविद्या।

अन्तमें कहा "तुम सब जगतमें अपने आपको अध्यापक बनाकर अपने मुँह अपनी प्रशंसा करते फिरते हो, सो बताओ कि तुम भी किसी एक शाखाका स्वरूप जानते हो"? इसका कुछ उत्तर ब्राह्मण नहीं देसके।

फिर स्वामीने कहा "इस भरतखंडमें पूर्व कालमें पुण्य बहुत होता था, और सब लोग वर्णाश्रम धर्मके अनुसार व्यवहार करते थे। अब इस कलियुगमें ब्राह्मणोंने कर्म छोड दिया। देवता लुप्त हो गये, म्लेच्छोंके सन्मुख वेद पढ़नेसे ब्राह्मण निःसत्व हो गये। वेदके बलसे पहिले ब्राह्मण देवताओंकी भांति राजाओंसे पूजे जाते थे और भूसुर कहलाते थे; सबलोग ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेकी इच्छा किया करते थे। परन्तु ब्राह्मण उसका अंगीकार करना नहीं चाहते थे। वेद हीके बलसे इन्द्रादिक देवता ही क्या साक्षात् विष्णु भी ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे और उनसे डरते भी थे। क्यों न डरें? कहा है–

देवाधीनं जगत्सर्वं मंत्राधीना श्चदेवताः।
ते मंत्रा ब्राह्मणाधीनाः ब्राह्मणो मम दैवतम् ॥

वेद हीके बलसे ब्राह्मण पर्वतको तृण और तृणको पर्वत कर देते थे, राजाको दरिद्र और दरिद्रको राजा बना देते थे, अब ब्राह्मणोंने वेद विहित मार्ग छोड़ दिया, हीन जातिके सन्मुख वेद पढ़ना आरंभ कर दिया, ऐसे ब्राह्मणोंका मुँह देखना उचित नहीं; वे ब्रह्मराक्षस होते हैं। अस्तु, अब तुम यह बताओ कि तुम लोगोंसे वाद करना चाहते हो सो तुम वेद कितना जानते हो ? ब्रह्मणोंको बिना कारण सतानेसे तुम क्या लाभ उठाओगे? ऐसा कार्य करनेके लिये तुमको किसने परामर्श दिया? अब तुमको यह मार्ग छोड़ कर अपने घरका मार्ग स्वीकार करना चाहिये। नहीं तो किसी समय अहंकारके मदसे अपना प्राण गवाँ बैठोगे। तात्पर्य यह है कि स्वामीने बहुत कुछ समझाया परन्तु उनके मदका घड़ा फूटनेका समय समीप आ गया था, उनके मस्तिष्कके द्वारके किवाड़े बंद थे स्वामीके मधुर उपदेशका

प्रवेशर उनके मस्तिष्कमें नहीं हुआ । उन्होंने वादविवाद करने और जयपत्र लेनेका अपना आग्रह नहीं छोड़ा ।

अध्याय २७

पतितको ज्ञानप्राप्ति ।

स्वामीने कहा-जैसा तुम्हारे प्रारब्धमें होगा वही होगा । इतनेमें मार्गसे जाता हुआ एक यात्री दिखाई पड़ा । उसको स्वामीने बुलाकर पूछा "तुम कौन हो ? और तुम्हारा स्थान कहां है ?"- यात्री ने कहा 'कृपानिधि ! मैं एक हीन जाति (मातंग) में जन्मा हूं । गांवके बाहर मैं रहता हूं । आपने स्वयं मुझे बुलाया है । इससे मुझे विश्वास होता है कि अब आप मेरा उद्धार करेंगे ।" यह कहकर उसने स्वामीको दंडवत् प्रणाम किया । और यह सच भी है; क्योंकि श्रीगुरुकी अमृतमयी दृष्टि उसपर पड़ गयी । अब उसके लिये कौन हित ऐसा था जो वह नहीं पा सकता था ?

स्वामीकी आज्ञासे एक शिष्यने दंडकी नोकसे पृथ्वीपर सात रेखाएँ खींच दियीं, तब स्वामीने मातंगसे एकके पीछे दूसरी इस क्रमसे सातों रेखायें लाँघ जाने और प्रति रेखाके लाँघनेपर अपनी स्थिति वर्णन करनेकी आज्ञा दियी ।

पहिली रेखा मातंग लाँघ गया और बोला मैं किरात वंशमें जन्मा हूं । मेरा नाम वनरक्षक है । दूसरी रेखाके लाँघनेपर वह ज्ञानियोंकी भांति भाषण करने लगा; जिसको देख ब्राह्मणोंने विस्मय किया । तीसरी रेखा लाँघकर मातंगनें कहा, मैं गंगापुत्र हूँ । गंगाके तीरपर मेरा निवास है । चौथी रेखा लाँघकर बोला मैं शूद्र हूं, अपने खेतको जा रहा हूं, पांचवीं पर कहा मैं वैश्य हूं, सोमदत्त मेरा नाम है ; छठीपर कहा मैं क्षत्रिय हूं । गोदावरी मेरा नाम है । सातवीं रेखा लाँघते ही उसने कहा मैं ब्राह्मण हूं और वेदशास्त्रोंका अध्यापक हूं । तब स्वामीने उसको मदोन्मत्त ब्राह्मणोंसे वाद करनेकी आज्ञा करके उसके मस्तकपर अभिमंत्रित भस्म लगा दिया, जिससे उसके अतःकरणमें ज्ञान रूपी सूर्य उदय हुआ ।

अभिमानियोंका गर्वहरण ।

मानसरोवरपर जानेसे काक हंस हो जाता है। इसीप्रकार स्वामीके अनुग्रहसे वह पतित अखिल शास्त्रोंका ज्ञाता हो गया। उसकी ज्ञान-ज्योतिके प्रकाशसे दोनों उन्मत्त ब्राह्मणोंका मद उतर गया। वे निस्तेज हो गये। उनकी जिह्वा उनका साथ नहीं देती थी, कानोंने मातंग हीका क्या ? किसीका भी कहा सुननेसे नाहीं कह दिया। ब्राह्मण थर थर कांपते थे, उनके हृदयमें शूल उत्पन्न हुआ; उनका गर्व दूर हो गया; वे स्वामीके चरणोंमें लिपट गये और गिड़गिड़ाकर बोले " हे स्वामी क्षमा कीजिये। हमने माया मोहके जालमें फंसकर अनेक अपराध किये, आपकी महिमा नहीं जानी, आप साक्षात् ईश्वर हैं, आप ही सब जगत्के उत्पन्न, पालन और संहारकर्ता हैं, हमारा उद्धार कीजिये।"

ब्राह्मणोंने बहुत कुछ स्तवन किया परन्तु अब क्या हो सकता है ? स्वामीने कहा "तुमने जैसी कुछ दुष्टता कियी है, उसका परिणाम तुमको अवश्य ही भोगना उचित है, और इसलिये तुमको राक्षसका जन्म लेना होगा। ब्राह्मण बहुत घिघियाये, परन्तु स्वामी यही कहते रहे कि जो जैसा कार्य करता है वह उसका फल जबलों भोग नहीं लेता है तबलों उसको सद्गति नहीं मिल सकती है। अब तुम अपनी जोड बारह वर्षलों गंगाके किनारेपर शांन्तिसे रहने दो। पीछे एक ब्राह्मण का उपदेश पाकर मुक्त होओगे।" दोनों ब्राह्मण कष्ट पाते रोते घिघियाते अंतमें निरुपाय और निराश होते पछताते हुए अपने कृत कार्यका फल भोगनेके लिये चले गये। उन्हें शूलकी व्याधि हो गई। कितनी भी चिकित्सा कियी पर लाभ न हुआ। निदान उसीसे उनके प्राण गये। अब उन मदोन्मत्तकी जोड़ राक्षसोंकी जोडमें पलट गई।

अध्याय २८

पतितके प्रति गुरुका धर्माधर्म कथन।

मातंगने स्वामीसे पूछा "हेभगवन् ! आपकी कृपा और अनुग्रहसे मैंने यह तो जान लिया कि मैं पूर्व जन्ममें ब्राह्मण था, परन्तु यह नहीं ज्ञान हुआ कि मैंने कौन पाप किये थे, जिनके प्रभावसे सात जन्म

पर्यन्त नीच योनियोंमें रहकर मुझे इतने कष्ट उठाने पड़े ?"

स्वामीने कहा "ब्राह्मणकी स्त्रीसे जो पुरुष व्यभिचार करता है वह (मातंग) की योनि पाता है, और गुरु, माता, पिता, कुलस्त्रीको छोड़ देनेवाला, कुलके देवताको छोडकर अन्य देवताओंकी उपासना करने वाला, सर्वकाल झूठ बोलने वाला, जीवहिंसा करने वाला, कन्या, घोड़ा, गाय बेचने वाला, शूद्रके हाथका अन्न भोजन करने वाला, शूद्रके घरपर भोजन करने वाला, परान्न सेवन करने वाला, संध्याके समय भोजन करने वाला, एकादशीके दिन भोजन करने वाला, शूद्रकी स्त्रीसे व्यभिचार करने वाला, स्वामी और गुरुकी स्त्रीसे व्यभिचार करने वाला, पर्वणि अथवा एकादशीके दिन स्त्रीसंग करने वाला, विधवा स्त्रीसे संग करनेवाला, वेद विहित और पितृकर्मोंको छोड़देने वाला, तीर्थ में जानेपर श्राद्ध कर्म न करने वाला, भोजनके समय अथवा सूर्य्यास्त के समयमें आये हुए अतिथिका सत्कार न करके उसको दुष्ट वचन बोलने वाला मृत्युके दिन श्राद्ध न करने वाला, बनमें आग लगादेनेवाला, गायसे उसका बछवा दूर करने वाला, बैलपर बैठनेवाला ब्राह्मण, कपिला गायका दूध ईश्वरको अभिषेक किये विना पान करने वाला, प्रतिग्रह लेनेवाला, तुलसी पत्रके बिना शालिग्रामकी पूजा करने वाला, पहिली स्त्रीके जीवित होते हुए दूसरा विवाह करके पहिलीको छोड़देने वाला, योग्य ब्राह्मणोंकी पूजा न करके अयोग्य पुरूषोंकी सेवाकरनेवाला, दूसरोंकी वृत्तिको छीन लेनेवाला और वह राजा जो दिया हुआ भूमिदान आपही फिर छीन ले, वह भृत्य जो अपने स्वामीको रणमें छोड़कर भाग जाय, शूद्रको वेद पढाने वाला, शूद्रसे मंत्र पढने वाला, माता पिता गुरुसे द्वेष करने वाला, पुत्रको अपनेसे पृथक् करदेने वाला, पिता, तड़ाग, बावली और ब्राह्मणोंके घरों को तोडने वाला, शिवालयमें पूजा भंग करनेवाला, विश्वास घात करनेवाला, दो स्त्रीका भर्ता, भेदभाव रखनेवाला, संध्याके समयमें शयन करने वाला, गंगा और हरिहर का निंदक, किया हुआ पुण्य अपने मुंहसे प्रगट करने वाला, ग्रीष्म कालमें पानी पिलानेके स्थानपर बाधा उपस्थित करने वाला, नाडी परीक्षा न जानने वाला वैद्य, जारण, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि मंत्रों प्रयोग करनेवाला अथवा उन मंत्रोंको सिद्ध करनेका प्रयत्न करनेवाला, अपना कर्म छोड़

दूसरोंके कर्म करनेवाला, इतने प्रकारके पुरुष चांडाल और वेश्याके उदरमें जन्म लेते हैं।

गुरुकी निन्दा करने वाला, ब्राह्मणोंका द्वेष करने वाला, गर्वसे वेदवाद करनेवाला ब्रह्मराक्षसकी योनि पाता है।

गुरुका भजन करता हुआ भी अन्य देवताओंकी निंदा करनेवाला अपस्मार रोगकी बाधा भोगता है और दरिद्र होता है।

माता, पिता गुरुको छोडकर और अपनी स्त्रीको अपने साथमें लेकर पृथक् रहनेवाला.........के उदरमें जन्म लेकर रोगी होता है।

वेदोंका निंदक, ब्राह्मणोंका अपमान करने वाला, कर्मभ्रष्ट होकर रहने वाला मूत्रकृच्छ्रका रोगी होता है।

दूसरोंके दोषोंको प्रगट करके उनका अपमान करने वाला हृदयके रोगसे कष्ट पाता है।

गर्भ पात करनेवाली स्त्री दूसरे जन्ममें वंध्या होती है, अथवा उसके पुत्र जन्म होनेपर मरजाया करते हैं।

धर्मशास्त्र और पुराणादिकके वचनोंको जो नहीं सुनता है, वह बहिरा होता है।

पतितोंसे झगड़ा करने वाला गधेकी योनि पाता है।

यवनसे औषधि लेनेवाला मृगकी योनि पाता है।

ब्रह्महत्या करनेवाला क्षयके रोगसे पीडित होता है।

सुरापान करने वालेके दांत काले हो जाते हैं।

गुरुकी स्त्रीको पापदृष्टिसे देखने वाला कोढी होता है।

अश्ववध अथवा गोवध करने वाला वंध्या स्त्री होता है।

दूसरोंको अन्न न देनेवालेको अन्नमें अरुचि होती है।

किसीके भृत्यको फुसलाकर ले जाने वाला अन्य जन्ममें करागार में जाता है।

साँपको मारने वाला साँपकी योनि पाता है।

अब चोरी करने वालोंके विषयमें कहते हैं:—

दूसरोंकी स्त्रियोंको चुरा लेजाने वाला दूसरे जन्ममें बुद्धिहीन होकर सदा क्लेश पाता हुआ अंतमें नरकको जाता है।

सुवर्णकी चोरी करने वाला कुरूप और रोगी होता है।

पुस्तकोंका चुराने वाला अन्धा होता है।

वस्त्रका चुराने वाला रोगी होता है।

रोकडकी चोरी करने वाला गंडमालासे पीडित होता है। उसको श्वासका रोग भी होता है उसकी वस्तु अन्य चोर चुरा ले जाते हैं, और वह सर्वकाल कारागृह में रहता है।

दूसरोंका द्रव्य दबालेने वाला, दूसरोंको दिया हुआ छीन लेने वाला दूसरोंसे द्वेष करनेवाला अपुत्री होता है।

अन्नकी चोरी करने वाला गुल्म व्याधिसे पीडित होता है, उसका धान्य चोरी जाताहै, उसके शरीरके रक्तसे दुर्गंधि निकलती है।

पर स्त्रीका द्रव्य (ब्रह्मस्व) हरण करने वाला ब्रह्मराक्षस होता है।

मोती, मणि, रत्नोंकी चोरी करनेवाला हीन जातिमें जन्म पाता है।

पत्र, शाखा और फलोंकी चोरी करने वाला सर्वांगमें खाजकी व्याधिसे क्लेशित होता है। वही गोंचिड़ होता है।

काँसा, लोहा, कपास, लवण, चुराने वाला श्वेत कुष्ट से त्रसित होता है।

देवके द्रव्यका अपहार करने वाला, देवके कार्यका नाश करने वाला, अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करनेवाला पांडुरोगसे कष्ट पाता है।

निक्षेपकी चोरी करने वाला सर्वकाल शोकसे संतप्त रहता है।

धनका चोर ऊंटकी योनि पाताहै।

फलकी चोरी करने वाला बंदरकी योनि पाता है।

जलकी „ „ विघरी „ „ ।

पात्रोंकी „ „ काग „ „ ।

मधु „ „ „ चील „ „ ।

रंग और रसकी चोरी करनेवाला कोढ़ी होता है।

अब व्यभिचारके विषयमें कहते हैं:—

परस्त्रीसे आलिंगन करने वाला सौ जन्म पर्य्यन्त कुत्तेकी योनि पाता है। पीछे साँप होकर क्लेश भोगता है।

पर स्त्रीकी योनिको दृष्टिसे देखने वाला जन्मते ही अंधा होता है

भाईकी स्त्रीसे व्यभिचार करनेवाला प्रथम गधेका जन्म

पाता है। पीछे साँपका। फिर नरकमें जाकर अनेक प्रकारके कष्ट भोगता है।

मित्र और मामाकी स्त्रीसे भोग करनेवाला कुत्तेकी योनि पाता है।

पर स्त्रियोंका मुंह देखनेवाला आंखोंके रोगोंसे कष्ट पाता है।

शूद्र जातिका पुरुष ब्राह्मणकी स्त्रीसे व्यभिचार करे तो दोनों ही विष्ठामें कृमि होते हैं।

ब्राह्मणकी स्त्री जो सर्वकाल शूद्रसे रत होती है, कुत्तीका जन्म पाती है।

इस प्रकारसे स्वामी मातंगसे कह रहे थे, वह त्रिविक्रम भारती भी सुन रहे थे। भारतीने स्वामीसे प्रार्थना की कि "हे स्वामी उपरोक्त पापोंमें से कोई पाप किसी से बन आये तो उसका क्षालन किस प्रकार से हो सकता है, सो कृपा करके कहिये"।

स्वामीने कहा सब पापोंकी निवृत्तिके लिये पश्चात्ताप होना ही उत्तम है, परंतु जिसको पश्चात्ताप नहीं होता है, उसके लिये कर्म विपाक में प्रायश्चित्त लिखे हैं।

प्रथम ब्रह्मदंड देना चाहिये। अर्थात् ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। अलंकार युक्त गायें दी जायँ। यदि इतनी सामर्थ्य न हो तो एक निष्क अथवा आधा निष्क द्रव्य देना चाहिये। सूक्ष्म पापके लिये एक निष्कका चतुर्थ विभाग देना चाहिये। स्थूल या सूक्ष्म जैसा पाप हो उसके अनुसार दान करना चाहिये। अज्ञान स्थितिके पापोंकी निष्कृति पश्चात्तापसे हो जाती है, और गुरुकी सेवा करनेसे वह भी उसका निवारण कर देते हैं। इसका प्रायश्चित भी है। पुण्य तीर्थमें दस बार स्नान करके दो सौ बार प्रणायाम करे और तीन रत्ती सुवर्ण दान करे, सौम्य पाप इसी प्रकारसे दूर हो जाते हैं। "स्त्री और पुरुष" दोनोंमेंसे कोई एक भी क्यों न हो, जो पाप करता है उसका प्रायश्चित्त दोनोंको लेना चाहिये। क्योंकि एकके किये हुए पापका दोनोंको भाग होना पडता है और दोनोंको भोगना पडता है।

दूसरा प्रकार यह है कि दस सहस्र गायत्री मंत्रका जप करे। इस को गायत्रीकृच्छ्र कहते हैं।

तीसरा, एक भुक्त रहना, अयाचित भिक्षा करना, अथवा तीन दिवस उपवास करके गुरुका स्मरण करना। इसको प्रजापत्यकृच्छ्र

कहते हैं। इससे भी साधारण पाप दूर हो जाते हैं।

चौथा अतिकृच्छ्र है। उसका प्रकार यह है-बारह दिनोंमें सत्ताईस ग्रास अन्न भोजन करे। इनमें दो ग्रास अयाचित भिक्षाके होने चाहिये। अथवा एक मास पर्य्यन्त एक अंजुली अन्नका भोजन करे। फिर तीन उपवास करे और घृतसे उपवास तोडे। फिर तीन दिन घृतका फिर तीन दिन दूधका, तीन दिन वायुका, और इक्कीस दिन दूधका आहार करे। जो अशक्त हो वह निल्ली और गुड़, लाई, सत्तूसे ऊपर लिखे अनुसार व्रत करे।

पांचवा पर्णकृच्छ्र है। जामुनके, वेलके, पीपलके पत्ते, और कुशः इनको पानीमें भिगोकर उनकी बूंदें पीकर तीस दिनतक उपवास करे।

छठा चान्द्रायण व्रत है। कुक्कुटके अंडेके समान अन्नका ग्रास बनाकर क्रमसे घटा बढ़ाकर लेना चाहिये। अर्थात् अमावस्यासे पूर्णिमापर्य्यन्त एकसे लेकर पंद्रहलों बढ़ावे। फिर कृष्ण पक्षमें एक एक नित्य घटाता जाय। अमावस्यापर्य्यन्त ग्रास संपूर्ण हो जाय तब दूसरे दिन हविष्यान्न भोजन करे और पश्चात्ताप पूर्वक कृत पापोंका अपने मुंहसे उच्चारण करे।

सातवाँ तीर्थकृच्छ्र है। वाराणसी श्वेतपर्वमें स्नान मात्र करनेसे कृतघ्नादि पाप दूर हो जाते हैं। समुद्र सेतुबंधमें स्नान करके गायत्रीजप करनेसे भ्रूणहत्यादि पाप दूर हो जाते हैं। (यह अगस्त्य मुनिका वाक्य है)

७ अब वेद मंत्रकी महिमा कहते हैं।

विधिपूर्वक और शुद्धताके साथ एक कोटि गायत्रीजप करनेवाला ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है।

एक लक्ष गायत्रीका जप करनेसे सुरापानका दोष दूर हो जाता है।

सुवर्णकी चोरी करनेवालेको सात लक्ष गायत्री जप करना चाहिये।

पवमान सूक्तका चालीस वार पाठ करनेसे ब्रह्महत्या गुरुहत्यादि पाप दूर हो जाते हैं।

इन्द्रमित्रका एक मासपर्य्यन्त पठन करनेसे सुरापानादि पाप दूर होते हैं।

पवमानशन्न और शुनःशेपका एक माससों पठन करनेसे सुवर्णकी चोरीका पाप दूर हो जाता है।

पाच छः मासपर्य्यन्त मिताहार करके पुरुषसूक्तका पठन करने से पञ्च महापातक दूर हो जाते हैं।

त्रिमधु अर्थात् मंत्रसूक्तके सुपर्णादि तीन मंत्रका जप करनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं।

नारायण पन्नका भक्तिपूर्वक जप करनेसे पञ्च महा पाप दूर हो जाते हैं।

त्रिपदा गायत्रीका जप करे, "तद्विष्णो" से तीन बार अघमर्षण करे, तो सात जन्मके पाप दूर हो जाते हैं।

अपामेध्य पन्न और "तद्विष्णो" नामक सूक्तका भक्तियुक्त जप करनेसे सात जन्मके पाप दूर हो जाते हैं।

अज्ञान कृत दोषोंके लिये पश्चात्ताप करके मंत्रोक्त पंच गव्य प्राशन करनेसे अस्थिगत, चर्मगत, पूर्व कृत सब पाप दूर हो जाते हैं।

पंचगव्य प्राशन करनेकी रीति यह है:-गोमय, गोमूत्र, दूध, दही, घृत इन पांच गोद्रव्योंको मिलाकर पंचगव्य बनाया जाता है। नील वर्णकी गायका मूत्र, कृष्णवर्णकीका गोमय, लालरंगकीका दूध, श्वेतरंगकीका दही, और कपिलाका घृत होना चाहिये। पावभर गोमूत्रमें अंगूठाके प्रमाणका गोमय, पौने दो सेर दूध, तीन पाव दही, पावभर घृत होना चाहिये और उसमें पावभर कुशोदक भी होना चाहिये। उपर्युक्त छः द्रव्योंको क्रमसे अभिमंत्रित करनेके लिये मंत्र कहते हैं १ इरावती० २ इदं विष्णु० ३ मानस्तो० ४ प्रजापति० ५ गायत्री ६ प्रणव सहित व्याहृतियां, इस प्रकार अभिमंत्रित करके पान करना चाहिये। इतने प्रकारकी गायें न मिल सकें तो कापिला गायके सब रस लेने चाहिये। क्योंकि कपिला सब गायोंमें उत्तम होती है, उसके दर्शन मात्रसे सब पाप दूर होते हैं।

८ शास्त्रज्ञ और स्वधर्माचरणी सत्पुरुषके अनुग्रहसे भी पतित जन पुनीत हो जाते हैं।

पतितको पतितावस्थामें रहनेका उपदेश ।

श्रीगुरुने पतितसे कहा " अगले जन्ममें तुम विप्र थे, माता, पिता और गुरुके द्वेष करनेसे तुमको चांडालके घरमें जन्म लेना पड़ा । अब तुम एक मास संगममें स्नान करो, सब पाप दूर हो जायँगे और फिर तुम विप्रके घर जन्म पाओगे । "

पतितने स्वामीसे प्रार्थना कियी कि "हे भगवन्! आपके दर्शन और अनुग्रहसे मैं पूर्ण ज्ञानी हो गया, अब आप मुझे संगमपर जानेकी आज्ञा करते हैं, तो क्या पारसका स्पर्श होनेसे जो लोहा सुवर्ण हो जाता है वही फिर भी लोह हो सकता है ? अथवा काक जो मानस-रोवरपर जानेसे राजहंस हो जाता है, फिर भी पूर्ववत् काक हो सकता है ? क्या आप मंत्रके प्रयोगसे मुझे ब्राह्मण नहीं कर सकेंगे ?"

पतितके मार्मिक शब्द सुनकर स्वामी बहुत आनंदित हुए, उन्होंने कहा "वत्स ? तुम सच कहते हो । तुम ज्ञानी हो गये; परंतु तुम्हारी देह वही है जो हीन जातिकी योनिसे उत्पन्न हुई और उसी जातिमें पालन की गयी है । इसलिये ब्राह्मण वर्ण तुम्हारे ब्राह्मणत्वको स्वीकार न करके तुम्हारी निंदा करेगा । "

" पूर्व समय क्षत्रिय वंशमें गाधि राजाके पुत्र " विश्वामित्र " ने अपनी तपस्याके बलसे अपने आपको देवताओंसे ब्रह्मर्षि कहलाना चाहा; तब देवताओंने कहा कि वसिष्ठ मुनि जबलों आपका ब्रह्मर्षि होना स्वीकार न कर लेंगे तबलों हम आपको ब्रह्मर्षि नहीं कह सकते। विश्वामित्रने वसिष्ठसे कहा । उन्होंने उत्तर दियाकि 'आपकी देह क्षत्रियों में से है, क्षत्रियकी देह तपस्याके योग्य नहीं होती । इसलिये आप यह देह छोड़ विप्रके पवित्र कुलमें जन्म लीजिये, तब व्रतबंध करके आपको गायत्रीका उपदेश किया जावेगा, फिर तपस्या करके आप ब्रह्मर्षि कहलानेकी इच्छा करेंगे तो आपका प्रयत्न सफल हो सकेगा।'

विश्वामित्रने बहुत कुछ कहा परंतु वसिष्ठने उनका ब्रह्मर्षि होना स्वीकार नहीं किया । तब विश्वामित्रने क्रोध करके वसिष्ठके सौ पुत्रों-को मार डाला । वसिष्ठ मुनि महाज्ञानी थे । उन्होंने विश्वामित्रके इस दुष्ट कृत्यका न तो कोई विरोध ही किया न क्रोध किया, परंतु इतना होनेपर भी उन्होंने विश्वामित्रका ब्रह्मर्षि होना स्वीकार नहीं किया ।

तब, एक समय विश्वामित्र क्रोध करके एक पर्वत वसिष्ठपर डाल देनेके लिये उठा लाये और चाहते थे कि उनपर डाल दूं; पर, उसी समय उनको स्मरण हो गया कि यदि वसिष्ठको मार डालूँगा तो मुझे ब्रह्मर्षि कौन कहेगा ? क्योंकि इंद्रादिक देवताने तो वसिष्ठपर सौंपा है। इसलिये वसिष्ठको मार डालना अपने कार्यकी सफलताका नष्ट करना है । यह सोच पर्वत पृथ्वीपर डाल दिया और अपने कृत कार्यका पश्चात्ताप करते हुए वसिष्ठ मुनिके सन्मुख खड़े हो गये । वसिष्ठने देखा कि विश्वामित्रको पश्चात्ताप हुआ है, तब उनको ब्रह्मर्षि कहके पुकारा । फिर विश्वामित्रने अनन्य भावसे वसिष्ठ मुनिकी प्रार्थना करके कहा कि आप मेरे घरपर भोजन करना स्वीकार कीजिये ।

वसिष्ठ मुनिने कहा अपनी देह तुम सूर्यके तापसे जला दो । तब विश्वामित्रने वसिष्ठकी आज्ञाके अनुसार अपनी देह सूर्यकी सहस्र किरणोंमें जलाकर भस्म कर डाली और नूतन देह धारण कियी । तब विश्वामित्र तीनों लोकोंमें सर्वमान्य ब्रह्मर्षि हुए ।

इसलिये कहता हूं कि तुम भी यह देह छोड़ ब्राह्मणकी देह धारण करो ।"

स्वामीने यह सब कुछ कहा; परन्तु पतितके अंतःकरणमें कुछ नहीं धसा । जैसे कोई दरिद्र पुरुष द्रव्यकी निधि पा जाय, अथवा रोगी अमृत पा जाय, या क्षुधित गाय तृणका पर्वत पा जाय और वे उस लाभको छोडना नहीं चाहते, तैसे ही पतितको श्रीगुरुके कृपा प्रसादका अखंड भंडार मिल गया, अब वह स्वामीके चरणोंको छोड़कर अपने घर जाना नहीं चाहता था फिर देहके पलटनेकी तो बात ही क्या ?

थोडी देरमें उसकी भार्या और पुत्र भी वहाँ पहुँचे । उनको देख पतितने कहा "मेरे समीप कोई न आओ, न मेरा स्पर्श करो।" उन्होंने कुछ कहा, तब उनपर क्रोध करके उनको मारना चाहा । यह देख पतितकी स्त्रीने दुःख करके स्वामीसे प्रार्थना कियी कि "भगवान् ! यह मेरा स्वामी मुझे छोड़जाना चाहताहै, मैं अनाथ रहकर पुत्रोंका पालन किस प्रकार कर सकूंगी ? आप कृपा करके उसको उपदेश कर दीजिये, नहीं तो मैं अपनी देह छोड दूंगी ।"

स्वामीने पतितसे कहा "तुमको अपने घर जाना उचित है । पुत्र कलत्रादिका क्षोभ तुम्हारी सद्गतिका बाधक होगा । संसारमें जन्म

पाकर जो मनुष्य इंद्रियोंका संतोष नहीं होने देता है, वह उत्तम गति नहीं पा सकता है। पहिले ही संसारके फंदमें न पड़ना अच्छा है। परंतु स्त्री पुत्रादिका समागम होनेपर उनको छोड़ना अपने लिये दुर्गतिका कारण उपस्थित करना है।"

पतितने कहा:-"महाराज जबलों मुझे पूर्व जन्मका ज्ञान नहीं था तबलों तो मैं कुछ जानता ही नहीं था; अब समझ बूझके किस प्रकार हीन जाति बन सकूंगा ?" तब स्वामीने उसके मस्तक परसे विभूति भस्म) धुलवादी। भस्म धोते ही मातंग पूर्ववत् अज्ञानी हो गया। यह लीला देख सब लोग विस्मित हुए। त्रिविक्रम भारतीने ताड लिया कि भस्म लगानेसे पतित ज्ञानी हो गया था और उसको धो डालनेसे वह ज्ञानहीन हो गया। अर्थात् भस्म हीके सामर्थ्यका यह प्रभाव है। इसलिये भारतीने भस्मकी महिमा स्वामीसे पूछी; सो आगेके अध्यायमें कहते हैं।"

अध्याय २९

भस्मकी महिमा और ब्रह्मराक्षसका उद्धार।

स्वामीने कहा "पूर्वकालमें वामदेव नामक एक योगी बड़े ही शुद्ध-बुद्धि, कामक्रोधादिरहित, ब्रह्मज्ञानी, गृहदारादि त्याग पृथ्वीपर भ्रमण करते हुए एक समय क्रौंच नामक अरण्यमें जा पहुँचे। वहां एक भयानक ब्रह्मराक्षस रहता था, वह क्षुधातुर था और भक्षण कर जानेकी इच्छासे योगिराजकी देहसे अचानक लिपट गया।

योगीश्वरकी देहके भस्मका स्पर्श ब्रह्मराक्षसको होते ही उसकी क्षुधा, तृषा, आलस्यादि दूर हो गये और उसको ज्ञान हुआ। उसने योगीके चरणोंपर गिरकर प्रार्थना कियी कि 'हे भगवन् ! मेरा उद्धार कीजिये, मैं पापी हूं, बहुत कष्ट पा रहा हूं।' वामदेवने उससे उसका पूर्व वृत्तांत पूछा। उसने हाथ जोडकर इस प्रकारसे कहना आरंभ किया:—

'मैं अपने पचीस जन्म पहिले यवनदेशका राजा था, दुर्जय मेरा नाम था; मैंने बड़े बड़े दुष्ट कर्म किये; बहुतेरे मनुष्योंको मार डाला

प्रजाको बहुत दुःख दिया । राज्यके मदसे उन्मत्त होकर अनेक स्त्रियोंसे विवाह किया। विवाहिता स्त्रियोंके अतिरिक्त इतनी परस्त्रियोंसे प्रसंग किया कि जिनकी गिन्ती मैं नहीं कर सकता । एक दिन जिससे मैं भोग करता, दूसरे दिन या फिर कभी उसको दृष्टिसे नहीं देखता था; सबको अंतर्गृहमें रख छोडा था। वे सब मुझे शाप देती रहीं। सब राजाओंको जीतकर उनकी स्त्रियोंसे एक एक बेर रति करके उनको भी ऊपरके अनुसार रख दिया, मैंने ऐसे सेवकोंको नियुक्त रखा था, जो दूसरोंकी स्त्रियोंको बलात्कारसे ले आते थे, जो स्वसंतोष से नहीं आती थीं, उसको द्रव्यका लोभ देकर बुलवाता था। मेरे देशमें जितने ब्राह्मण थे वे सब देश छोड़ छोड़ कर अन्य देशोंको चले गये । उनकी पतिव्रता स्त्रियाँ और अन्य सुवासिनियां या रजस्वला या कन्याएं जैसी जहां पाता उन सबसे एकसा व्यवहार करता था। उनकी गिनती जहाँलों हो सकी, इस प्रकार है:—

ब्राह्मणकी स्त्रियां ३००	क्षत्रियोंकी ४००	वैश्यकी ६००
शूद्रों " " १००	चांडालकी १००	पुरंध्रियां १००
नाऊ " " ५००	धोबिन ४००	वनिता असंख्यात

इतनी स्त्रियोंसे भोग करके भी मेरा मन तृप्त नहीं हुआ था, नित्य मद्यपान करके उन्मत्त हो जाया करता था । अंतमें राजयक्ष्मादिक रोगोंसे पीड़ित और सामर्थ्यहीन हो गया, तब दूसरे राजाओंने चढ़ाई करके मुझसे राज्य छीन लिया और मेरी मृत्यु भी शीघ्र ही हो गयी। मैं यमराजकी आज्ञासे घोर नरकमें डाल दिया गया। देवताके एक सहस्र बरसलों अपने सब पितरों सहित नरकमें कष्ट पाता रहा। एक एक घोर नरकमें दस दस बार रहा। फिर मैं प्रेत योनिमें डाला गया। उस समय मुझे एक सहस्र शिश्न थे और मेरा बहुत बुरा रूप हो गया था। क्षुधा तृषाकी दुर्धर बाधाएँ सहन करता हुआ देवताओंके सौ वर्ष पर्य्यन्त कष्ट पाकर फिर मरा। इसके पीछे क्रमसे इस प्रकार योनियोंमें डाला गया ।

२ व्याघ्र
३ अजदहा
४ बिघरा
५ ग्राम सूकर

१४ कौआ
१५ ग्रामशूकर
१६ वन कुक्कुर
१७ गधा (अंधा)

६ गिरदान	१८ बिलार
७ श्वान	१९ मेंडक
८ सियार	२० कछुआ
९ रोहिहरिण	२१ मछली
१० ऊंट	२२ उलूक (बहरा)
११ मर्कट (बंदर)	२३ चोर चूहा
१२ सांवर	२४ हाथी
१३ नकुल	२५ ब्रह्म राक्षस

यह अंतिम पचीसवां जन्म है । अरण्यमें आहार बिना भूखों मरा-जाता हूं, आपके अंगका स्पर्श होनेसे मुझे अपनी जातिका स्मरण हुआ और एक सहस्र जन्मका वृत्तांत मुझे स्मरण आ गया, इससे मुझे विश्वास हो गया कि आप पृथ्वीपर विचरने वाले अन्य पुरुषोंकी भांति साधारण पुरुष नहीं हैं, आप कोई अवतारी पुरुष हैं । सो हे स्वामी ! अब इस कष्ट और जन्म मरणसे मेरा पीछा छुड़ा दीजिये ।'

वामदेवने कहा मेरे अंगस्पर्शसे ज्ञान होनेका जो अनुभव तुमको हुआ है वह मेरे अंगके भस्मका है ।

फिर ब्रह्मराक्षसके पूछनेपर वामदेवने भस्मकी महिमाका एक इतिहास कहा वह इस प्रकार है—

पापीको शिवलोकप्राप्ति ।

द्रविड देशमें बड़ा ही मूर्ख और आचारहीन एक ब्राह्मण रहता था जो सर्वकाल शूद्रीसे रमण किया करता था । कर्मभ्रष्ट होनेके कारणसे वह ब्राह्मण जातिभाइयों और उसके मातापितादिकोंसे बहिष्कृत किया गया । वह दुष्ट उन्मत्त शूद्रीसे रमण करता हुआ अनेक अन्य स्त्रियोंसे भी व्यभिचार किया करता था और चोरी करके अपना निर्वाह करता था । एक दिन व्यभिचारकी इच्छासे ग्राममें घूमते हुए एक स्थानमें चोरी करना चाहता था, तहां एक शूद्रने उसे पकड़ लिया । पीछे बाँधके मार डाला और गांवसे बाहर एक भयंकर स्थानमें डाल दिया । इसी अवसरमें एक श्वान क्षुधासे पीडित होता हुआ आहारकी खोजमें घूमता प्रेतके समीप जा पहुंचा और प्रेतपर चढ़कर क्षुधा निवारण करनेके अर्थ उसका मांस नोचा

चाहता था। अचानक वहांपर शिवजीके दूत प्रगट हुए । एक ओर यमराजके दूत भी उपस्थित थे। यमराजके दूत कहते थे कि यह दुष्ट पापी है। यह यमराजकी सेवामें उपस्थित किया जावेगा। शिवजीके दूत कहते थे इसके सब पाप दूर हो चुके हैं। अब यह शिवपुरीको जायगा। यमराजका अब इसपर कुछ अधिकार नहीं रहा। दोनों ओर के दूतोंने आपसमें झगड़ा किया अंतमें यमराजके दूत पराजित हो यमराजके पास लौट गये और अपना सब वृत्तांत कह सुना गये। यमराजने शिवजीके दूतोंके पास पहुँचकर उनसे कारण पूछा। उन्होंने कहा कि शिवजीकी हमको आज्ञा है कि जिस मनुष्यके शरीर पर भस्म देखो उसको शिवपुरीमें लाया करो और वह यमपुरीको न जाने पावे। इस प्रेतके शरीरमें भस्म लगा हुआ है विना कारण आपके दूतोंने हमसे बखेड़ा किया। हमने उनको पीटा होता। परंतु आपके सङ्कोचसे छोड़ दिया। अब आप अपने दूतोंको आज्ञा दीजिये कि ऐसे प्राणियोंको वे यमपुरीमें ले जानेका प्रयत्न न किया करें। यमराज अपने लोकको लौट गये और शिवदूतोंके कहे अनुसार अपने दूतोंको आज्ञा देके यह भी कहा कि जिनके मस्तकपर त्रिपुंड्र तिलक हो अथवा जिनके गलेमें रुद्राक्षकी माला हो उनको भी यमपुरीमें न लाया करो।

वामदेवने ब्रह्मराक्षससे कहा कि वह श्वान प्रेतपर आरूढ होनेसे प्रथम किसी स्थानमें भस्मकी ढेरपर बैठा हुआ था। इस कारणसे उसके अंगमें भस्म लिपटा हुआ था। उसके अणु प्रेतपर गिरे थे। उसी भस्मके प्रभावसे वह पापी शिवलोकको गया। भस्मकी ऐसी महिमा है, इसीलिये इसका शिवजीने अंगीकार किया है । जिस भस्म को साक्षात् शिवजीने स्वयं अंगीकार किया उसकी महिमा वर्णन करनेकी किसकी सामर्थ्य है?

ब्रह्मराक्षसने अनेक प्रकारसे वामदेवका स्तवन करके उनसे प्रार्थना किया कि 'हे महात्मन्! मुझपर दया करके मेरा उद्धार कीजिये मैंने पाप तो बहुत किये हैं जिनका वर्णन मैं पहिले कर चुका हूं। अब मुझे स्मरण हुआ है कि मुझसे थोड़ा पुण्य भी बन पड़ा है। वह यह कि एक ताल मैंने बनवाया था और ब्राह्मणोंको कुछ खेत भी दिये थे। जब मैं यमराजके सन्मुख उपस्थित किया गया था, चित्रगुप्तने मेरे

दुष्कृतोंके साथ ही इतने सुकृतका भी उल्लेख किया था और यमराजने कहा था कि पच्चीस जन्मके पीछे तुम इस सुकृतका फल पाओगे। मैं जानता हूं कि उसी सुकृतके फलसे आज मुझे आपका दर्शन लाभ हुआ है; इसलिये अब मेरा उद्धार शीघ्र कर दीजिये और भस्म लगाने का विधान भी कृपा करके कहिये।'

वामदेवने कहा 'पूर्वकालमें एक समय सनत्कुमार ऋषिने महादेवसे प्रार्थना कियी कि हे भगवन् भवसागरके पार उतरनेके लिये और सब पापोंसे मुक्त होनेके लिये आपने हमसे सब प्रकारके धर्म कहे। अब हमारी इच्छा है कि जिसमें थोड़े कष्टसे धर्मार्थ, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ मनुष्य पा सकें, ऐसा कोई सुलभ मार्ग बतलाइये।

ईश्वरने कहा त्रिपुंड्र भस्म लगानेका एक अत्यंत पुनीत और वेद शास्त्रसंमत मार्ग है। गोमयको जलाकर उसका अथवा पूर्वकालमें जहां यज्ञ हुए हों, वहांसे भस्म लेकर संग्रह करना चाहिये। यज्ञका भस्म अधिक पुण्यदायक होता है। "सद्योजाता०" इस मंत्रसे भस्म हथेलीमें लेकर "अग्निरिति०" इस मंत्रसे अभिमंत्रित करना चाहिये। फिर "मानस्तोके०" इस मंत्रसे अंगूठेके द्वारा मर्दन करके "त्र्यंबकं०"से मस्तकपर लगावे, "त्र्यायुषं०"से ललाट और भुजाओंपर लगावें। प्रत्येक स्थानपर तीन तीन रेखायें लगावे। इस प्रकारसे भस्म धारण करना चारों आश्रमके पुरुषोंको चारों पुरुषार्थ देनेवाला होता है। जो जो इच्छा मनुष्य करता है सब पूर्ण होतीं हैं। गोहत्यादि महापाप दूर हो जाते हैं। मंत्रयुक्त भस्म धारण करनेवालोंकी तो अपार महिमा है, परंतु जो मनुष्य मंत्रविधि नहीं जानके भी भक्तियुक्त होकर विना ही मंत्रके धारण करता है, उसके भी बड़े बड़े पाप दूर हो जाते हैं। सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे, सब मंत्रोंका जप करनेसे जो फल मिलता है, वही केवल भस्म धारण करनेसे मिलता है। भस्म धारण करने वालेकी सब व्याधियां दूर हो जाती हैं। वेद, शास्त्र और पुराणोंमें इसकी महिमा वर्णित है।

इस प्रकारसे भस्मकी महिमा कहकर वामदेवने अपने पाससे भस्म लेकर अभिमंत्रित करके ब्रह्मराक्षसके मस्तकपर लगा दिया। ब्रह्मराक्षस तत्काल दिव्य देही हो गया; उसके लिये देवताओंने विमान भेजा, जिसमें बैठकर वह वामदेवऋषिको प्रणाम करके आनंदसे

स्वर्गको चला गया ।

श्रीगुरुके मुखसे इसप्रकार भस्मकी महिमा सुन भारती गुरुको प्रणाम करके उनसे आज्ञा ले अपने स्थानको चले गये । ”

अध्याय ३०

विष्णुशर्माने सिद्ध मुनिसे प्रार्थना किया कि “ हे स्वामी ! श्रीगुरु की लीला सुनकर मन अधिकाधिक उनके चारित्रोंके सुननेके लिये उत्सुक होता है, सो आगे श्रीगुरुने कौन कौनसे लोकोपकारके कार्य किये वे भी कृपा करके कहिये । ”

सिद्ध मुनिने कहा “तुम्हारे अंतःकरणमें श्रीगुरुकी भक्ति अधिकाधिक दृढ़ होती हुई देख मुझे बहुत आनंद होता है, निःसंशय तुम धन्य हो, तुम्हारे योगसे मुझे भी श्रीगुरुके चारित्र प्रकाशित करनेका लाभ मिलता है, इसलिये मैं भी हर्ष पूर्वक संक्षेपसे कहता हूं। सुनोः—

मृतभर्तृका स्त्रीको ज्ञानोपदेश ।

उत्तर देशमें माहुर नामका एक नगर है, जहाँ गोपी नामका एक धनवान् ब्राह्मण रहता था, उसके पुत्र जन्मते ही मर जाया करते थे; इसलिये उसने श्रीगुरु दत्तात्रेयकी उपासना किया । उसके प्रभाव से उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम “ दत्त ” रखा गया । पाँच बरसका पुत्र हुआ, तब उसका व्रतबंध किया गया; बारह वर्षका होनेपर एक सुन्दर कन्यासे उसका विवाह किया गया । सोलह वर्ष की अवस्था पर्यन्त दत्त अपनी सुंदर भार्या सहित आनंदसे रहा; दोनों पतिपत्नीमें परस्पर असीम प्रेम था । एक दूसरेका वियोग क्षणभर भी नहीं सह सकते थे । पुत्रवधूके प्रेम और सुखसे उनके माता पिता भी सुखी और आनंदित रहे । सहसा दत्त व्याधिसे पीडित हो गया । अनेक औषधियां की गई परंतु कुछ लाभ नहीं हुआ । रोग दिन दिन बढता ही गया । इसी अवस्थामें तीन वर्ष बीत गये, दत्तके शरीरसे दुर्गंधि उठती थी, जिसके कारण वैद्य उसके पास नहीं जाता था परंतु उसकी पतिव्रता स्त्री नित्य अपने पतिके चरणोदक लेकर उसीके सन्निध बैठ काल बिताती थी, अरुचिके कारण उसका पति भोजन नहीं

करता था, इसलिये वह भी उपवास करती थी। जिस किसी दिन उसका पति भोजन करता था, उसदिन वह भी करती थी। परंतु उतने ही ग्रास जितने पति खाता था। तीन वर्षकी पीडा और उपवासादिकसे पति अत्यंत दुर्बल हो गया था और उतनी ही स्त्री भी। जो जो औषधि पति लेता था, वही स्त्रीं भी लेती थी। माता, पिता, दयाद, गोत्री सब कोई स्त्रीको समुझाते थे परन्तु उस साध्वीने किसीका कहा न माना। वह कभी उत्तमोत्तम वस्त्रलंकार भी नहीं पहनती थी।

दोनोंके मातापिता धनी थे, उन्होंने अनेक प्रकारके जप, तप, अनुष्ठानादिक किये। ज्योतिषी ग्रहदशा, वैद्य वातपित्त और मांत्रिक भूत प्रेत पिशाचादिके दोष बताते थे। उनकी निवृत्तिके अर्थ जिसने जो बताया, वह सब करनेमें अपार द्रव्य व्यय किया गया; परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। तब माता पिता दुःख करने लगे। अनेक पुत्रोंके मर जानेपर श्रीगुरुका दिया हुआ रूपगुणसंपन्न अकेला एक पुत्र, उसीके योग्य सद्गुणी पतिव्रता रूपलावण्ययुक्त स्त्रीके विद्यमान होते हुए मृत्युशय्यापर यमराजकी मार्गप्रतीक्षा करता हुआ देख, किन माता पिताको निराशाजनित दुःख मूर्छित न कर सकें। पुत्रने उनको सावधान करके दुःखितांतःकरणसे समझाया कि परमेश्वरकी इच्छासे सब कार्य होते हैं। उनमें मनुष्यका कुछ वश नहीं चलता है। माता पिताका एक घडी दूध पिलानेका जितना ऋण पुत्रपर होता है, उससे वह जन्मभर उत्तीर्ण नहीं हो सकता है, परन्तु मैंने आपके उदरमें जन्म धारण करके आपको कष्ट मात्र दिये हैं। आपकी सेवा करके आपको सुखी करनेका तो मुझे अवसर ही नहीं मिला। मेरे पूर्व संचित कर्म ही ऐसे हैं। अब आप दुःख न कीजिये और परमार्थपर दृष्टि दीजिये।

दत्तने अपनी भार्याको भी समझाया कि " प्राणेश्वरी ! अब मेरी तो अवधि पूर्ण हो चली। तुमने मेरे लिये बहुत कष्ट उठाये; परन्तु वे सब निष्फल हुए। मैं तुम्हारा पूर्वजन्मका शत्रु था। इस कारणसे तुमको इतने कष्ट मेरे कारण हुए। अब यदि तुम मेरे घरपर रहना चाहोगी तो माता पिता पुत्रकी तरह तुम्हारा पालन करेंगे। यदि इसमें तुमको कुछ कष्ट दिखाई पड़े तो तुम अपने पिताके घर चली जाना। तुम्हारी सुंदरताका सुखोपभोग मैं दैवहीन नहीं कर सका। हरीच्छा!" इस समयके ये प्रेमवचन स्त्रीको कितने दुःखदायक हुए होंगे,

इसका वर्णन करना असम्भव है। इतना सुनते ही स्त्री मूर्छित हो गयी, कुछ समय पीछे सचेत हुई; तब पतिके चरणोंपर मस्तक रख दुःखके आँसुओंसे चरणोंको धोती हुई, इस प्रकार कहने लगीः-स्वामी ! मेरा अनादर न कीजिये, आप ऐसे अद्वितीय प्रेमपात्र प्राणेश्वर मैं कहां पा सकूंगी ? मैं आपके चरणोंको छोडकर दूर रहना कदापि स्वीकार नहीं करूंगी। जहां आपकी देह रहेगी, तहां मेरी भी। इसमें सन्देह न कीजिये।

स्त्री पुरुषकी ये बातें सुन दत्तके मातापिताको दुःख अनिवार्य हो गया। वे पृथ्वीपर गिरकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे। तब पतोहूने उठाकर उन्हें समझाया कि आप कुछ चिंता न कीजिये, मेरे स्वामीका अंत नहीं होगा, परमेश्वर उनको निःसन्देह मृत्युसे बचावेगा; अब आप शोकको दूर करके हम दोनोंको स्वामी नृसिंह सरस्वतीके स्थानपर भेज दीजिये। स्वामीजीकी बहुत महिमा सुनी-जाती है। उनकी कृपासे अवश्य ही देह आरोग्य हो जायगा।

स्नुषाकी बात दोनोंने स्वीकार किया, उन्होंने आशीर्वाद दिया कि परमेश्वर तुम्हारे भाग्यसे हमारे पुत्रकी व्याधि दूर करे।

दोनों स्त्रीपुरुष गाणगापुर भेजे गये, मार्गके श्रमसे व्याधि अधिक बढ़ गई और स्वामी नृसिंह सरस्वतीके दर्शन होनेसे पहिले ही दत्तका प्राणान्त हो गया, अब उसकी स्त्रीके दुःखका क्या ठिकाना था ? उसने पेटमें छुरी मारली होती; यदि दूसरोंने न छुडा ली होती। पत्थरसे छाती पीट डाली। वह अनेक प्रकारसे दुःख और खेद करती थी, जिनके सुननेसे सब साथियोंके हृदय विदीर्ण हो जाते थे, मानों वहां प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया था।

इसी अवसरमें वहाँ एक जटा, भस्म, रुद्राक्ष, त्रिशूल धारण किये हुए सिद्ध पुरुष आये, उन्होंने उसको समझाया कि तुम क्यों इतना रुदन कर रही हो ? ऐसा करनेसे क्या फल होगा ? जैसा तुम्हारा पूर्व जन्मका कर्म था उसीके अनुसार फल पाया। अब व्यर्थ शोक करनेसे क्या लाभ ? गये हुए प्राण भी फिर लौट सकते हैं ? शोक न करो तुम जान सकती हो कि जगत्में जितने प्राणी हैं, सब मरणशील हैं इस कराल कालके जबडेसे कौन बच सकता है ? गंगामें जब पूर आता है, अनेक प्रकारके काष्ठ इसमें बहतेहुए एक स्थान पर इकट्ठे हो

जाते हैं और आनकी आनमें तितर बितर भी हो जाते हैं; ऐसी ही दशा इस संसारकी है। तुम ही बताओ कि कहाँ तो तुम्हारा जन्म हुआ और कहाँ इसका। जन्मके समयमें तुम्हारा इससे कुछ भी संबंध था? उसीको अब तुम अपना प्राणेश्वर कहकर पुकार रही हो। हे पतिव्रते! यह देह पानीके बुलबुलेके समान है। यह कभी स्थिर नहीं रह सकती पृथ्वी, आप्, तेज, वायु, और आकाश, इन पाँच तत्त्वोंसे यह बनी है और पूर्व कर्मके अनुसार इसमें सत्व, रज और तम ऐसे तीन गुण उत्पन्न होते हैं। उन गुणोंके अनुसार प्राणी कर्म करता है। और कर्मोंके अनुसार फलप्राप्ति होती है। कर्म और गुण मायामय होते हैं। इसीसे माया त्रिगुणात्मिका कहलाती है। सुख दुःख सब गुणोंके अनुसार प्राप्त होते हैं। मृत्युसे कोई नहीं बच सकता है। कोटि कल्पकी जिसकी आयु होती है, उसको भी कालके गालमें जाना पड़ता है। फिर मनुष्यकी कौन कहे? काल, कर्म और गुणके आधीन होनेके कारण देहके उत्पन्न होनेके समय सुख होता है; परंतु मरनेका दुःख करना उचित नहीं है। गर्भमें प्राणीके प्रवेश होते ही उसके साथ नाश भी प्रवेश करता है। किसी-की मृत्यु पूर्ववयमें और किसीकी वृद्धावस्थामें होती है। संसार स्वप्न अथवा इंद्रजालके समान है। तुम्हारे कोट्यावधि जन्म हो चुके हैं। उनमें तुम बता सकती हो कि किस किसकी पत्नी रही हो? यह देह त्वचा, शिरा, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, अस्थि, विष्ठा, मूत्र, श्लेष्म, आदिका पिंड है, ऐसी निंदा योग्य वस्तुको तुम पति कहके रो रही हो-यह कैसी आश्चर्यकी बात है? चाहिये तो यह कि इस असार संसार सागरके पार होनेका उपाय ढूंढ़ो; जिसका मिलना बहुत दुःसाध्य है। सो न करके भ्रमकी मारी तुम जिस बातका दुःख करना किसी प्रकार उचित नहीं है, उसका दुःख कर रही हो।

सिद्धका उपदेश सुनकर स्त्रीको कुछ बोध हुआ। उसने अपना रोना बंद किया और शोक त्याग दिया। पश्चात् सिद्ध मुनिके चरणोंपर मस्तक रखके वह प्रार्थना करने लगी कि हे स्वामी! वास्तवमें मैं माया मोहके वश होकर वृथा शोक कर रही थी! आपके उपदेशसे मुझे ज्ञान हुआ; अब आप ही मेरे माता पितादि सब कुछ हैं; आप ही कृपा करके मुझे संसार यातनासे छुड़ाइये। जो मार्ग आप बतावेंगे उसीको मैं स्वीकार करूँगी।

अध्याय ३१

पतिव्रताधर्म।

पतिव्रताके पूछनेपर सिद्ध पुरुषने स्त्रियोंके धर्मका वर्णन करना आरंभ किया। उन्होंने कहा मैं तुमसे दोनों प्रकारके धर्म कहता हूं—प्रथम पतिके विद्यमान होतेहुए स्त्रीको अपना धर्म किस प्रकारसे निवाहना चाहिये; फिर मैं यह भी कहूंगा कि पतिके मृत होनेपर स्त्रीको क्या करना चाहिये।

पतिके विद्यमानमें स्त्रीको पतिव्रता धर्मका पालन करना चाहिये—

काशीखंडमें पतिव्रताका माहात्म्य वर्णन करते समय बृहस्पतिने पतिव्रता लोपामुद्राकी प्रशंसा करके, पतिव्रताके लक्षण कहे। वे ही मैं तुमसे कहता हूं। पुरुषके भोजन करनेके पश्चात् बचा हुआ अन्न पतिका प्रसाद मानकर भोजन करे; जब पुरुषको देखे, बैठी न रहे, खड़ी हो जाय; पतिकी आज्ञा पाये बिना कहीं न जाय; अपनी इच्छासे कभी कोई दान धर्म न करे; मनमें पतिको परमेश्वर समझे; शयनके समय भक्ति भावसे पतिकी सेवा करे; पतिको निद्रा लगनेके पीछे आप निद्रा करे; कंचुकी और छोटे बच्चेको दूर छोड़कर पति स्पर्श करे; पतिको कंचुकीका स्पर्श होनेसे पतिकी आयुकी हानि होती है; पतिके नामका उच्चार करनेसे भी पतिकी आयुकी हानि होती है; पतिके जागृत होनेके पहिले स्त्रीको जागृत होकर उठना चाहिये। फिर उठते ही घरको झाड़ बुहारकर कूढ़ा आदि निकालना चाहिये। फिर स्नान करके पतिकी पूजा करे और उसके चरणोंका उदक ग्रहण करे, उसके चरणोंपर अपना मस्तक रखे, जबलों पुरुष घरमें रहे आनंदपूर्वक सब प्रकारके शृंगार करे। जब पुरुष ग्रामांतरको जाय स्त्री शृंगार न करे। पति किसी समय क्रोधसे कठोर वाक्य कहे, उनपर स्त्रीको कदापि क्रोध न करना चाहिये, किंतु क्षमाकी प्रार्थना करके चरणोंपर मस्तक रखना चाहिये। जब पति बाहरसे घरमें आवे सब काम छोड़कर उसके सन्मुख जाय और मधुर वचनोंसे उसके चित्तको आनंदित करे, पतिकी इच्छाके अनुसार व्यवहार करे, जब स्त्री को घरसे बाहर जानेकी आवश्यकता हो, पतिसे आज्ञा लेकर जाय,

मार्गमें अन्य पुरुषोंकी ओर न देखे। आवश्यक कार्य समाप्त होनेपर शीघ्र ही घरपर लौट आवे, जो स्त्री अन्य पुरुषकी आकृतिको दृष्टिमात्र से देखती है, वह उलूककी योनि पाती है। देवपूजाके पात्रोंको मलकर उज्ज्वल रखना, गंध अक्षतादि पूजा साहित्य जुदा रखना, ये नित्य करनेके कार्य हैं। जब पुरुष घरपर न हो अतिथि अथवा गायकी पूजा करके उनको भोजन करावे, और उनका प्रसाद रूप आप भोजन करे। गृहको सर्वकाल निर्मल रखे। पतिकी आज्ञाके विरुद्ध कोई धर्मकार्य न करे। गाँवमें किसी प्रकारका उत्सव हो उसमें न जाय। तीर्थयात्रा अथवा विवाहकार्यमें भी न जाय। जब पति घरमें हो स्त्री कभी दुश्चित्त न रहे और जब पति दुश्चित हो पत्नी कभी निश्चित न रहे। जब स्त्री रजस्वला हो, मौन रहना चाहिये, वेद घोष न सुने, पतिको अपना मुंह न दिखावे, चौथे दिन, जब शुद्ध हो पतिके मुंहका दर्शन करे, पुरुष घरपर न हो तो उसका ध्यान करे और सूर्यनारायणके दर्शन करके घरमें जाय। पुरुषकी आयुकी वृद्धि होनेके लिये मस्तकपर सर्वकाल कुंकुम लगाये रहे, सिंदूर, कज्जल, कंठसूत्र भी सर्वकाल धारण किये रहे, केशोंमें नित्य कंघी किया करे, चोटी सदैव बांध रखे, पतिके घरमें विद्यमान होते हुए तांबूल खाय, करमें कंगन, पैरमें तोड़े (कड़े) पहिने रहे, पड़ोसिन, धोबिन, कुटनी, जैनकी स्त्री और पतिकी निंदा करनेवाली स्त्रियोंसे कभी मित्रता न करे, क्योंकि इनके संसर्गसे पातिव्रत्यका भंग हो जाता है, सास, ससुर, ननद, देवर, बहिन, भाई इनसे विभक्त होकर रहनेसे कुत्तेका जन्म होता है; नग्न होकर स्नान न करे; ऊखल मूसल, चक्की और डेहलीपर न बैठे; पतिके साथ विवाद न करे; उसके अंतःकरणमें कभी उद्वेग न होने दे; पुरुष चाहे अभागा हो, नपुंसक हो, व्याधित हो या अविचारी हो, परंतु पतिव्रता स्त्री उसको परमेश्वर ही माने; उसकी आज्ञाके अनुसार चलनेसे परमेश्वर उस स्त्रीपर प्रेम करते हैं; जिस कपड़े या वस्तुको पति स्वीकार करे उसीको स्त्री भी स्वीकार करे; जब पति किसी चिंतामें हो स्त्रीको शृंगार न करना चाहिये; वस्त्रादिक कोई वस्तु चाहिये तो स्त्री स्वयं पतिसे न कहे, कन्या पुत्रादि जो घरमें हो उनके द्वारा कहे, पतिकी इच्छासे जो कुछ मिले उसीसे संतुष्ट रहे। अपनी महत्त्वाकांक्षाके वश होकर पतिकी निंदा न करे; दूसरोंको तीर्थयात्राके लिये जाते

हुए, देख आप उनका कौतुक न करे; क्योंकि स्त्रीके लिये उसके पति-के चरणोंका उदक ही सब तीर्थोंका एक तीर्थ है; यदि कोई व्रत करनेकी इच्छा हो तो पतिकी आज्ञासे करे; अपनी इच्छासे करे तो पति-की आयु कम होती है और स्त्री अपने पतिको साथमें लेकर नरकमें जाती है; जो स्त्री पतिको क्रोधयुक्त उत्तर देती है, वह श्वानकी योनि पाती है; वही अन्य जन्ममें सियार बनके गांवके समीप कुईकुई करती है; वनभोजनको न जाय; पड़ोसिनके घर न जाय; अपने नात, हितके घर हर्षसे वारवार न जाय; पति कितना ही अशक्त क्यों न हो, दूसरा शक्तिमान् पुरुष देख उससे प्रीति न करे; पति कैसा ही हो, प्रसंगपर उसकी स्तुति ही करनी चाहिये; सास ससुरके सम्मुख उच्च स्वरसे न बोले; हंसे नहीं; सास ससुरको छोड़कर जो अलग हो रहती है, वह भालूकी योनि पाकर वन वन मारी मारी फिरती है; पुरुष क्रोधसे स्त्रीको मारे, उस समय यदि स्त्री कहे कि "पति मर जाय" तो स्त्री घोर अरण्यमें व्याधकी योनि पाती है; जो स्त्री परपुरुषको अपने नेत्रों से देखती है, वह उत्पन्न होते ही वक्रदृष्टिवाली होती है; पुरुषके भोजन करनेसे पहिले भोजन करलेनेवाली स्त्री अन्य जन्ममें शूकरकी योनि पाकर घूड़ोंपर विष्ठा खाती है, उस जन्मके पीछे वनवागुल (चमगा-दर) की योनि पाकर अपनी ही विष्ठा खाती हुई, दिवांध हो, वृक्षोंपर उलटी लटकती है, पतिके कोपके समय कठोर उत्तर देनेवाली स्त्री गूंगी होती है और सात जन्म तक दरिद्र रहती है; पतिके दूसरा विवाह करनेपर सौतके साथ जो शत्रुता करती है, सात जन्मपर्य्यन्त दुर्भाग्यका अनुभव करती है; परपुरुषसे प्रीति करनेवाली पतितके घरपर जन्म पाकर सदैव दारिद्र्यका उपभोग करती है; जब पुरुष बाहरसे घरमें आवे स्त्री सम्मुख जाकर उदकसे उसके पैर धोवे; श्रम दूर करनेके अर्थ पंखा करे; पादसेवा करे; मधुर बोले; जिसका पति संतुष्ट होता है, उससे ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तीनों देवता प्रसन्न होते हैं; न तो माता पिता, न इष्ट वर्गादि इस लोकका और परलोकका सुख दे सकते हैं; इसीलिये पतिव्रता स्त्री गुरु, देव, तीर्थ सब कुछ पति हीको माने; जैसे मनुष्यकी देहमें जबलों जीव रहता है, तबलों देह शुद्ध मानी जाती है, तैसे ही जबलों पति विद्यमान है, तबलों स्त्री शुद्ध रहती है; पतिके मरनेसे स्त्री विधवा और अशुद्ध हो जाती है। इसलिये स्त्री

पति हीको अपना धर्म और प्राण समझे। विधवा स्त्रीको सब लोग असंगला कहते हैं, प्रेत वत् मानते हैं; यदि वह निःसंतान होती है; तो अधिक निंदित मानी जाती है; ग्रामांतरको जाते समय यदि विधवा सम्मुख मिले तो यात्रीकी मृत्यु होती है; वही यदि पुत्र सहित मिले तो अशुभ नहीं होती; विधवा उसके पुत्रके लिये मांगालिक शकुन करने वाली होती है, परंतु अन्यके लिये उसको नमस्कार करना उचित नहीं, क्योंकि उसको नमस्कार करनेसे चाहे हमारा मंगल भी हो परंतु उसके शापसे मृत्यु अवश्य होती है; इसलिये विधवा स्त्रीसे संभाषण करना ही उचित नहीं है।

सहगमनका माहात्म्य।

पतिव्रता स्त्रीको पतिकी मृत्यु होनेपर सहगमन करना उचित है, जैसी प्राणके साथ देह, चंद्रके साथ चांदनी और मेघके साथ वर्षा चली जाती है, तैसे ही पतिव्रता पतिके साथ गमन करे, यही श्रुतिके अनुसार पतिव्रताके लक्षण हैं।

जो स्त्री पतिके साथ गमन करती है, उसके बयालीस पुरुषोंका (पीढ़ियों) उद्धार होता है। सहगमनके लिये जो स्त्री जाती है, उसको प्रति चरण पर अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है, पापी पुरुषकी मृत्यु होनेपर यमपुरी को ले जानेके लिये यमराजके दूत पहुंचनेपर भी यदि उसकी पतिव्रता सहगमन करे, तो चील, जैसे साँपको लेकर उड़ जाती है, उसी प्रकार पतिको स्वर्गमें ले जाती है, और यमदूतोंका उसपर कुछ बस नहीं चलता। पतिव्रताके भयसे साक्षात् काल भी डरता है; सूर्यका तेज मंद हो जाता है, अग्नि शीतल हो जाती है; पतिव्रता स्त्री अपने पतिको साथ लेकर स्वर्गको जाती है और वहां अखंड सुखका उपभोग करती है; पतिके साथ अग्निप्रवेश करनेसे उसके प्रति रोमके पलटे एक एक कोटि वर्षपर्यंत वह पतिके सहित स्वर्गमें निवास करती है; तीन कोटि रोम स्त्रीके शरीरमें होते हैं; इस प्रमाणसे कितने वर्षलों वह स्वर्गसुखका अनुभव करती है, यह स्पष्ट विदित होता है; इसी लिये कहते हैं कि पुरुष कन्या उत्पन्न करनेकी इच्छा करे, क्योंकि यदि कन्या पतिव्रता होगी तो बयालीस पीढियोंका उद्धार करेगी; पृथ्वी कहती है कि पतिव्रता स्त्री जहां जहां मुझपर चरण रखती है, तहां

तहाँ मैं पवित्र होती हूं; सूर्य चंद्र कहते हैं कि हमारी किरणें पतिव्रतापर पडनेसे हम पवित्र होते हैं; वायु और वरुण कहते हैं कि पतिव्रताके स्पर्शसे हम पवित्र होते हैं; घर घर सुंदर स्वरूप और लावण्यवती स्त्रियां होती हैं, उनसे क्या प्रयोजन? जिसके द्वारा मनुष्यके बयालीस पुरुषोंका उद्धार होता है, वही स्त्री होनी चाहिये; जब सौ जन्मका सुकृत संचित होता है, तब ऐसी स्त्री मिलती है; पतिव्रता स्त्री घरमें होनेसे यज्ञादिक सत्कार्य हो सकते हैं। जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री नहीं होती है उसका घर अरण्यके समान होता है; क्योंकि वह कोई सत्कार्य नहीं कर सकता। उसने संसारमें व्यर्थ जन्म लिया; वह केवल कर्म रूप रस्सी से बाँधा गया है। पतिव्रताके दर्शनमात्रसे गंगादिक तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य होता है; और सात जन्मके पाप दूर हो जाते हैं। इस प्रकारसे पतिव्रताके लक्षण वर्णन करके सुरगुरुने इस स्थानपर यह भी कहा कि यदि स्त्री व्यभिचारिणी होती है तो स्वर्गवास करते हुए बयालीस पुरुषोंको स्वर्गसे निकालकर नरकमें ले जाती है और जितने रोम उसके शरीरमें होते हैं उतने वर्ष पर्य्यन्त सबको नरकवास करना पड़ता है।

अध्याय ३२

विधवाकाधर्म।

पतिकी मृत्यु दूर ग्रामांतरमें हो, अथवा पतिकी मृत्युके समय स्त्री गर्भिणी हो या छोटा बच्चा रखती हो तो उसको सहगमन न करना चाहिये; उस दशामें स्त्रीको विधवा रहना चाहिये और विधवाके धर्मके अनुसार व्यवहार करके जन्म बिताना चाहिये; विधवाके धर्मका पूर्णतया पालन करनेसे भी सहगमन करनेके समान फल मिलता है। पतिकी मृत्यु होते ही स्त्री केशवपन करे (जो स्त्री केशवपन नहीं करती है उसका पति केशोंसे बाँधकर नरकमें भेजा जाता है) नित्य प्रातःकालके समय स्नान करे; एकवार भोजन किया करे, वह भी एक धान्यके अन्नसे, पक्षके अंतमें तीन दिन और मासके अंतमें पाँच दिन उपवास किया करे, अथवा चांद्रायण व्रतकी रीतिसे ग्रास घटा-

बढाकर भोजन किया करे (चांद्रायणकी विधि अध्याय २८ में वर्णित है) एक अन्नके भोजन करनेकी जिसमें शक्ति न हो वह फलाहार अथवा शाकाहार करे या दूध पिये; कभी अधिक आहार न करे, जिससे अधिक कालतों प्राण बचे रहें. पलंगपर शयन न करे; मंगल स्नान, तेलमर्दन, तांबूल पुष्प आदिका उपयोग न करे; जिसके पुत्र नहीं है, वह नित्य तर्पण स्वयं किया करे; विष्णुकी मूर्तिमें पतिकी कल्पना करके उसकी नित्य पूजा किया करे और पतिके अस्तित्वमें, जिस प्रकार सब कार्य पतिकी आज्ञासे करती, उसी प्रकार विष्णु, गुरु, अथवा ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर किया करे; पतिके रहते जिन जिन वस्तुओंपर प्रीति करती थी. वे वस्तुएँ विद्वान् ब्राह्मणोंको दान करनी चाहिये, माघमें मासभर विष्णुका स्मरण करके तीर्थमें स्नान करे, तिल और घृत ब्राह्मणोंको दान करे, तिल और खजूर गुड़ आदिके पकान्न बनाकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा सहित देना चाहिये तपस्वियोंको भोजन करावे। शीत निवारणार्थ ब्राह्मणोंको लकड़ा और वस्त्र दे।

वैशाख मासमें विधियुक्त स्नान करे। अरण्यमें निर्मल जलके पौसरे बैठावे, शिवालयमें अभिषेक बैठावे, मासभर सर्वोपचारसे शिवजीकी पूजा करे, ब्राह्मणोंके घरपर यथा शक्ति अन्न और उदक भेजे, तीर्थयात्रा करने वाले अतिथि उसके घरपर आवें तो उनको छाता, पादुका, आदि दे मिष्ठोदक पान करावे, आम, केला, मुनक्का आदि फलों का आहार कराके पतिके नामसे अर्पण करे।

कार्तिक मासमें तेल, मधु, दाल आदि निषिद्ध पदार्थोंका सेवन न करे; मासभर विधियुक्त स्नान करे; काँसेके पात्रमें भोजन करे पलाशपत्रमें भोजन करे: घृतयुक्त काँसेका पात्र मंचक और जो जो वस्तुएँ वर्ज्य की हैं वे सब ब्राह्मणोंको दे; मासभर परद्रव्य न ले; दही और दूधका भोजन न करे। शक्तिके अनुसार गोदान करे। दीपदान भी अवश्य करे।

तीर्थयात्राको जाय, तब रुद्राभिषेक करके सुगंधित द्रव्योंसे शंकरकी पूजा करे; दरिद्रोंको जूता पहनावे; बैलपर कभी न बैठे; कंकण और चोली न पहने, काला और लाल वस्त्र न पहने, श्वेतवस्त्र पहने और पुत्रकी आज्ञाके अनुसार वर्तन करे, कहा है " आत्मावै पुत्रनामासि " पतिसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है। इसलिये विधवाको

पुत्रकी आज्ञाके अनुसार व्यवहार करना उचित है।

जो विधवा इस रीतिसे आचरण करती है वह भी पतिव्रताके समान फल पाती है। पति पापी हो और वह नरकमें गया हो; परंतु जो स्त्री इस रीतिसे विधवाका धर्म पालन करती है, वह मरनेपर अपने पतिको स्वर्गमें ले जाती है।

सिद्धने कहा, हे बाले! परमार्थ साधनके दोनों मार्ग मैंने तुमसे कहे, इसमे जो तुमको प्रिय दिखाई दे, वह स्वीकार करो, जी चाहे सहगमन करो, जी चाहे विधवा रहो।

स्त्रीने स्वामीको दंडवत् प्रणाम करके सहगमन करनेकी व्यवस्था कियी। उसने देखा कि विधवा रहनेमें कष्ट बहुत होंगे, तारुण्यके समयमें लावण्य और सौंदर्यकी उपाधिके कारणसे धर्मका पालन करना और निंदापवादसे बचा रहना अशक्य होगा, इससे सहगमन करना ही उत्तम है।

स्वामीने अपने पाससे भस्म निकालकर प्रेतके मस्तकपर लगादिया और चार रुद्राक्ष स्त्रीको देकर कहा प्रेतको दहन करनेसे पहिले ये रुद्राक्ष उसके कंठ और कानोंमें बांध देना और तुम स्वामी नृसिंह सरस्वतीके स्थानपर पहुँचकर दर्शन करना। वहाँके ब्राह्मण रुद्रसूक्तसे स्वामीके चरणोंपर अभिषेक करते हैं, उसका तीर्थ अपने ऊपर और प्रेतपर सिंचन करके तब सहगमन करना।

इतना कहकर स्वामी अपने स्थानको चले गये। स्त्रीने ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिपूर्वक पतिका षोड्ष कर्म किया। अपने उपोषित रहकर स्नान करके पीतांबर पहन सब आभूषण धारण किये, हल्दी कुंकुमादि सौभाग्य चिन्ह धारण करके प्रेतको अर्थीपर शयन कराकर गंगाजीके किनारे पर ले गई। आप प्रेतके आगे आगे अपनी हथेलीमें अग्नि लेकर आनंद युक्त होती हुई जा रही थी, सोलह वर्षकी तरुण सुंदरी! सब अलंकार और उत्तमोत्तम वस्त्र धारण करनेसे लक्ष्मीके समान शोभा दे रही थी।

उस समय वहांपर अनेक स्त्रियाँ भी एकत्रित हो गई थीं, एक कहती थी "कैसे आश्चर्य की बात है? सोहल वर्षकी दीन तरुणी! संसार सुख कुछ नहीं देख पायी! कैसे अतःकरणको दृढ़ किया होगा? जो सहगमन करनेके लिये जा रही है?" दूसरी कहती थी "इसको

समझाना चाहिये कि क्यों वृथा प्राण गवाँती है ? लौटकर अपने पिताके घर सुखसे रहे।" तीसरीने कहा "नहीं! नहीं!! वह बड़ी ज्ञानवती सती है, पतिव्रता है, हे परमेश्वर ! सब स्त्रियोंको ऐसा ही बुद्धि दे !! धन्य हैं इसके माता पिता जिन्होंने ऐसी पुण्यवती कन्या उत्पन्नकी। अब यह अपने सब पितरोंका उद्धार कर देगी।"

गंगापर पहुचते ही कुंडमें अग्नि सुलगायी गयी, प्रेतको अग्निकुंड के समीप रखनेके पीछे सुवासिनी स्त्रियोंको वायन दिये, ब्राह्मणोंको द्रव्य देकर संतुष्ट किया।

फिर उस पतिव्रताने हाथ जोड़कर सब साथियोंसे प्रार्थना कियी कि मैं अपने नैहरको जा रही हूं, भगवान् शूलपाणि मेरे पिता हैं, और उमा मेरी माता है। श्रावणी और दिवालीके त्योहार समीप आये हैं। इसलिये माता पिताने मुझे बुलाया है, मैं अपने पति सहित जाती हूं। मुझपर सब जनसमुदाय प्रेम बनाये रहें, अब सब लोग अपने अपने घरको लौट जाइये। हमारी सास और श्वशुरसे कोई हमारा वृत्तांत न कहिये, क्योंकि वे प्राण छोड़ देंगे तो आप लोग हत्यारे होवेंगे। उनसे यही कहना कि दोनों स्त्री पुरुष सुखपूर्वक श्रीगुरु के पास हैं। इसीप्रकार मेरे माता, पिता, नात, हित सबसे कहना।

यह सुनकर सब लोग बहुत दुःखी हुए; परतु पातव्रता आनंदित थी। अग्निकुंडमें काष्ठ डाले गये; उस समयपतिव्रताको गुरुके दर्शन करने का स्मरण आया और तत्काल हा वह स्वामीक स्थानकी ओर को चली। मार्गमे वह श्रीगुरुका स्मरण करके मन ही मनमें उनका स्तुति करती जाती थी कि हे भगवन् ! आप सर्वेश्वर हैं, आप शरणागतोंके आधार हैं, आप अपनी इच्छा मात्रसे तीनों भुवनोंकी रचना करते हैं आपके पास अष्ट सिद्धि नव निधि विद्यमान रहती हैं; परंतु क्या मेरे लिये आपके पास कुछ नहीं है ? मेरे पूर्व संचित पापोंके कारणसे आपका अनुग्रह मुझपर नहीं हुआ। जब प्रजामेंसे कोई त्रसित मनुष्य राजाकेपास शरण जाता है, तो राजा उसका तत्काल न्याय कर देता है; वैद्यके पास जाता है तो वह तुरंत औषधि देता है। आप त्रिमूर्तिके अवतार हैं, सब भक्तजन आपकी सेवा करके मनोरथ पूण करते हैं, मैं हा एक अभागिनी हूं, जिसका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ। मेरी बराबर की और स्त्रियाँ पुत्र प्राप्त कर चुकी हैं। मुझ पत्थरके प्रारब्धमें वह भी

नहीं, मैं आपकी सेवामें इस आशासे आयी कि मेरा पति दोषमुक्त होगा और मैं पुत्रवती होऊँगी, परंतु मेरा मनोरथ सफल नहीं हुआ- अब मैं आपकी कीर्ति अपने साथमें स्वर्गको ले जाती हूं। इस प्रकार स्तुति करती हुई स्वामीकी सेवामें पहुंची।

उसके साथमें सहस्रों स्त्री पुरुष उसके शुद्धाचरणका समारंभ देखते हुए गये थे।

मृतभर्तृकाके पतिका पुनर्जीवन।

पतिव्रताने स्वामीको देखते ही दंडवत् प्रणाम किया, स्वामीने आशीर्वाद दिया "सौभाग्यवती भव"। पतिव्रताने फिर एकबार प्रणाम किया, तब भी स्वामीने कहा "अष्ट पुत्रा भव" यह सुनकर सब लोग एक बार ही हंस पड़े, उनमेंसे एकने स्वामीसे सब वृत्तांत कहा, सो सुनकर स्वामीने कहाः-जिसका अहिवात अखंड है, उसका पति कैसे मर सकता है? प्रेत हमारे सन्मुख लाया जाय, हम देखेंगे कि किस समय प्राण गया है।

स्वामीकी आज्ञाके अनुसार तुरंत प्रेत सामने लाया गया। उसपर गुरुके चरणोंको, रुद्रसूक्तसे अभिषेक किया हुआ जल सिंचन किया गया। उससे प्रेत तत्काल सजीव होकर शरीर ऐंठता हुआ उठ बैठा। नग्न होनेके कारणसे वह लज्जित हुआ, उसको नये वस्त्र दिये गये। अबलों जिसको हम प्रेत कहते थे, वह अब दत्तशर्मा पुरुष हो गया, वह अपने मनमें जानता था कि मैं इतनी देर निद्रित था। उसने स्त्रीसे कहा, बड़ी ही लज्जाकी बात है कि इतने लोगोंके सामने मैं नग्न होकर मदोन्मत्तकी भांति सोता रहा। तुमने मुझे जगा क्यों नहीं दिया? स्त्रीने विस्तारसे सब वृत्तांत कह सुनाया। फिर दोनोंने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रखके दंडवत् प्रणाम किया और वह दुःखी समुदाय आनंद ही आनंदमें निमग्न हो गया। श्रीगुरुकी जयध्वनिसे वह प्रदेश गुंजित हुआ, भजन, स्तोत्र, गायनादि नाना प्रकारके होने लगे।

उसी समय एक धूर्तने स्वामीसे प्रश्न किया कि वेदशास्त्रोंसे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म लिखित वाक्य कभी टल नहीं सकते हैं, परंतु यह मनुष्य मरके भी सजीव हो गया तो अब ब्रह्मदेवके वाक्य सत्य माने जायँ वा मिथ्या?

श्रीगुरुने हास्ययुक्त होकर कहा हमने ब्रह्मदेवसे इस पुरुषके भावी जन्मकी आयुमेंसे तीस वर्ष उधार ले लिये हैं। वे उस जन्मकी आयुमें काट लिये जायंगे।

अध्याय ३३

दोनों स्त्री पुरुषने संगममें स्नान करके भक्तिपूर्वक श्रीगुरुकी पूजा किये। ब्राह्मणोंको अपार द्रव्य दिये; जिससे गुरु प्रसन्न हुए। तब पतिव्रताने उन सिद्धकी कृपाका वृत्तांत कहा, जिन्होंने भस्म और रुद्राक्ष देकर रुद्रसूक्तके अभिषेकके जलसे प्रेतका प्रोक्षण करनेको कहा था। स्वामीने कहा वह सिद्ध मैं ही तो था। तुम्हारी पतिसेवा देख मैंने प्रसन्न होकर भस्म और रुद्राक्ष दिये थे, तब पतिव्रताने रुद्राक्ष और रुद्रसूक्तकी महिमा पूछी सो स्वामीने इस प्रकार कही—

रुद्राक्षकी महिमा और कुक्कुट मर्कटकी कथा।

एक सहस्र रुद्राक्षोंकी माला जो पुरुष गलेमें पहनता है, वह रुद्र स्वरूप हो जाता है। दोनों बांहोंमें सोलह सोलह, शिखामें १, दोनों हाथोंमें २४, कंठमें ३२, मस्तकमें ३२, दोनों कानोंमें १२, एकसौ आठकी एक माला गलेमें, इस प्रकारसे जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह रुद्रके पुत्रके समान हो जाता है। इन्हींमें चांदी, वैडूर्य, सुवर्णादिके मणि भी मिलाकर धारण किये जा सकते हैं। जितने जिसको मिल सकें, उतने ही धारण करने चाहिये; जो पुरुष रुद्राक्ष धारण करता है, उसके सब पाप दूर हो जाते हैं, वह सद्गति पाकर रुद्रलोकमें अखंड निवास करता है, जो पुरुष रुद्राक्षकी मालासे जप करता है, वह अपार पुण्यका लाभ पाता है, कानोंमें रुद्राक्ष बांधकर जो पुरुष स्नान करता है, वह गंगास्नानका फल पाता है। रुद्राक्षको रुद्रसूक्तसे अभिषेक करके उसकी पूजा करनेवाला रुद्र पूजाके समान फल पाता है। एकमुख, पंचमुख और चौदहमुखके रुद्राक्ष होते हैं, ये मिलें तो उत्तम हैं, नहीं तो अनेक प्रकारके रुद्राक्ष होते हैं, उनमेंसे जो मिल जावे उनका ही उपयोग किया जावे। इस विषयका एक इतिहास कहता हूं—

काश्मीर देशमें भद्रसेन नामका राजा था। उसका पुत्र सुधर्म और

उसके मंत्रीका पुत्र तारक ये दोनों बड़े ज्ञानी थे. दोनों एक ही वयके थे, दोनोंने एक ही पाठशालामें विद्याभ्यास किया था। दोनोंमें परस्पर इतनी प्रीति थी कि दोनोंका खेलना और भोजन करना नित्य एक ही स्थानपर होता था। वे दोनों शिवभक्त थे। सर्व देहमें रुद्राक्षके अलंकार धारण करते थे और भस्म लगाते थे, सुवर्ण और रत्नोंको लोहके समान मानते थे, उनके मातापिता वहुत चाहते थे कि अपने पुत्रोंको सुवर्ण और रत्नके अलंकार पहनावें; परंतु पुत्रोंको जब अलंकार पहनाये जाते थे, व ब्राह्मणोंको दे डाला करते थे।

पतिव्रता वेश्या।

एक दिन राजाके घर त्रिकालज्ञ महर्षि पराशरका आगमन हुआ, राजाने उनकी षोडशोपचारसे पूजा करके हाथ जोड़कर प्रार्थना कियी कि हे भगवन्! पुत्र विक्षिप्तकी भांति हो रहा है, इसका क्या कारण है? कृपा करके इसको कुछ उपदेश कीजिये, मेरा कहा नहीं मानता।

महर्षिने ध्यान करके कहा:—इसका कारण मेरी समझमें आ गया है, पूर्वकालमें नंदिग्राम नामक नगरमें एक अति लावण्यवती सुंदर वेश्या रहती थी, जिसके मुखकी छबि देख चंद्रमा लजाता था। जैसा ही अप्रतिम रूप लावण्य था, वैसी ही उसके पास संपत्ति भी अपार थी। पौर्णिमाके चंद्रके समान सुवर्णका सुशोभित छत्र उसके ऊपर लगाया जाता था, उसका भवन निरे सुवर्णका था, सुवर्णकी खड़ाऊपर वह चलती थी, रत्नजड़ित पर्य्यङ्कपर शयन करती थी, रत्नजड़ित अखिल वस्त्राभरणादि ऐश्वर्यसे वह नवयौवना ऐसी मंडित थी, मानो साक्षात् रति। बहुमूल्यकी असंख्य गायें, भैंसें, अपार धन धान्य उसको अनुकूल थे। तात्पर्य यह कि उसका ऐश्वर्य तीनों लोकमें प्रसिद्ध था।

इतना होनेपर भी वह धार्मिक और पतिव्रता थी। अगणित द्रव्य और असंख्य वस्त्र ब्राह्मणोंको देती थी। अपने घरपर एक बहुमूल्य द्रव्योंसे नाट्यशाला सजा रक्खी थी, उसीमें नित्य गायन और नृत्य किया करती थी। इसीमें एक कुक्कुट और एक मर्कट भी बंधा रहता था। दोनोंको उसने अपने चित्तविनोदके अर्थ पाला था, उनको नृत्य करना भी सिखलाया था, उनका नाम "सदाशिव" रखकर उनके

गलेमें रुद्राक्षके आभूषण पहिनाये थे।

एक दिन इस वेश्याके घरपर शिववृत्ति नामका एक धनिक वैश्य आया; उसके गलेमें रुद्राक्षकी माला थी, मस्तकपर त्रिपुंड्र भस्म और तिलक था; वह हाथमें सर्वकाल चंद्रमाकी कांतिके समान कांतिवाला निरे रत्नका शिवलिंग लिये रहता था।

वेश्याने वैश्यको नाट्यशालामें सत्कारसे बैठाकर अनेक प्रकारसे नृत्य, गायन, अभिनयपूर्वक किया, जिससे वैश्य बहुत प्रसन्न हुआ।

उस समय वेश्याकी इच्छा हुई कि किसी रीतिसे वैश्यके हाथमें का शिवलिंग हस्तगत कर लें। उसने अपनी दासीके द्वारा वैश्यसे प्रार्थना कियी कि यदि आप मूल्यसे देना स्वीकार करें तो एक लाख रुपये दे सकती हूं और रतिसुखकी इच्छा रखते हों तो तीन दिनपर्यन्त कुलस्त्रीके समान पतिव्रता धर्मसे आपकी सेवा करूँगी।

वैश्यने रतिसुख स्वीकार करके कहा "तुम वेश्या हो। तुम पतिव्रता धर्मको किस प्रकार निबाह सकोगी? तुम्हारा धर्म तो अनेक पुरुषोंके साथ विहार करनेका है।" इसपर वेश्याने उसी शिवलिंगपर हाथ रख चंद्र सूर्यको साक्षी बना, हाथमें तीन दिनके लिये सौभाग्य कंगन बाँधा इस प्रकारसे वह वैश्यकी तीन दिनके लिये धर्म पत्नी हुई।

वैश्यने उसके हाथमें शिवलिंग देकर कहा " यह लिंग मेरे प्राण के समान है, इसकी हानि होगी तो मैं अपना प्राण छोड़ दूंगा। संभोगके समय लिंगको समीप न रखना।"

सूर्यास्तका समय हुआ, वेश्याने लिंगको मंडपके मध्य भागमें व्यवस्थासे रखा दिया। दोनों स्त्री पुरुष (वैश्य, वेश्या) अंतर्गृहमें जाकर क्रीड़ा करनेमें निमग्न हुए; एक क्षण बीता होगा कि अचानक नाट्य-मंडपमें अग्नि लगी। आनकी आनमें मंडप कुक्कुट, मर्कट, शिवलिंग सहित जलकर भस्म हो गया, वैश्यके ऊपर मानो पर्वत टूट पड़ा, हाहाकार करके अग्निको बुझानेका बहुत प्रयत्न किया; परंतु कुछ फल नहीं हुआ। जब उसने जान लिया कि लिंग नहीं बचा, तो बहुत खेद किया। वह पृथ्वीपर गिरकर रुदन करने लगा और सिर पीट पीटकर 'हा शिव' 'हा शिव' करता था। अंतमें काष्ठ सुलगाकर उसी समय उसी स्थानमें देखते ही देखते आप भी अपने अग्निमें जल मरा। सब लोग आश्चर्य चकित होकर रह गये।

वेश्याने कहा "इस पापकी अधिकारिणी मैं हूं. वैश्य मेरा प्राणेश्वर था, मैं उसकी पत्नी हूं; इसलिये मुझे सहगमन करना उचित है।" उसने ब्राह्मणोंको बुलाकर सब संपत्ति दान कर दियी। चंदनादिकके काष्ठ मंगवाकर अग्नि प्रज्वालित कियी, अपने बंधुवर्गको नमस्कार करके कहा, पतिके सहगमन करनेकी आज्ञा दीजिये।

वेश्याके वचन सुनकर सब लोगोंके अंत:करण दु:खसे भर गये; उन्होंने कहा "यह कैसा पतिव्रता धर्म? वेश्या किसकी पत्नी? उसके घरपर सहस्रों पुरुष केवल रतिसुखकी इच्छासे आते हैं। अपनी इच्छा पूर्ण करके लौट जाते हैं; वेश्या पतिव्रता धर्मका पालन करके किस किसके साथ प्राण गवांवेगी? कैसा वैश्य? कैसा लिंग? नित्य नये पुरुषोंसे प्रसंग करना यही वेश्याओंका धर्म है; पतिव्रताधर्म गृहस्थिनियोंका धर्म है, वेश्याओंका नहीं; तुम किस भ्रममें पड़कर प्राण गँवाती हो?"

वेश्याने कहा "यह कोई उचित परामर्श नहीं है, मैंने चंद्र सूर्यको साक्षी देकर अपना प्राण उसके हाथमें दे दिया था; मैं पतिव्रता प्रसिद्ध हूं। इसलिये अपना धर्म नहीं छोड़ सकूंगी। यदि धर्म छोड़ दूंगी तो किस प्रकार परलोकका मार्ग पा सकूंगी? मृत्यु तो कभी न कभी अवश्य ही होनेको है। असार संसारके दु:खसागरमें धर्महीन होकर कबलों डुब्बक डैयां करती रहूंगी? पतिकी मृत्यु होनेपर जीवन व्यर्थ है।"

इस प्रकारसे सब लोगोंको कहती हुई वेश्याने अग्निको नमस्कार करके प्रदक्षिणा कियी। भगवान् सर्वेश्वरका ध्यान किया। फिर वह ब्राह्मणोंको प्रणाम करके अग्निमें कूद पड़ी।

उसका अग्निमें कूदना था कि एकाएक उसमेंसे पंचमुख, दशभुज, त्रिशूलधारी, भगवान् शूलपाणि प्रगट हुए और उन्होंने वेश्याका हाथ पकड़कर अग्निसे बाहर निकाला; फिर वेश्यासे कहा-मैं तुम्हारे पातिव्रत्यकी परीक्षा करनेके लिये आया हूं। तुमको धर्ममें पूर्ण रीतिसे दृढ़ पाकर मैं प्रसन्न हुआ हूं; मैंने ही वैश्यका स्वरूप धारण किया था; मैंने ही मायासे अग्नि उत्पन्न कर दियी थी। अब जो तुम्हारी इच्छा हो वर मांग लो।

वेश्याने प्रार्थना कियी कि हे भगवन्! मुझे अब किसी भोगैश्वर्यकी इच्छा नहीं रही, मुझे और मेरे इष्ट, बंधु, दास, दासीको केवल अपने

चरणोंका सान्निध्य दीजिये ।

शिवजीने " तथास्तु " कहा और वेश्याको उसके बंधुवर्गादि सहित विमानमें बैठाकर स्वर्गको ले गये । नाट्यमंडपमें जो कुक्कुट मर्कट जल गये थे, उनमेंका मर्कट रुद्राक्ष धारण करनेके प्रभावसे तुम्हारे घर जन्मा है और कुक्कुट तुम्हारे मंत्रीके घर । रुद्राक्ष धारण करने हीके प्रभावसे ये दोनों महा ज्ञानवान् हुए हैं, इनको विक्षिप्त न समझो ।

अध्याय ३४

रुद्राध्यायमहिमा ।

राजाने पराशर ऋषिसे प्रार्थना की कि हे भगवन् ! आप त्रिकालज्ञ हैं । इसलिये कृपा करके पुत्रका भविष्य भी बता दीजिये ।

ऋषिने कहा:-तुम्हारे पुत्रका भविष्य कहना ऐसा होगा मानो तुमको दुःखके समुद्रमें डुबो देना, इसलिये वह कहना मैं उचित नहीं समझता ।

राजाने कहा:-हे मुनिवर्य ! आपके तपोबलकी यह भी तो सामर्थ्य है कि यदि कोई दुःखदायक प्रसंग होगा तो आप उसका निवारण भी कर सकेंगे; ऐसी दशा में मुझे दुःख होनेका क्या कारण है ?

ऋषिने कहा:-तुम्हारे पुत्रकी आयु बारह वर्षकी है । सो आजसे सात दिनोंमें पूर्ण हो जावेगी, आठवें दिन उसकी मृत्यु हो जायगी ।

यह कहना था कि राजा मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर गया, उसके शोक और दुःखका ठिकाना नहीं रहा, बुरी रीतिसे रोने लगा । राजाने ऋषि से प्रार्थना कियी कि अब कृपा करके आप तपस्याके बलसे मुझे पुत्रदान दीजिये, मैं आपकी शरण हूं । इसीप्रकार राजाकी स्त्रियोंने भी स्वामीके चरणोंको दृढ़तासे पकड़ लिया ।

मुनिने कहा तीनों लोकोंमें एक मात्र निष्कलंक, नित्यानंदस्वरूप जगत्के उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले भगवान् व्योमकेश हैं । उन्होंने अपने रजोगुणस्वरूपसे ब्रह्माको उत्पन्न करके सृष्टिकी रचनाके लिये चार वेद निर्माण किये, सो ब्रह्मदेवको दे दिये और आत्मतत्व

संग्रहके अर्थ यजुर्वेदांतर्गत उपनिषद् अपने पास रख छोड़ेथे, उनमेंसे भी उपनिषदोंका सारभूत रुद्राध्याय था, वह भी ब्रह्मदेवको दे दिया; इस रुद्राध्यायकी अपूर्व महिमा है, इसका तत्काल फल मिलता है। इससे अधिक अन्य कोई मंत्रसाधन नहीं है; इसके जपसे चारों पुरुषार्थ प्राप्त हो सकते हैं और अनेक प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं। ब्रह्माने वेद तीर्थ निर्माण किया है। उसमें जो पुरुष स्नान करता है, अथवा उसका जलपान करता है, वह फिर संसार चक्रसे छूट जाता है। जब रुद्रजाप घरघर होने लगा था तब ब्रह्महत्त्या, मातृहत्त्या, गोत्रहत्त्यादि सब पापोंने यमराजके पास जाकर प्रार्थना कियी कि हे स्वामी! आपकी आज्ञाके अनुसार हम पृथ्वीपर गये थे; परंतु वहांपर एक निमिष भी हम नहीं ठहर सके; गाँवमें, खेतमें, नदीके तीरपर, जहां जाते थे तहां रुद्रजाप होता था; बड़े बड़े पापी पुरुष जिनके पापोंकी निष्कृति बड़े बड़े दान, यज्ञ, तीर्थादि करनेसे नहीं हो सकती, वे एक रुद्रजापसे मुक्त हो जाते हैं; अब हम कहां जायँ?

यह सुनकर यमराज क्रोध करके ब्रह्मदेवके पास पहुँचे और उनसे सब वृत्तांत निवेदन करके बोले कि रुद्रके जापसे पापी और पुण्यवान् सब स्वर्गको चले जाते हैं; हमको कोई नहीं पूँछता। नरक सब खाली पड़े हुए हैं। हमारे लिये भी कोई कार्य नहीं है; हमारा राज्य लुट गया।

ब्रह्मदेव ने कहा वास्तवमें रुद्रजापकी महिमा ऐसी ही है, परन्तु जो मूर्खजन भक्तिहीन होकर, मदोन्मत्त होकर, खड़े खड़े, लेटे लेटे रुद्रजप करें, उनको तुम अवश्य दंड देते रहो; जो पुरुष भक्तिभावसे करें, उनको तुम कभी न सताओ; क्योंकि पूर्वजन्मके पापोंकी निष्कृति भक्तिपूर्वक रुद्रजाप करनेसे होती है; और जो पुरुष अल्पायु होते हैं वे दीर्घायु हो जाते हैं। तेज वर्चस्व संपत्ति, बुद्धि, आयु, आरोग्य, ज्ञान आदिकी वृद्धि होती है, रुद्रमंत्रसे महादेवको अभिषेक करनेसे जो तीर्थ निकलता है, उसमें स्नान करनेवाला या उसका पान करनेवाला मृत्युसे नहीं डरता। अति रुद्रका जप और अभिषेक करके उसके तीर्थसे जिस मनुष्यको स्नान कराया जाय, उससे मृत्यु भी डरती है और वह मनुष्य संसार–सागरके पार हो जाता है। यह सुनकर यमराज अपने स्थानको चले गये।

पराशर ऋषि राजासे कहते हैं कि तुम अपने पुत्रसे दशसहस्र रुद्रमंत्रका शिवजीपर अभिषेक कराओ तब वह दशसहस्र वर्षपर्य्यन्त निर्दोष और निष्कंटक राज्य करेगा।

मृत राजपुत्रका पुनर्जीवन।

ऋषिकी आज्ञाके अनुसार तत्काल जपका आरंभ किया गया, सात दिन पूर्ण होते ही पुत्र मरणप्राय हुआ, उसी समय पराशर ऋषिने अभिषेक जल प्रोक्षण किया, जिसके प्रोक्षण करते ही भगवान् शूलपाणिने प्रगट होकर भयंकर दंडधारी यमदूतोंसे राजपुत्रकी रक्षा कियी। यमदूत दूर हीसे देखते रहे, भयके मारे समीप नहीं जा सके, उन्होंने दूर हीसे राजपुत्रके गलेमें यमपाश डालना चाहा परंतु शिवदूतोंने उनको भगा दिया, राजकुमार उठ बैठा। राजभवनमें आनंद हुआ

राजभवनमें आनंद ही आनंद हो रहा था। इसी अवसरमें वहाँ नारद मुनिका आगमन हुआ। यथोचित सत्कार कुशल प्रश्न होने पर राजाने प्रार्थना कियी कि हे मुनिवर्य! आप तीनों लोकमें पर्यटन करते रहते हैं, यदि कहीं कुछ न्यूनाधिक आपके अवलोकनमें आया हो, कृपा करके कहिये।

मुनिने कहा मैं कैलासपर गया था, मार्गमें देखा कि जो यमदूत तुम्हारे पुत्रको ले जानेके लिये आये थे, उन्होंने यहाँसे जाकर यमराज के पास प्रार्थना कियी कि हमें शिवजीके दूतोंने राजपुत्रको नहीं लाने दिया और हमारा अपमान किया। यमराज क्रुद्ध होकर शिवजी के दूत वीरभद्रके पास पहुंचे। उन्होंने उनसे इसका कारण पूछा। वीरभद्रने कहाः-राजपुत्रकी आयु दशसहस्र वर्षोंकी थी। तुमने चित्रगुप्तसे पूछे बिना राजपुत्रको पकड़ लानेकी क्यों अपने दूतोंको आज्ञा दियी? शिवदूतोंने तुम्हारे दूतोंको बिना मारे छोड़ दिया, यही बहुत हुआ। चित्रगुप्त बुलाये गये, उन्होंने पत्रा देखकर बारह वर्षकी आयु बतायी, परंतु पत्रोंमें जहाँ बारह वर्षकी आयु लिखी थी, उसी स्थानपर दससहस्र वर्षकी आयुका अंक भी लिखा था; यह देखकर यमराज लज्जाके मारे नीचा मुँह करके वीरभद्रको नमस्कार कर अपना अपराध स्वीकार करके निज स्थानको चले गये।

नारद मुनि कहते हैं कि रुद्रजाप्यके पुण्यसे तुम्हारे पुत्रकी आयु बढ़ गयी। उसने महर्षि पराशरकी कृपासे मृत्युको जीत लिया।

नारद मुनि और सब लोग अपने स्थानको चले गये और राजाने पुत्र पौत्रादि सहित अखंडैश्वर्यका उपभोग किया। इसी रुद्राध्याय का अभिषेक-तीर्थ-सिंचन करनेसे तुम्हारी मृत्यु भी टल गयी।

अध्याय ३५

कच, देवयानीकी कथा।

द्विजकी स्त्रीने श्रीगुरुजीसे प्रार्थना कियी कि हे प्रभो? आपके चरणों में सर्वदा मेरा चित्त लगा रहे; इसलिये मुझे कोई मंत्रोपदेश कीजिये कि मेरा अंतःकरण सुखी हो।

स्वामीने कहा कि स्त्रीको कोई मंत्रोपदेश करना उचित नहीं है। स्त्रीके लिये पतिकी सेवासे अधिक फलदायक कोई मंत्र नहीं है, किन्तु स्त्रीको मंत्रोपदेश करनेसे मंत्र ही निष्फल हो जाता है। इस विषयमें मैं एक इतिहास कहता हूं:—

पूर्व कालमें देवता और दैत्योंमें परस्पर युद्ध हुआ करता था जब दैत्योंके सैनिक रणमें मृत होते थे, तब दैत्यगुरु शुक्राचार्य उनको संजीवन मंत्र पढ़कर तत्काल सजीव कर लिया करते थे, जिससे वे फिर युद्धमें खड़े हो जाया करते थे। इस कारणसे इंद्रने घबड़ाकर शिवजीसे प्रार्थना कियी। शिवजीने नंदीको आज्ञा दियी कि शुक्राचार्यको पकड़ लाओ। शिवजीकी आज्ञासे नंदी शुक्राचार्यके घर पर पहुँचा। उसने देखा कि शुक्राचार्य ध्यानस्थ हैं। नंदी मुहंमें उनका गला पकड़कर उनको शिवजीके पास उठा लाया। जैसे अगस्त्य मुनि समुद्रको पी गये तैसे ही शंभु शुक्राचार्यको पी गये।

इधर युद्धमें दैत्यगण मारे जाते थे। उनको अब सजीव करने वाला कोई नहीं था। इस कारणसे दैत्योंमे हाहाकार मच गया।

बहुत काललों शुक्राचार्य शिवजीके पेटमें रहे। शिवजी उनको भूल गये। शुक्राचार्य एक दिन अवसर पाकर मूत्रद्वार से भाग निकले और अपने घरपर पंहुच गये। पहिले इनका नाम शुक्राचार्य था। अब

ये भार्गव कहलाने लगे, उन्होंने फिर संजीवनी जपना आरंभ कर दिया।

अब इन्द्रने बृहस्पतिसे कहा कि "शुक्राचार्यको महादेव पी गये थे। फिर भी दैत्य सजीव होने लगे। आप देवताओंके पुरोहित हैं, कोई युक्ति ढूंढिये। दैत्यजन भाग्यवान हैं, जिनके पास शुक्र जैसे सहायक हैं। क्या आपमें उनके इतनी सामर्थ्य नहीं है? आपसे तो अधिक बुद्धिमान् शुक्राचार्य हो नहीं सकते हैं, फिर क्या कारण है कि आप इसकी कोई युक्ति नहीं ढूंढते?

बृहस्पतिने अपने पुत्र कचसे कहा कि तुम शुक्राचार्यके पास विद्यार्थीके वेषमें जाकर निंदा करो, अंतःकरणसे उनकी सेवा करके किसी युक्तिसे उनका संजीवन मंत्र सीखो और वह किसी प्रकार से छः कानोंमें पहुँचा दो।

पिताकी आज्ञा पाकर कच शुक्राचार्यकी सेवामें उपस्थित हुआ और दंडवत् प्रणाम करके बोला कि आपकी कीर्ति सुनकर विद्याभ्यास करनेकी इच्छासे मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ, हे भक्तवत्सलशिरोमणि! हे अनाथके प्रतिपालक! मुझे विद्याका दान दीजिये।

शुक्राचार्यकी अविवाहिता कन्या देवयानीने कचको साक्षात् कामदेवके समान सुन्दर स्वरूप और अपना पति होनेके योग्य देख अपने पिता शुक्राचार्यसे कहा हे तात! यह ब्राह्मण विद्या पढ़ानेके योग्य दिखाई देता है इसको अवश्य ही विद्या पढ़ानी उचित है।

शुक्राचार्य अपनी कन्यासे बहुत प्रीति करते थे, उसका आग्रह देख उन्होंने कचको प्रीतिपूर्वक विद्या पढ़ाना आरंभ कर दिया।

दैत्योंने कचका व्यवहार देवताओंके सदृश देख कर ताड़ लिया कि यह देवताओंमेंसे कोई कपट वेषधारी है, यह गुरुसे विद्या पढ़ कर देवताओंको पढ़ा देगा, तब युद्धोंमें हमारी हार हो जायगी, यह सोचकर वे कचको मार डालनेकी घातमें लगे।

एक दिन अवसर पाकर दैत्योंने कचको जंगलमें मार डाला, नियत समयपर कचको घरमें न आया देख देवयानीने पितासे कहा, आज अबलों कच नहीं आया, शुक्राचार्यने ध्यान करके देखा कि कच मार डाला गया है; तुरन्त ही सजीवन मंत्रसे उसको सजीव करके

बुला लिया ।

दैत्य तो उसके पीछे पड़े हुए थे । कुछ दिन पीछे फिर एक दिन उन्होंने उसको मार डाला, इसबार उन्होंने निर्दयतासे उसकी देह काट उसकी हड्डियोंका चूर्ण करके दसों दिशाओंमें फेंक दिया । फिर भी आचार्यने उसको सजीव करके बुला लिया ।

तीसरी वार फिर ज्यो हीं अवसर पाया, एकादशीके दिन उसको मारकर उसकी देह भस्म कर डाली और उस भस्मको मद्यमें मिलाकर शुक्राचार्यको पिला दिया ।

इस बार गुरुने देखा कि कच उनके पेटमें स्थित है, तव उन्होंने कहा अब उसका सजीव होना असंभव है। देवयानीने कहा जब आप दूसरोंको सजीवन मंत्रके द्वारा सजीव कर सकते हैं, तो क्या कारण है कि आप कचको सजीव करना अशक्य बतलाते हैं ? यदि कचको सजीव करना अशक्य है, तो मेरा भी सजीव रहना अशक्य है। कच मुझे प्राणोंसे अधिक प्रिय है ।

आचार्यने कहा "इसमें कठिनता यह है कि वह मेरे उदरमें स्थित है । जबलों मैं न मारा जाऊँ वह निकल नहीं सकता ।"

देवयानीने कहा "इसका तो सुलभ उपाय है । पहिले आप संजीवन मंत्र मुझे पढ़ा दीजिये । जब कच निकलेगा, मैं आपको सजीव कर लूंगी ।"

शुक्राचार्य ने कहा "स्त्रीको मंत्र पढ़ानेसे मंत्रकी सामर्थ्य नष्ट हो जाती है । कचके लिये हम अपने मंत्रकी सामर्थ्य गंवाना स्वीकार नहीं करते । दूसरे, स्त्रियोंको मंत्र पढ़ाना पाप भी है, क्योंकि स्त्रियोंके लिये अपने पतिकी सेवा करना ही उत्तम मंत्र है । तीसरे, मंत्रकी ध्वनि छः कानोंमें पहुंचनेसे मंत्रकी सामर्थ्य नष्ट हो जाती है ।"

देवयानीने कहा "आपको अपना मंत्र और उसकी सामर्थ्य मेरी अपेक्षा अधिक प्रिय है तो आप अपना मंत्र और उसकी सामर्थ्य सुरक्षित रखके सुखसे रहिये, मेरी अभिलाषा थी कि मैं उसकी भार्या बनकर वह और मैं दोनों आप हीके समीप रहते । परन्तु मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकता ।" यह कहकर आक्रोश करती हुई वह पृथ्वीपर गिरकर मूर्छित हो गई और ऐसा दृश्य हो गया मानो अब देवयानी प्राण छोड़े देती है ।

शुक्राचार्यने कन्याको सावधान किया और कहा यदि तुम्हारी

यही इच्छा है तो मैं अभी कचको बाहर निकालता हूं। यह कहकर देव-यानीको संजीवन मंत्र पढ़ाया। कच शुक्राचार्यका पेट विदीर्ण करके बाहर आया और देवयानीने शुक्राचार्यको सजीव कर लिया। देवयानीको पढ़ाते समय कचने शुक्राचार्यके पेटमें सुनकर मंत्र मुखोद्गत कर लिया।

कचने आचार्यसे प्रार्थना कियी कि दैत्यजन मेरे पीछे पड़े हैं। बार बार मुझे मार डालते हैं। इसलिये अब मुझे अपने घर जानेकी आज्ञा दीजिये। उन्होंने आज्ञा दियी। कच अपने घर चला गया। देवयानीकी कचसे विवाह करनेकी अभिलाषा पूर्ण न हो पाई। क्योंकि कचने "तुम मेरी गुरु भगिनी हो" यह कहकर उसकी इच्छा अस्वीकार कियी।

देवयानीने कोपसे उसको शाप दिया कि तुमने हमारे पितासे जो विद्या पढ़ी है वह निष्फल हो जायगी। कचने कहा तुमने मुझ,निरपराधी को शाप दिया इसलिये मै भी तुमको शाप देता हूं कि तुमने अपने पितासे जो संजीवन मंत्र पढ़ा है वह तुम्हारा और तुम्हारे पिताका निष्फल होगा और तुमसे ब्राह्मणके वंशका कोई पुरुष विवाह नहीं करेगा, अन्य जातिके पुरुषके साथ तुम्हारा विवाह होगा। वही हुआ।

स्वामी नृसिंह सरस्वती कहते हैं कि इसप्रकार संजीवन मंत्र स्त्रीको दिया जानेसे सामर्थ्यहीन हो गया। इसलिये तुमको मंत्र देना मैं उचित नहीं समझता, परंतु एक व्रत है,जिसका आचरण तुम अपने पतिकी आज्ञा लेकर कर सकती हो। इस व्रतके प्रभावसे तुम्हारा पति राज्य पा सकता है।

सोमवारव्रतकी महिमा।

स्कंद पुराणमें यह कथा लिखी है कि पूर्वकालमें भारत वर्षमें चित्रवर्मा नामका एक राजा राज्य करता था। यह राजा उत्तम कर्म मार्गी था। संतानकी इच्छासे वह शिवजीकी उपासना करता था जिसके प्रभावसे उसकी स्त्रीको एक अति स्वरूपवान कन्या उत्पन्न हुई। ज्योतिषियोंके कहनेसे उसका नाम सीमंतिनी रखा गया। ज्योतिषियों ने कहा:- यह कन्या अखिल सद्गुणोंसे युक्त होगी और दश सहस्र वर्ष पर्यन्त अपने पतिसहित राज्यका उपभोग करेगी। यह सुनकर राजाको बहुत आनंद हुआ था; परंतु एक ब्राह्मणने कुछ ही निमिष

पीछे उसका आनन्द विरस कर दिया, उसने कहा कि चौदह वर्षके पीछे यह कन्या विधवा हो जायगी। ब्राह्मण ये वाक्य कहकर अपने घरको चला गया । राजभवनमें आनन्दके स्थानमें दुःखका दृश्य फैल गया।

कन्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। जब सात वर्षकी हुई, अपनी सखियोंसे ब्राह्मणका कथन किया हुआ भविष्य सुनकर चिंतित हुई। उसने याज्ञवल्क्य मुनिकी पत्नी मैत्रायिणीको बुलाकर अपने भावितव्य वैधव्य नष्ट होनेका उपाय पूछा। मैत्रायणीने उससे सोमवार व्रतकी महिमा और विधान कहा।

मैत्रायणीने कहाः—प्रति सोमवारको उपोषण करो, स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर आसनपर बैठ शिव पार्वतीकी षोडशोपचारसे पूजा किया करो और ब्राह्मणोंको भोजन कराके उनको द्रव्य देकर संतुष्ट किया करो।

सीमंतिनीने मैत्रायणीके कहे अनुसार व्रत करना आरंभ किया उससे उसके पूर्व संचित सब पाप दूर हो गये। जब वह विवाहके योग्य हुई, राजाने नल दमयंतीके वंशमें चंद्रसेनके पुत्र चित्रांगद से, जो रूपगुणमें अत्यंत अनुपम था, उत्कृष्ट समारोहके साथ विवाह कर दिया और स्नेह वश जामाताको अपने ही घरपर रख लिया।

एक समय जामाता सैन्य सहित कालिन्दी नदीपर क्रीड़ाको गया और नावमें बैठकर जलका दृश्य देख रहा था। इतनेमें अकस्मात् नाव डूब गई। साथियोंपर दुःखका पर्वत टूट पड़ा। राजाके पास समाचार भेजा गया: राजभवन शोकसमुद्रमें डूब गया; कन्या प्राणत्याग करनेका निश्चय करके नदीके तीरपर पहुँची; राजपुत्रकी नदीमें बहुत कुछ खोज कियी गयी, किन्तु कहीं पता न चला।

सीमंतिनी शोक करती हुई भगवान् त्रिपुरांतकका ध्यान करके प्रार्थना करने लगी कि "हे भगवन्! शरणागतोंकीभी मृत्यु आपके राज्यमें होती है ? वैधव्य निवारण करनेके अर्थ मैंने आपकी शरण लियी थी परंतु आज वे व्रतोपवासादिकके मेरे सब कष्ट निष्फल हुए ! आपकी कृपा कभी निष्फल नहीं होती है ! आपने औरोंको अक्षय सुख दिये हैं, मेरे लिये क्यों विपरीत कार्य हो रहा है ? क्या इससे आपकी अपकीर्ति न होगी।

इस प्रकार विलाप करती हुई सीमंतिनीने गंगामें आत्मसमर्पण करनेके लिये प्रवेश करना चाहा; परंतु राजाने शोकभरे मुखसे उसका समाधान करके रोका।

इंद्रसेनको सूचना कियी गयी। वह भी भार्यासहित पुत्रशोकसे दुःखित होता हुआ उस स्थानपर पहुंचा। इस समयके शोक और दुःखके दृश्यका वर्णन करना असम्भव है। दोनों राजा "हा! पुत्र! हा! तात!" कह कहकर शिर और छाती पीट पीट कर रोते थे और पृथ्वीपर लोटते थे। नगरके लोग भी जहां सुनते थे, तहां ही दुःखित होते थे, राजकन्याकी मृत्यु समीप ही दिखाई देती थी। उसने सहगमन करनेका निश्चय किया; परंतु जबलों लोथ न मिले यह कैसे हो सकता था? सब लोगोंने कहा, जबलों मृतकका शरीर न मिले, तबलों तुमको धैर्य रखना उचित है। प्रेतका पता नहीं! चंद्रसेन रोता पीटता अपने घरको गया और उसने पुत्रके शोकसे राज्यकार्य सब छोड़ दिया। उसके गोत्रियोंने कपटसे राज्य छीन लिया। उसकी स्त्रीको कारागृहमें डाल दिया। इन दोनोंको यह कोई बात पुत्रशोकसे अधिक कष्ट नहीं देती थी।

चित्रवर्माने कन्याको बहुत कुछ समझाया कि तुम हमारे पुत्रके स्थानपर हो एक वर्षलों वैधव्याचार करना उचित नहीं है, तब और कुछ विचार किया जायगा। कन्याने पिताका कहना स्वीकार किया। उसने सोमवारका व्रत खंडित नहीं होने दिया था। वह रात दिन शिवजीका ध्यान करती रही।

इधर राजकुमार गंगामें डूबकर पातालमें पहुंचा, नागलोककी स्त्रियां नदीके तीरपर आई थीं। राजपुत्रको सुस्वरूप देखकर अपने घर ले गयीं। वे कहतीं थीं कि "हमने यह एक रत्न पाया है।" उसको उन्होंने अमृत पिलाया। कन्याओंने उसको ले जाकर नागोंके राजा तक्षकके सामने उपस्थित किया।

पाताल नगरकी रचना इंद्रभवनके समान बड़ी ही अद्भुत थी। बिजलीके समान चमकने वाले रत्नोंसे देदीप्यमान अटारियाँ चंद्रकी कांतिके समान सुशोभित भूमि दिखाई देतीं थी।

राजकुमार जब राजाकी सभामें पहुंचा तो देखता है कि सभागृह बड़ाही विशाल और सुशोभित है। परंतु उसमें सब सभासद सर्पकी

आकृति वाले थे। रत्नजड़ित एक उच्च सिंहासनपर सुवर्णकी सी कांतिवाले, सूर्यके समान तेजस्वी, पीतांबर पहिने हुए, रत्नोंके मुकुट धारण किये हुए, पन्नगोंके राजा तक्षक विराजमान हैं, जिसके एक सहस्रफण हैं। सभामें अनेक सभासद सौ सौ फणोंके भी उसी प्रकारके शरीर, कांति वाले और वस्त्र भूषणादि धारण किये हुए बैठे हैं। सहस्रों रूपलावण्यसंपन्न, तरुण नाग कन्याएं, राजाकी सेवा कर रही हैं। राजकुमारने तक्षकको दंडवत् प्रणाम किया। कन्याओंने राजासे कहा, नदीमें बहता हुआ देख, इसको हम आपके पास लाई हैं। राजाके पूछनेपर राजकुमारने अपना नाम ग्राम कुलादिकका परिचय देकर सब वृत्तांत कहा। फिर प्रार्थना कियी कि मेरे पूर्व सुकृतोंके फलोंका उदय हुआ है, जिससे श्रीमान्‌के चरणोंके दर्शनका लाभ हुआ। अब मेरा जीवन सुफल हुआ।

इस प्रकार करुणावचन सुनकर राजा संतुष्ट हुए। उन्होंने कहा, तुम डरो नहीं, तुम बहुत शुद्ध हो, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ हूं, अब तुम यह बताओ कि तुम्हारे घरपर किस देवताकी उपासना कियी जाती है। ज्योंही राजपुत्रने शिवजीकी उपासना करनेका सम्प्रदाय होना कहा, राजा बहुत संतुष्ट हुआ। उन्होंने राजपुत्रको आलिंगन देकर कहा, यह राज्य मैं तुमको देता हूं, सो ग्रहण करो, इस लोकमें जितने भर रत्न हैं, उन सबके तुम स्वामी हो, हमारे नगरकी रचना ऐसी अनुपम है, जिसको देखकर तुम सुखी रहोगे। हमारे लोकमें कल्प वृक्ष है और अमृतसे तड़ाग, बावली और पुष्कर भरे हैं, पानीके समान अमृत काममें लाया जाता है, दूसरोंको यह देखनेके लिये भी नहीं मिल सकता है। यहांके निवासियोंको मृत्युका भय नहीं रहता है न रोगादि पीड़ाका भय है। ऐसा नगर कहीं नहीं है। यहां तुम सुखसे निवास करो।

राजपुत्र ने प्रार्थना कियी कि हे स्वामी! मैं अपने पिताका एक ही पुत्र हूँ और मेरी चौदह वर्षकी तरुण भार्या है, जो सर्वकाल शिवजी की आराधना किया करती है। थोड़ा ही काल हुआ कि मेरा विवाह हुआ है। वह निःशंय मेरे विरहसे प्राण छोड़ देगी। मेरा अंतःकरण उसमें तल्लीन हो रहा है, मैं फिर किसी प्रकार अपने माता पिताके चरणोंको पाऊं तो मैं समझूंगा कि सब कुछ पा गया। मुझे नदीमें

डूबा हुआ जान माता पिता दुःख कर रहे होंगे। आपके चरणोंका दर्शन पाके मैं कृतार्थ हुआ। आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा कियी है।

तक्षकने उसको यथेच्छ अमृत पिला दिया। असंख्य बहुमूल्य रत्न, अनेक सुन्दर स्त्रियां, कल्पवृक्षके फल, बहुमूल्य घोडे आदि वाहन, चतुरंग सेना सहित देकर नागपुत्रोंको साथमें कर बिदा किया और कहा कि जिस समय तुमको कोई संकट पडे, मुझको स्मरण करना तुम्हारे सब संकट दूर कर दिये जावेंगे। अब राजपुत्र जहां डूबा था उसी स्थानपर पहुंचा दिया गया।

उस दिन सोमवार था। सीमन्तिनी उसी स्थानपर सखियों सहित स्नान करने गई थी। पानीसे एक सुस्वरूप और मनोहर सूर्यकी जैसी कांति वाला, दिव्य सुगंधित वस्तु धारण किये हुए पुरुष, जिसके वस्त्रों की सुगंधि दसदस योजनोंलों जाती थी, निकलता हुआ देख, सीमंतिनीने आश्चर्य किया। उसने जाना कि कोई पुरुषरूपधारी राक्षस है। उसने कहा कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुरुषको मैंने कभी देखा है, इसका स्वरूप मेरे पतिके सदृश दिखाई देता है। वह डरती डरती और रुक रुककर उसके स्वरूपको निहारती थी।

राजपुत्रने भी उसको देखके पहिचाना कि यह मेरी प्राणप्रिया है। उसके गलेमें न तो कंठसूत्र है, न मोतियोंका हार, या अन्य कोई आभूषण, और सौभाग्य चिन्ह भी नहीं है। वह चित्तमें व्याकुलसी दिखाई देती थी। परंतु उसके स्वरूप लावण्यसे विश्वास कर लिया कि निःसंशय वही है।

सीमंतिनी अपने पतिके सदृश रूपवान् देख, पतिका स्मरण करके व्याकुल और मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़ी।

राज पुत्र घोडेपरसे उतरकर तीरपर बैठ गया। अपनी प्रियाकी यह दशा देख, अपना परिचय देनेसे पहिले उसकी सखियोंसे उसने उसका वृतान्त पूछा। उन्होंने वही कहा जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है।

राजपुत्रने अपना वास्तविक नाम छिपाकर अपनेको सिद्ध मुनि प्रसिद्ध किया और सीमंतिनीको सचेत करके कहाः-मैंने तुम्हारे पतिको प्रत्यक्ष देखा है, मैं ईश्वरकी शपथ खाकर सच कहता हूं कि तुम अपने व्रतके पुण्यसे शीघ्र ही अपने पतिको देखोगी। चिंता न करो,

वह मेरा परम मित्र है ।

सीमंतिनीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी, उसने राजपुत्र की मधुर भाषणकी ध्वनिसे स्वरूपादिके सब चिन्होंसे जान लिया कि निःसंशय यह मेरे प्राणोंका स्वामि है, परंतु फिर वह संशयके चक्रमें पड़ी। उसने मनमें कहा कि जो पुरुष नदीमें डूब गया, तीन वर्ष बीत गये, वह अब किस प्रकार प्रकट हो सकता है ? ऐसा कोई उदाहरण आज पर्यन्त सुननेमें नहीं आया कि मृतक पुरुष इतने काल बीत जाने पर भी प्रकट हुआ हो। क्या मैं स्वप्न देख रही हूं ? यह कोई धूर्त पुरुष तो नहीं है ? या कोई कपट वेषधारी राक्षस, यक्ष वा गंधर्व है ? फिर कहा शिवजीकी पूजाका यह फल तो नहीं है ? कदाचित् भगवान् गिरिजानाथने प्रत्यक्ष स्वामी हीको भेज दिया है ।

राजकुमार घोड़ेपर आरूढ होकर सैन्य और नागपुत्रों सहित अपने नगरको गया और वैरियोंसे राज्य छीनकर अपने पिताको सौंपा- माता पिताको अपने अस्तित्वका विश्वास दिलाया, अपने इष्टमित्रादिकों से भेंट करके नागपुत्रोंका सम्मान कराया। फिर अपने पितासे अपने पातालमें पहुंचनेका वृत्तांत कहा, सर्वत्र आनंद छा गया।

राजा चित्रवर्माको संदेश भेजा गया और वह सीमंतिनीको साथमें लेकर सैन्य परिवार सहित इंद्रसेनके नगरमें पहुंचे। इस समय उस नगरमें जैसी कुछ आनंदकी वृष्टि हो रही थी, सो कल्पना के बाहर है।

चित्रांगदने अपनी प्राणेश्वरीको पातालसे पाये हुए अखिल मूल्य-वान् पदार्थ भेंट किये। अब सीमंतिनीके सुख और वैभवकी क्या बात है, ऐसे तीनों लोकोंमें किसीको प्राप्त नहीं है, उन्होंने दस सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्यैश्वर्यका उपभोग किया।

श्रीगुरुने कहा ऐसी सोमवार व्रतकी महिमा है, सो तुम इस व्रत-का आचरण अवश्य करना। स्वामीकी आज्ञाके अनुसार उन्होंने व्रत करना आरंभ किया। दम्पती अपने घरको गये। उनके माता पिताको बहुत आनंद हुआ। उनके पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे। प्रतिवर्ष वे श्रीगुरुके दर्शन-को जाया करते थे।

अध्याय ३६

ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण और उसकी परान्नलोभिनी स्त्री।

सिद्ध मुनिने कहा श्रीगुरुके गाणगापुरमें निवास करते हुए उनकी अपार महिमा बढी। गणगापुरमें एक ब्राह्मण वेदपाठी, विरक्त और कर्म-मार्गी रहता था। वह कभी प्रतिग्रह नहीं लेता था न परान्न भोजन और मिथ्या भाषण करता था। किसीसे वाद विवाद भी नहीं करता था। वह नित्य शुष्क भिक्षा करके अपना निर्वाह करता था, तो भी अतिथि अभ्यागतोंको भोजन कराये बिना आप अन्न ग्रहण नहीं करता था। वहांपर असंख्य पुरुष श्रीगुरुकी आराधना करनेके लिये आया करते थे, जो सहस्रों ब्राह्मणोंको नानाविध पक्वानोंका भोजन कराया करते थे। गाँवके अन्य सब ब्राह्मण सुखसे जाकर भोजन करते थे और पकान्नोंकी प्रशंसा किया करते थे।

ब्राह्मणकी स्त्री भोजन और पकानोंकी प्रशंसा सुन सुनकर मन ही मनमें कुढ़ा करती थी। वह कहती थी कि हे परमेश्वर! मैं कैसी भाग्यहीना हूं, स्वप्नमें भी मुझे कभी ऐसा अन्न दिखाई नहीं देता! मैं नहीं जानती कि पूर्व जन्ममें कौनसा पाप किया था; जिससे ऐसा दरिद्र पति मिला है कि सर्वकाल कष्ट भोग रही हूं। वे स्त्रियाँ बड़ी भाग्यवती हैं, उन्होंने निःसंशय वड़े बड़े सुकृत किये हैं, जिनके प्रभाव-से नित्य मिष्टान्न भोजन करती हैं।

एक दिन एक महा धनी विप्र महालय श्राद्ध करनेके अर्थ आया। उसने ब्राह्मणोंको सपत्नीक आमंत्रण दिया। ब्राह्मणी दौड़कर अपने पतिके पास गयी और आमंत्रणका वृत्तान्त निवेदन करके कहने लगी कि स्वामी वहाँपर नानाविध व्यंजन बनाये जायँगे; वस्त्र और अपार दक्षिणा भी मिलेगी। इसलिये निमंत्रण अवश्य स्वीकारना चाहिये और यदि आपकी इच्छा न हो तो मुझे अवश्य ही आज्ञा दीजिये। इस प्रकार-के अलौलिक भोजन करनेकी मेरी बहुत आकांक्षा है।

ब्राह्मणने कहा कि तुम सुख पूर्वक जाकर भोजन करो।

स्त्री दौड़कर उस पुरुषके पास गयी, जिसने निमंत्रण भेजा था। धनीने कहा कि हमारे यहां सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाता है,

यदि तुम अपने स्वामी सहित आ सकती हो तो अवश्य आओ। यह सुन वह अंतःकरणमें बहुत खिन्न हुई, क्योंकि वह जानती थी कि पति यह बात स्वीकार नहीं करेगा। उसने मनमें कहा क्या करना चाहिये? कुछ समयलों बिचार करनेपर उसको स्मरण हुआ कि श्रीगुरु नृसिंह सरस्वती सब लोगोंके मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। इसलिये उनकी सेवामें उपस्थित होना चाहिये।

ब्राह्मणीने स्वामीके चरणोंमें दंडवत् प्रणाम करके प्रार्थना कियी कि हे भगवन्! मैंने आजलों कभी पक्वान्नोंका भोजन नहीं किया। कृपा करके मेरे पतिको समझा दीजिये कि वह आज उस ब्राह्मणके यहां भोजन करनेको जावें। वह कभी परान्न भोजन नहीं करते और उनके कारणसे मैं दुर्दैविनी भी उत्तमोत्तम पक्वान्नोंके भोजनसे वञ्चित रहती हूं।

श्रीगुरुने हंसकरके उसके पतिको बुलानेकी आज्ञा दियी। जब पति आया तो, उससे कहा कि तुमको अवश्य भोजन करनेके लिये जाना चाहिये; क्योंकि तुम्हारी स्त्रीकी इच्छा षड्रस भोजन की है, वह अवश्य पूर्ण करनी चाहिये। कुलीन स्त्रीको सर्वकाल दुश्चित अंतःकरणसे रहने देना उचित नहीं है।

ब्राह्मणने हाथ जोड़कर प्रार्थना कियी कि स्वामीकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। ब्राह्मणीको बहुत आनंद हुआ और दोनों भोजनको गये।

भोजन करते समय ब्राह्मणीको उसके साथ श्वान शूकरादि भोजन करते हुए दिखाई दिये; जिनकी घृणा ब्राह्मणीसे सही नहीं गयी। वह आप अन्य सहभोजी ब्राह्मणोंको भोजन करते हुए छोड़, उठ खड़ी हुई और अपने पतिको सब वृतान्त सुना गयी। फिर दोनों स्त्री पुरुष स्वामीके चरणोंमें उपस्थित हुए।

स्वामीने ब्राह्मणीसे कहा कि तुम सर्वकाल अपने पतिका अंतःकरण दुखाया करती थी। अब तो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ न? क्यों? परान्न भोजनमें कैसा सुख है।

स्त्रीने स्वामीके चरणोंमें गिरकर अपराध क्षमा करनेके लिये प्रार्थना कियी।

ब्राह्मणने प्रार्थना कियी कि अब मेरे लिये क्या आज्ञा होती है? मेरा व्रत भंग हुआ। मैं कभी परान्न भोजन नहीं करता था। इस दुष्टा

वैरिणीके कारणसे मैं परान्न भोजनसे दूषित हुआ।

स्वामीने हास्य करके कहा कि तुम्हारी पत्नीकी इच्छा पूर्ण हो गयी, यह अच्छा हुआ; अब वह कभी परान्नकी इच्छा नहीं करेगी और सर्वकाल तुम्हारी आज्ञाके अनुसार व्यवहार करती रहेगी। तुम कुछ चिंता न करो। तुम्हारे सिर कोई दोष नहीं है। मैं तुमसे एक धर्म कहता हूं। किसी ब्राह्मणका कोई देव या पितृकार्य ब्राह्मणके बिना रुका हुआ हो, उसके यहां तुमको अवश्य भोजन करना चाहिये। यदि ऐसे अवसरपर तुम न जाओगे तो अपार दोषके भागी हो ओगे।

परान्न भोजनका विधि-निषेध।

ब्राह्मणने कहा कि स्वामी! किसके घरपर भोजन करना योग्य है और किसके घर अयोग्य है—यह कृपा करके कहिये :—

स्वामीने कहा: "गुरु, शिष्य, वेदपाठी ब्राह्मण, मामा, ससुर, सहोदर, साधुजन इनके यहां भोजन करना चाहिये। जिस ब्राह्मणका कार्य ब्राह्मणके बिना रुका हुआ हो, उसके घर भोजन करके गायत्रीका जप करनेसे दोषकी निवृत्ति हो जाती है। जो दुष्टजन माता पितासे अपनी सेवा कराते हों और जो लोभी हों, पुत्र कलत्रादिकको कष्ट देकर जो ब्राह्मणोंको दान देते हों, गर्विष्ठ, चित्रिक, शस्त्रधारी, मल्लयुद्ध करने वाले, वीणा बजाने वाले, याचक वृत्तिके द्वारा उदर पोषण करने वाले, आत्मस्तुति करने वाले, दूसरोंकी निंदा करने वाले, अनेक पुरुष मिलकरके एक अन्न बनाकर पृथक् पृथक् वैश्वदेव न करके भोजन करने वाले, ऐसा गुरु जिसके उपदेशसे उसके शिष्य दुष्ट व्यवसायोंसे निर्वाह करते हों, क्रोधी, वह ब्राह्मण जिसने अपनी भार्याको छोड़ दिया हो, धनका अभिमान करने वाले, निर्दयी, व्यभिचारी, दांभिक, दुराचारी, पुत्र या पिताको छोड़कर पृथक् रहनेवाले, स्त्रीजित, सुनारोंके व्यवसायसे निर्वाह करने वाले, झूठ बोलने वाले, चोर, राजसेवक, लुहार, बढई व्यवसायसे निर्वाह करनेवाले, धोबीका व्यवसाय करनेवाले, रोगी, मद्य पान करनेवाले, वेश्यागामी, द्वारपाल, वाणिज्य करने वाले, शूद्रों के घर द्रव्य लेकर वेद पठन करनेवाले, घोड़े बेंचने वाले, भगवद्भजन, सायं संध्या, दान, पितृकार्य, पंचमहायज्ञ न करने वाले, कार्य सिद्धिके अर्थ

द्रव्य लेकर जप करने वाले, ऋण देकर ऋणीपर उपकार जताने वाले, विश्वासघात करने वाले, पक्षपात करके अन्याय करने वाले, अपना धर्म छोड़कर दुष्टाचरण करने वाले, विद्वान् ब्राह्मणोंसे द्वेष करने वाले, कुलके देवता, माता, पिता, गुरुको छोड़ देने वाले, गाय ब्राह्मण स्वस्त्रीको मार डालने वाले, आशायुक्त होकर अन्नकष्ट करके किसीके द्वारपर बैठने वाले, दान देनेसे रोकने वाले, कन्या और जामातासे द्वेष करने वाले, निपुत्रित, अपने घरपर पंच महायज्ञ करके दूसरोंके घर पर भोजन करने वाले, दूसरोंके घरपर पाक बनाने वाले, अपने घरके अन्नकी निन्दा करके पराम्नकी स्तुति करने वाले, सब जातियोंको अपने शरणमें रखने वाले, गृहस्थी होकर दान धर्म न करके अद्वैत धर्म प्रतिपादन करने वाले, इन ब्राह्मणोंके घर भोजन न करना चाहिये। मानस वृत्तिसे उदर निर्वाह करनेवालेके घर भोजन करनेवाला अंधा और बहिरा होता है। वही, शरीर, स्मृति, मेधा, घृति, और शक्तिसे हीन हो जाता है। दूसरोंके घरपर निवास करके उनके यहां भोजन करने वाला, यजमानके पापोंका अधिकारी हो जाता है, क्योंकि उसके पुण्य का अधिकारी उसका यजमान हो जाता है। भूमि, सुवर्ण, गाय, हाथी घोड़ा, रत्न, इनका दान लेनेसे जो दोष नहीं होता है, वह उसके घरपर भोजन करनेसे होता है, इस प्रकारके पराम्न भोजन करनेसे जितना दोष होता है, उतना ही परस्त्री का संग करनेसे होता है। दूसरोंके घरपर निवास करने वालेकी लक्ष्मी तुरन्त चली जाती है। अमावस्याके दिन परान्न भोजन करनेसे एक महीनेका पुण्य क्षीण होता है। बिना आमंत्रणके भोजनको जानेसे बहुत दोष होता है। कन्याको जबलों पुत्र उत्पन्न न हो, तबलों उसके घरपर भोजन न करना चाहिये। पुत्र उत्पन्न होनेपर सुखसे करे। ग्रहण में दान न लेना चाहिये। जन्म अथवा मृत्यु सूतक वालेके घरपर भोजन न करना चाहिये।"

स्वामी कहते हैं कि "ब्राह्मणके धर्मका पूरा पूरा आचरण कौन कर सकता है? जो करता है, वह कभी दीनता नहीं पाता, सब देवता अणिमादि सिद्धियां कामधेनु सहित उसकी आज्ञामें रहती हैं। ब्राह्मण मदोन्मत्त हो गये, उन्होंने धर्म कर्म छोड़ दिये, इसीसे वे दरिद्र हो गये।"

ब्राह्मणने प्रार्थना कियी कि हे भगवन्! मुझे ब्राह्मणके आचार और धर्म बतलाइये:—

ब्राह्मणके आचार धर्म

स्वामीने कहा कि पराशर ऋषिने अन्य सब ऋषियोंसे जो आचार धर्म कहे हैं, सो मैं तुमसे कहता हूं:—"ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर श्रीगुरु, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, नवग्रह, सनतकुमारादि पुण्यश्लोक, नारद, तुम्बुरु, सिद्ध, योगीश्वर, सातों समुद्रों, सातों पर्वतों, सातों पितरों, सातों ऋषियों, सातों द्वीपों, और सातों भुवनोंका स्मरण, नमन करे, फिर शय्यासे उठकर दो आचमन करके लघुशंका करे। तब शौचाचमन और मानसिक स्नान करके शुद्ध आसनपर बैठकर गायत्रीके अतिरिक्त अन्य सब मंत्रोंका अरुणोदय होने पर्यन्त जप करे। अरुणोदय होनेपर बहिर्दिशाको जाय। उससे निवृत्त होनेपर कुल्ला करके शुद्ध स्थानपर बैठ कुल देवताका स्मरण करे, फिर आचमन करके २४ नामोंका उच्चारण करके पुनः आचमन करे, इसके पीछे दंत धावन करे। पश्चात् बारह कुल्ला करके स्नान करे। प्रातःकालमें नित्य स्नान करनेसे तेज, आयुष्य और प्रज्ञाकी वृद्धि होती है; सौभाग्य, सुख और आनन्द मिलता है; सब देवता वशमें होते हैं; दुःस्वप्न, दारिद्र्य, चिंता, और शोक दूर हो जाते हैं, यति, तापसी, सन्यासीको त्रिकाल स्नान करना चाहिये, ब्रह्मचारी एक ही बार करे। गृहस्थ और वानप्रस्थको विशेष करके दो बार स्नान करना चाहिये। प्रातःकालमें और मध्यान्हमें संकटके समय अथवा जहां निर्मल जल न मिल सके अग्नि भस्म अथवा वायुसे भी विधिपूर्वक स्नान किया जा सकता है। भक्तियुक्त होकर गुरु, माता, पिताके दर्शन करने और उनके चरणोंका तीर्थ देहपर प्रोक्षण करनेसे तीर्थ स्नानका फल मिलता है। चांडालके स्पर्श करने पर जलस्नान बिना शुद्धि नहीं होती। संकटके समय उपस्नान करनेसे शुद्धि हो सकती है। शूद्रादिकोंके स्पर्श करनेपर उपस्नान करना बस होगा। प्रातःस्नान जहांलों हो सके शीतोदकसे करना उचित है। शरीर अशक्त हो तो उष्णोदकसे करना चाहिये।

पुत्रोत्साह, संक्रांति, श्राद्धकाल, अमावास्या, पूर्णिमा, और मृत्यु के दिनमें उष्णोदकसे स्नान न करना चाहिये।

... विधिके अनुसार स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहिने । फिर मानस स्नान करके विधियुक्त भस्म धारण करे। भस्म न मिळे तो गोपीचंदन, उसके भी अभावमें गङ्गाकी मृत्तिका ले सकते हैं । विवाहादि शुभ दिनोंमें, देवकृत्य और श्राद्धके दिन, सूतकके दिन और अभ्यंग स्नान करनेपर गोपीचंदन वर्ज्य है ।

भस्म धारण करनेके पीछे प्रातः सन्ध्या करे। नक्षत्रोंके लुप्त होनेसे पहिले सन्ध्याका आरंभ करके सूर्योदय होनेलों जप करना चाहिये । ठीक सूर्योदय होते हुएसें अर्घ्य दे। सूर्योदयसे पहिले अर्घ्य देना व्यर्थ है। अर्घ्य देनेका कारण यह है कि तीस कोटि राक्षस नित्य सूर्यके साथ युद्ध करते हैं। देवताओंको चिंता होती है कि कहीं सूर्यनारायण पराजित न हो जाँय, क्योंकि यदि सूर्यनारायण पराजित हो जायँगे तो उदयास्त बंद हो जायगा और सृष्टिके यज्ञादि सब कार्य बंद हो जायँगे एवं देवताओंको उपवास करने पड़ेंगे । इसलिये अर्घ्यदान करनेका नियम किया गया । नियमित समयपर जो अर्घ्य दिये जाते हैं वे वज्रायुध हो कर प्रति दिन दैत्योंका विनाश करते हैं ।

गायत्री मंत्रका जप एक चित्तसे करना चाहिये। "मंत्र" शब्दके दो अक्षर है "मं" और "त्र" ये पापका नाश करते हैं। "मं" का अर्थ मन और "त्र" का अर्थ प्राण है अर्थात् मन और प्राण दोनोंको एकत्र करके जप करना चाहिये। जप शब्दके भी दो अक्षर हैं। "ज" "प" 'ज' का अर्थ जन्मका विच्छेद करके, 'प' का पापको दूरकर। चारो वेदोंका मूल एक गायत्री मंत्र सब पापोंका विनाश करने वाला है। उसके जप करनेसे वेदोंके पाठ करनेका फल मिलता है। जो मनुष्य ऐसे मंत्रका जप न करे, उसका जन्म श्वान शूकरके जन्मसा व्यर्थ जाता है ।

पानीमें बैठकर जप नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचारी या गृहस्थ १०८ जप करे। वानप्रस्थ और सन्यासी १००० जप करे। संकटके समय २८ जप करे तो कुछ हानि नहीं । अशक्त पुरुष १० जप करे ।

मनही मन जप करना उत्तम पक्ष है, ध्वनि रहित मंत्रोच्चार मध्यम पक्ष है, शब्दोच्चार प्रगट होना कनिष्ठ पक्ष है । जप करते समय शूद्रादिकसे संभाषण नहीं करना चाहिये ।

संध्या करनेके पीछे विधिके अनुसार औपासन कर्म करे । फिर माध्यान्ह समयमें ब्रह्मयज्ञ पूर्वक देव-ऋषि-मनुष्य-पितृ-तर्पण करे ।"

अध्याय ३७

श्रीगुरुने कहा कि जैसे स्नान संध्यादि कर्म ब्राह्मणोंके लिये आवश्यक हैं, तैसे ही देवपूजा भी आवश्यक है। जहाँलों शक्य हो, त्रिकाल पूजा करनी चाहिये, न बन पड़े तो एक बार प्रातःकालमें करे। यह भी न बन पडे तो मध्यान्ह अथवा भोजनके समयमें करके सायंकालमें मंत्रयुक्त पुष्प अर्पण करे। जो पुरुष देव पूजा नहीं करता, वह अंतमें यमपुरको जाकर नरक भोग करता है।

देव पूजा के छः प्रकार हैं:-जलमें, अग्निमें, मनमें (मानसपूजा) सूर्यमें, स्थंडिलमें, और प्रतिमामें नारायणकी कल्पना करके आराधना करे। ज्ञानीजन यज्ञकी पूजा करते हैं; वह न बन सके तो गाय ब्राह्मण और गुरुकी पूजा करनेसे भी भगवान् दत्तात्रेय प्रसन्न होते हैं। देव पूजा करनेसे सर्व अभीष्ट सिद्ध होते हैं और मनुष्य चारों पदार्थ पाता है।

कलि कालके अज्ञानी पुरुषोंका उद्धार करनेके अर्थ परमेश्वरने शालिग्राम चक्र निर्माण किया है, उसका चरणामृत लेनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं।

प्रतिमाकी पूजाकी विधि गुरुसे पढ़कर गुरुकी आज्ञासे उसकी पूजा किया करे; अपने हाथसे लगाये हुए वृक्षोंके सुगन्धित पुष्प उत्तम पक्षके होते हैं; जंगली वृक्षोंके पुष्प मध्यम पक्षके और बाजार से मोल ले करके लाये हुए पुष्प अधम पक्षके होते हैं; श्वेत पुष्प उत्तम, रक्त मध्यम और पीले फूल अधम पक्षके होते हैं; काले और चित्र विचित्र रंगके पुष्प अधमसे भी अधम होते हैं। बासी, छिद्र-वाले, कीडोंके खाये हुए, पृथ्वीपर गिरे हुए पुष्प अग्राह्य हैं; कुंद, शाल्मली, धतूर, मदार, लाल कनेर, गिरिकर्णिका, निर्गुड, सेवगा, कैथ, करंज, अमर, कूष्मांड और काँटे वाले वृक्षोंके फूल विष्णुके लिये वर्ज्य हैं; कैथ, केवडा, कालफूल, कृष्ण, पिंगल, करंज, बकुली, डाडिंब, निबांदि पांचजातिके फूल, माधवी, आम, कुंद, यूथिका जातिके और लालरंगके फूल महादेवको वर्ज्य हैं; तुलसी गणेशजीको और दूर्वा देवीको अप्रिय है, गणेशजीको दूर्वा अवश्य चाहिये।

देवपूजाके पश्चात् अन्न संस्कृतिके अर्थ विधिके अनुसार

वैश्वदेव करना चाहिये । जहांलों हो सके वैश्वदेव अन्नसे करना चाहिये; अन्नके अभावमें चावल ग्राह्य हैं । वैश्वदेवके समयमें कोई अतिथि आवे तो उसकी पूजा और सत्कार अवश्य करना चाहिये चाहे वह चोर हो चांडाल हो अथवा सत्पात्र हो । प्रवासमें जहां अन्न और चावल अनुकूल न हों, औषधि, घृत, दही, दूध, कंद, मूल फल इनमेंसे जो अनुकूल हो उसीसे वैश्वदेव करना चाहिये, जो ब्राह्मण वैश्वदेव नहीं करे, उसको चांद्रायण व्रत करना चाहिये । वैश्वदेव न कर सके परंतु अतिथिको भिक्षा दे सके उसको वैश्वदेव करनेके समान फल मिलता है । यमराजने अपने दूतोंसे कहा कि विष्णु भगवान्‌की आज्ञा है कि जो मनुष्य वैश्वदेव नित्य करता हो उसके घरपर तुम कभी न जाना ।

वैश्वदेव करनेके पीछे अतिथिकी मार्गप्रतीक्षा करनी चाहिये, और यदि उस समय कोई अतिथि आ जाय तो भक्तिसे उसकी पूजा करके भोजन करावे, वैश्वदेवके समय अतिथिकी जो पूजा कियी जाती है, वह इन्द्रादिक सब देवता, पितृ, अग्नि, वायु शिव और ब्रह्मदेवको पहुंचती है ।

अतिथिपूजनके पश्चात् विधिके अनुसार भोजन करे । भोजनके समय पङ्क्ति प्रपंच न करे; प्रथम मृदु अन्नका भोजन करे । तीक्ष्ण और कठिन अन्नका पहिले ही भोजन न करे; भोजनके अन्तमें गरिष्ठान्नका भोजन न करे; जितना मुँहमें समा जाय उतना ही बड़ा ग्रास हाथमें ले, अधिक बड़े ग्रासके लेनेसे उच्छिष्ट भोजन करनेका दोष होता है । इष्ट मित्रोंके सहित एक पात्रमें भोजन न करे; कुमारिका अथवा जिसका व्रतबंध नहीं हुआ है, उसके लिये दोष नहीं है ।

भोजन करनेपर कुछ उच्छिष्टान्न पात्रमें स्त्रीके लिये अवश्य छोड़ना चाहिये और वह स्त्रीको अवश्य भोजन करना चाहिये । अन्न न छोड़ना अथवा स्त्रीका उसको ग्रहण न करना दोनों दोष है ।

भोजनके पश्चात् तांबूलादि भक्षण करे । रजस्वला, विधवा और ब्रह्मचारीको तांबूल खानेसे सुरापानका दोष होता है ।

संध्या कालके समय सायं संध्या करनी चाहिये उसमें सूर्य जब अर्धमंडलमें पहुंचे, उस समय अर्घ्य देना चाहिये ।

सायंसंध्याके पश्चात् फिर औपासन कर्म करे । फिर रात्रिका

भोजन करे। रात्रिका भोजन जहाँलों हो सके दूधमिश्रित होना चाहिये।

भोजनके पीछें एक प्रहरलों वेदाभ्यास करके शयन करे। शयनके लिये औदुम्बर, अश्वत्थ, वट, वा जामुनकी लकडीकी अथवा मरे हुए हाथीके दांतकी खटिया न होनी चाहिये; शयनके समय उत्तर दिशाकी ओर मस्तक न करे, शयन करते समय रात्रिसूक्तका पाठ करे, भगवान् विष्णु, अगस्त्य मुनि, आस्तिक, कपिल और नागका स्मरण करे। जीर्ण देवालयमें, एक वृक्षके नीचे, चौहट्टेमें, शिवालयमें, उस-स्थानमें जहां माता पिता निद्रा करते हों, विमौरके समीप, तालके बांधपर, नदीके तीरपर, भयंकर स्थानपर, जहांसे वस्ती दूर हो, और धान्यकी ढेरपर शयन न करे। गीले कपडे पहिन कर अथवा नग्नदेह-से न सोनां चाहिये, जहां वृद्ध पुरुष नीचे सोये हों, तहां खटियापर न सोवे; पूर्व रात्रिमें अथवा पिछली रात्रिमें न सोवे। रजस्वला स्त्रीके समीप चार दिन पर्यन्त न सोवे; शयनके स्थानपर दीपक न रखे; जवलों स्त्री रजोधर्म को न पहुंचे, उसके समीप शयन न करे न उससे संग करे; स्त्री रजस्वला हुई हो तो ग्रामांतरको न जाय। परन्तु वृद्ध, वंध्या अथवा ऐसी स्त्री रजस्वला हो जिसके पुत्र नहीं जीते हों तो ग्रामान्तर जानेमें दोष नहीं है; ऋतुके चौथे दिन स्त्रीसंग करनेसे अल्पायुषी पुत्र होता है, पांचवे दिन स्त्रीसंग करनेसे कन्या उत्पन्न होती है। छठे दिनसे पुत्र होता है।

पराशर ऋषिने कहा कि विधियुक्त आचार करनेसे मनुष्य किसी प्रकारका कष्ट नहीं पाता है; उस मनुष्यकी देवता भी पूजा करते हैं और वह सब प्रकारके ऐश्वर्यका उपभोग कर सुखसे जन्म बिताता है।

स्वामीके मुँहसे इसप्रकारके आचार धर्म सुनकर ब्राह्मण कृतार्थ हुआ, उसने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रखके अनेक प्रकारसे स्तवन किया।

स्वामीने प्रसन्न होकर कहा " अब तुम इसी प्रकारसे व्यवहार किया करो। "

ब्राह्मण संतुष्ट होकर अपने घरको गया और गुरुकी आज्ञाके अनुसार आचरण करने लगा, जिससे उसको ऐश्वर्य प्राप्त हुए।

अध्याय ३८

भास्कर शर्माकी ओरसे स्वामीकी समाराधना।

सिद्ध मुनिने कहा कि नित्य देशांतरसे अनेक भक्तजन श्रीगुरुकी आराधना करनेके अर्थ गाणगापुरमें आया करते हैं, कोई दिन ऐसा नहीं जाता है जिस दिन कोई न आवे; जो आता स्वामीकी पूजा करके यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन अवश्य कराता था।

एक दिन काश्यप गोत्रका एक अति दुर्बल द्रव्यहीन ब्राह्मण, जिसका नाम भास्कर था, स्वामीके दर्शन और पूजा करनेकी इच्छासे मठमें आया, वह अपने साथमें तीन मनुष्यके भोजन करने योग्य अन्नकी सामग्री लाया था। भक्तिपूर्वक स्वामीके दर्शन और स्तवन करके संतुष्ट हुआ। उस दिन अन्य भक्तकी ओरसे पूजाका समारंभ हो रहा था, भोजनके समय ब्राह्मणोंने भास्कर शर्मासे भोजन करनेकी प्रार्थना कियी। तब ब्राह्मणने अपने साथकी सामग्रीकी गठरी मठमें छोड़ पङ्क्तिमें भोजन किया। इतनेमें रात हो गयी। रातमें गठरी अपने सिरहाने रखके वह सोगया।

नित्य कोई न कोई द्रव्यवान् यात्री आ जाता और सहस्रों रुपये व्यय करके आराधना करता एवम् उसीकी पङ्क्तिमें भास्कर शर्म्मा नित्य भोजन करता, रात्रिमें उसी नियमसे गठरी सिरहाने रखके सो रहता। परंतु उसको अपनी ओरसे स्वामीकी सेवा करनेका अवसर नहीं मिलता था। वह ऐसे अवसरकी खोजमें था कि जिस दिन अन्य कोई भक्त न आवे तो उस दिन वह अपनी ओरसे आराधना करे। क्योंकि उसका यह अनुमान था कि यदि अन्य बड़े बड़े द्रव्यवान् भक्तोंकी उपस्थितिमें मैं अपनी ओरसे आराधना करनेकी अपनी इच्छा प्रगट करूं, तो कदाचित् रोक दिया जाऊं। अपनी इच्छाके अनुसार वह अवसर नहीं पा सका; मठमें सर्वकाल निवास करने वाले सब ब्राह्मण उसका उपहास किया करते थे। वे कहते थे कि देखो! देखो! यह गुरुभक्त स्वामीकी आराधना करनेके अर्थ आये हैं, क्या इतनी सामग्री एक पुरुषकी उदरपूर्तिके लिये पर्य्याप्त हो सकेगी? स्वामीके शिष्य बहुत हैं, उनके लिये इससे क्या हो सकता है? क्या तुम यह

कहते हुए लजाते नहीं ? " कि स्वामीकी आराधना किया चाहता हूं" एकने कहा कि तुम अपनी सामग्री मुझे न दे दो ! तुम ग्राममें भिक्षा कर लेना।

अनेक:प्रकारसे ब्राह्मणके साथ ठठोली कियी जाती थी। परन्तु वह तो काया, वाचा और मनसे स्वामीका दास हो चुका था। उसपर उपहास और विनोदका क्या परिणाम हो सकता था ? तीन मास बीत गये और तब भी उसको अवसर नहीं मिला।

एक दिन नित्यके अनुसार सब ब्राह्मण उसका परिहास कर रहे थे; वे शब्द स्वामीके कानोंमें पहुंच गये।

भास्करसे स्वामीने कहा "आज मैं तुम्हारी ओरसे भोजन करना स्वीकार करता हूं। तुम शीघ्र पाक सिद्ध करो।" इस समय ब्राह्मणको जैसा आनंद हुआ। उसका वर्णन वह स्वयं नहीं कर सकता था। तुरंत वह दौड़कर बाजारको गया। वहांसे दो सेर घृत और दो भाजी, मूल्य देकर लाया, स्नान करके शुद्धतापूर्वक आटा, चावल आदि जो कुछ उसके पास था, उससे पाकका आरंभ किया।

ब्राह्मणका उपहास करनेवाले और न करनेवाले सब ब्राह्मणोंने, जो सर्वकाल आराधनाके षड्रसान्न भोजनकी लालसासे स्वामीके मठमें उपस्थित रहते थे, स्वामीसे प्रार्थना कियी कि आज तो हम लोगोंको अपने अपने घरपर भोजन करनेकी पारी है। इस दरिद्र ब्राह्मणके कारण से आज हमारे मिष्टान्न मारे गये। अब हमारे लिये क्या आज्ञा होती है ?

स्वामीने कहा कि घर जानेकी आवश्यकता नहीं है; यहीं भोजन करना। शीघ्र स्नान संध्यासे निवृत्त होकर आ जाओ।

ब्राह्मणोंने मनमें कल्पना कियी कि कदाचित् मठमें स्वामीकी संग्रह की हुई विपुल सामग्री होगी, उससे हम लोगोंको पाकनिष्पत्ति करनी होगी, इसीलिये स्वामीने शीघ्र आनेको कहा है।

ब्राह्मणलोग स्नानको गंगाजीपर गये, इधर स्वामीने भास्कर शर्मा से कहा कि शीघ्रतासे पाक सिद्ध करो, बहुतेरे ब्राह्मण भोजन करनेवाले हैं विलंब करनेसे रात्रि हो जायगी।

ब्राह्मण लोग अभी गंगाजीमें स्नान भी नहीं कर पाये थे कि इधर पाक सिद्ध हो गया। तब स्वामीने भास्करसे कहा कि ब्राह्मणोंको गंगाजी परसे बुला लाओ; ब्राह्मण दौड़कर गंगाजीपर गया और ब्राह्मणोंसे

हाथ जोड़कर बोला, कि आप लोगोंको स्वामीने शीघ्र बुलाया है ।

ब्राह्मणोंने कहा " हम लोगोंको पाक सिद्ध करनेमें देर होगी। इस लिये हमारी मार्ग प्रतीक्षा न करो, तुम स्वामीको भोजन कराके आप भी करो। हम अपना बनाते रहेंगे । "

भास्करने स्वामीसे कहा कि "वे लोग तो देरमें बनाने खानेको कहते हैं । " दीन भास्कर भी क्या जानता था कि इस ढाई सेर आंटा और चावलमें कौन कौन भोजन करेंगे ?

स्वामीने कहा कि " उनसे कहो कि मेरा नियम है सब ब्राह्मणोंके साथमें भोजन करूंगा "

भास्करने कहा कि कृपानाथ ! मेरे कहेसे वे नहीं आवेंगे । वे लोग मुझसे हंसी करते हैं, किसी अन्य शिष्यको आज्ञा हो, जिससे वे चले आवें ।

स्वामीने दूसरे शिष्यको भेजा । तब सब ब्राह्मण चले आये ।

स्वामीने सब ब्राह्मणोंको आज्ञा दियी कि आज भास्करकी ओरसे आराधना हुई है । सब लोग कुटुंब-परिवार-सहित यहां भोजन करो शीघ्र पत्तल परोसो ।

तीन ब्राह्मणोंके योग्य पाकमें सहस्रों प्राणियों-का भोजन ।

चार सहस्र पत्तलें डाली गयीं । श्रीगुरुकी आज्ञासे भास्कर शर्माने सब ब्राह्मणोंसे प्रार्थना कियी कि आज मेरी ओरसे समाराधना है। आप सब महाशय कुटुंब-परिवार-सहित भोजनके लिये कृपा कीजिये ।

एक ब्राह्मणने कहा "क्या खिलाओगे ? पाक तो वही ढाई सेर अन्न न ? क्या प्रति ब्राह्मण एक एक चावल पहुंच जायगा ? आमंत्रण देते हुए क्या तुम लजाते नहीं हो ? कुछ वृद्ध ब्राह्मणोंने कहा " ऐसा नहीं कहना चाहिये, कदाचित् स्वामी सुन लें। ब्राह्मण सब कार्य स्वामीकी आज्ञासे कर रहा है।" तब सब लोगोंने "ठीक ! ठीक !!" कहकर पत्तल परोसनेका उपक्रम किया ।

स्वामीकी आज्ञासे भास्करने पाक स्वामीके सम्मुख रखा; स्वामी ने अपने वस्त्रसे पाकको आच्छादित कर दिया और कमंडलुका उदक

कुछ मंत्र पढ़कर पाकके पात्रोंपर सींचा; फिर भास्करसे कहा, वस्त्र पात्रोंके ऊपरसे हटाना नहीं; पात्रोंमेंसे सामग्री निकाल निकालकर देते जाना।

अनेक ब्राह्मण परोसनेको उठाये गये; बात बातमें उन्हीं ढाइ सेर अन्नके पात्रोंके अन्नसे चार सहस्र पत्तलें परोस दियी गयीं; तो भीं पात्रोंमें अन्न ज्योंका त्यों भरा हुआ था।

चार सहस्र ब्राह्मणोंको यथेच्छ भोजन कराया गया, उन्हींके साथ में स्वामीने भी प्रेमसे भोजन किया, फिर गांवके शूद्र और अंत्यजों को और उनके पीछे गांवमें ढंढोरा पिटवाके जितने लोग शेष रहे थे उन सबको भोजन कराया गया। जब जान लिया गया कि गांवमें मनुष्य जातिका कोई प्राणी बिना भोजन शेष नहीं रहा, तब स्वामीने भास्कर शर्माको भोजन करनेकी आज्ञा दियी। उसने भी भोजन कर लिया। फिर अन्नके पात्रोंकी ओर देखा गया तो जितना भास्करने सिद्ध किया था; उतना ही शेष था; वह नदीके जलचरोंको खिलादिया गया।

स्वामीने भास्करको वरदान दिया कि तुम्हारा दरिद्र दूर हो-जायगा और तुम पुत्र पौत्रादि सहित सुखसे जन्म बिताओगे।

श्री गुरुकी लीला देख सब लोग आश्चर्यके समुद्रमें डूब गये; कहने लगे कि स्वामी नहीं यह साक्षात् ईश्वर हैं, यदि ऐसा न होता तो ढाई तीन सेर अन्नसे सहस्रों प्राणियोंका भोजन कैसे होता? कोई कहता था कि श्री गुरुके पास अन्नपूर्णा निवास करती हैं; गुरुने उनका स्मरण किया होगा; कोई कहता था पूर्वकालमें पांडवोंका सत्व देखनेके लिये दुर्वासा मुनि गये थे, उस समय श्रीकृष्णने जो लीला कियी थी, वही आज स्वामीने हम लोगोंको प्रत्यक्ष दिखायी। अन्य कोई कहता था कि स्वामीने प्रेतको सजीव कर दिया; दूसरा कहता था कि सूखे वृक्षको हरित पल्लव युक्त कर दिया; इस प्रकार सब लोग अपनी अपनी आंखोंके देखे हुए स्वामीके चरित्रोंका वर्णन कर करके आश्चर्य करते थे। इसप्रकार सारे संसारमें स्वामीकी महिमा प्रसिद्ध हो गई; जो जो जहां जहां सुनता था वहांसे चलकर स्वामीके दर्शनोंको पहुँचता था।

अध्याय ३९

साठ वर्षकी वंध्या स्त्रीको पुत्र-प्राप्ति।

सिद्ध मुनिने कहा " गाणगापुरमें आपस्तंब शाखाका शौनकके गोत्रमें सोमनाथ नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री गंगा नामकी बड़ी पतिव्रता थी, परन्तु वंध्या थी। उसकी आयुके साठवर्ष बीत चुके थे, तबलों उसके कोई संतान नहीं हुआ था और गाणगापुरके सब लोग जानते थे कि वह वंध्या है।

गंगा सर्वकाल पतिकी सेवामें तत्पर रहती थी और उसकी आज्ञासे नित्य श्रीगुरुकी पूजाको भी जाया करती थी। बहुत दिन बीतनेपर एक दिन उससे स्वामीने पूछा कि तुम नित्य नेमसे मेरी पूजा करती हो। इससे विदित होता है कि तुम कुछ कामना रखती हो सो जो तुम चाहती हो कहो। परमेश्वर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेगा।

गंगाने दंडवत् प्रणाम करके प्रार्थना कियी कि निःसंतान हूं। स्त्री जातिके लिये इससे अधिक बुराईकी कोई बात नहीं है, मेरा मुँह देखना कोई अच्छा नहीं समझता, जिसके पुत्र नहीं होता है, उसका जन्म व्यर्थ होता है; पुत्रके विना घर अरण्यके समान शून्य दिखाई देता है; मैं नित्य गंगा स्नानको जाती हूं। वहाँ पर सब स्त्रियाँ अपने अपने बच्चोंको साथमें लाती हैं, और गोदमें बैठाकर खेलाती हैं। वे कैसी भाग्यवती हैं? निःसंशय उन्होंने पूर्व जन्ममें बहुत पुण्य किया है। मैं कैसी मंदभागया हूं, कि जिसके प्रारब्धमें संततिका सुख नहीं। अनेक तीर्थोंमें मैंने स्नान किया, अनेक व्रत किये, अनेक देवता और अश्वत्थके वृक्षकी पूजा कियी; किंतु कुछ फल नहीं मिला; अब मैं अपने जन्मकी समाप्ति चाहती हूं; और स्वामीसे यही प्रार्थना करती हूं कि ऐसा वर दीजिये जिससे अगले जन्ममें मैं पुत्रवती होऊँ। स्वामीने हंस करके कहाः—अगले जन्ममें तो तुमको यदि पुत्र हुआ भी तो उससे तुमको क्या सुख होगा? क्योंकि इस जन्मकी स्मृति तो तुमको रहेगी नहीं: इसी जन्ममें पुत्रवती होने हीसे तुमको सुख हो सकता है। अब तुम भीमाके तीर अमरजा संगमपर अश्वत्थके वृक्षकी

नित्य पूजा किया करो। ईश्वर चाहेगा तो तुमको एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न होंगे।

अश्वत्थका वृक्ष बड़ा पुनीत है। इसकी महिमा ब्रह्मांड पुराणमें लिखी है। अश्वत्थके मूलमें ब्रह्मदेव निवास करते हैं, मध्यमें भगवान् हृषीकेश और शिखरमें रुद्र भगवान्का निवास है। उसकी शाखा पल्लवमें इन्द्रादिक सब देवता, सब ऋषिगण, वेद, यज्ञ, नदी, तीर्थ और सातों समुद्र निवास करते हैं। उसकी पूजा करनेसे तत्काल मनस्कामनां पूर्ण होती है, अश्वत्थकी प्रदक्षिणा करनेसे प्रति पदपर अश्वमेध यज्ञका फल होता है और ब्रह्महत्यादि पाप दूर होजाते हैं; जरा, मत्यु और पुनरावृत्तिका डर नहीं रहता है, शनिकी पीड़ा वाले को अवश्य ही अश्वत्थकी पूजा करनी चाहिये, अश्वत्थ वृक्षके नीचे एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे करोड़ ब्राह्मणको भोजन करानेका फल मिलता है। ऐसा ही वेदपाठ और मंत्रजप करनेका फल है, अश्वत्थ वृक्षकी स्थापना करनेसे बयालीस पुरुषोंको मोक्ष मिलता है।"

गुरुकी आज्ञाके अनुसार तीन रात उसने अश्वत्थकी पूजा विधि-पूर्वक और भक्ति सहित कियी। चौथे दिन रात्रिके समय निद्रामें स्वप्न देखा कि एक ब्राह्मण कह रहा है "तुम्हारा कार्य्य सिद्ध हुआ अब तुम गाणगापुरमें जाकर श्रीगुरु नृसिंहसरस्वतिकी प्रदक्षिणा भक्तिपूर्वक करो।" गंगा स्वप्न देखकर जागृत हुई और प्रातःकालमें अश्वत्थकी पूजा करके स्वामीके मठपर पहुँची। हर्ष युक्त हो कर स्वामीकी प्रदक्षिणा करके उसने दंडवत् प्रणाम किया।

स्वामीने उसको दो फल देकर कहा इन फलोंको भक्षण कर जाओ, अब तुम्हारा कार्य सिद्ध हुआ।

गंगाने फल भक्षण किये; उसी दिन वह ऋतुमती हुई। पाँचवें दिन गरोदर हुई; सब लोग विस्मित होकर गुरुकी प्रशंसा करने लगे। गर्भस्थितिके दिनोंमें जनरीतिके अनुसार ब्राह्मणभोजन, वायन-दान आदि कार्य होते रहे, नवमास पूरे होते ही उसके एक कन्या उत्पन्न हुई।

ज्योतिषियोंने ग्रहादिकोंके फल अच्छे बताये। सोमनाथने आनंद पूर्वक दान धर्म किया। गंगा दसवें दिन स्नान करके गोदमें बच्चेको लेकर गुरुके दर्शनको गयी। कन्याको गुरुके चरणोंपर रखकर भक्ति-

पूर्वक दंडवत् प्रणाम किया । स्वामीने आशीर्वाद देकर कहा कि यह कन्या शतायुषी, जगविख्यात पतिव्रता और पुण्यशीला होगी, इसका पति बड़ा ही ज्ञानी और चारों वेदोंका अध्येता होगा, उसके यहां अष्ट सिद्धियां निवास करेंगी और वह अखिल भूमंडलमें यशस्वी होगा, सब लोग उसकी पूजा करेंगे; दक्षिण देशका राजा उसके दर्शनको जायगा; तुम्हारे जो पुत्र होगा वह भी ज्ञानवान् होगा । परंतु तुम यह बताओ कि तीस बरसकी आयु वाला उत्तम ज्ञानी पुत्र चाहती हो या सौ बरसवाला मूर्ख ?

गंगाने कहा कि हे भक्तवत्सल ! करुणानिधान ! पुत्रतो योग्य होना चाहिये और उसके पांच पुत्र भी हों । गुरुने तथास्तु कहा और अपना वचन पूर्ण किया ।

अध्याय ४०

नरहरिका कोढ़ दूर हो गया ।

गाणगापुरमें श्रीगुरुके निवास करते हुए आपस्तंब शाखीय गार्ग्य गोत्रका नरहरि नामक एक ब्राह्मण रहता था । उसके सारे शरीरमें कोढ़ हो गया था । उसने स्वामीकी सेवामें उपस्थित होकर हाथ जोड़ प्रार्थना कियी कि हे भक्तवत्सल ! आपकी कीर्ति सुनकर मैं आया हूं मेरा जन्म पाषाणकी भांति व्यर्थ जा रहा है; सब लोग कोढ़ी कहकर मेरी निंदा करते हैं । मैंने यजुर्वेदका अध्ययन किया है; परंतु प्रातःकाल के समय कोई मेरा मुंह नहीं देखता; इससे मैं बहुत दुःखी हूं । पूर्व जन्ममें मैंने असंख्य पाप किये हैं उन्हींको भोग रहा हूं; अब सहा नहीं जाता । अनेक तीर्थोंमें स्नान किया, अनेक व्रत किये, सब देवताओंकी पूजा कियी । परंतु व्याधि दूर न हुई; अब स्वामीकी शरणमें आया हूं; यदि आपकी कृपा मुझपर न होगी तो मुझे प्राणत्याग करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता है ।

सूखा काष्ठ पल्लवित हो गया ।

ऐसे करुणा वचन सुनकर भक्तवत्सल श्रीगुरुने आज्ञा दियी कि मैं एक उपाय बतलाऊंगा, जिससे तुम्हारा कष्ट दूर होगा । यह कह-

कर आगे कुछ कहा चाहते थे कि इसी अवसरमें एक ब्राह्मण चार वर्षका सूखा औदुम्बर वृक्षका काष्ठ ले आया; स्वामीने कोढ़ीको वही देकर कहा; यह काष्ठ संगमके पूर्व भागमें गंगाके तीरपर स्थापित कर दो पीछे संगममें स्नान करके अश्वत्थकी पूजा करो। फिर नित्य तीन बार इसको पानी चढ़ाओ; जिस दिन काष्ठमें हरी पत्तियां फूटेंगी उसी दिन तुम्हारा कष्ट दूर हो जायगा।

ब्राह्मणने गुरुकी आज्ञाके अनुसार कार्य करना आरंभ कर दिया उसकी कृति देख अनेक पुरुष उससे कहते थे कि क्या तुम विक्षिप्त हुए हो ? क्या सुखा काष्ठका भी फिर कभी हरा होना संभव है ? और यदि वह हुआ भी तो उससे तुम्हारे रोगका क्या संबंध है ? गुरुने तुमको शुष्क काष्ठ दिया, इससे यही संकेत समझना चाहिये कि तुम्हारा कष्ट दूर नहीं हो सकता न काष्ठमें पल्लव फूटें न तुम्हारा रोग छूटे, क्यों वृथा कष्ट उठा रहे हो ?

ब्राह्मणने कहा कि गुरु सत्यसंकल्प हैं। उनके वचनोंपर मुझे पूर्ण विश्वास है। उनका वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। मैं उनकी आज्ञा के अनुसार करूंगा। वह वैसा ही करता रहा, नित्य उपवास करता था न तो अन्न खाता था न पानी पीता था, भक्तिपूर्वक काष्ठको स्नान कराके पूजा करता था।

इसप्रकारसे सात दिन बीत गये। शिष्योंने ब्राह्मणकी दृढ़ताका वृत्तान्त गुरुसे कहा; गुरुने कहा कि शिष्यके लिये गुरुके वचनोंमें सर्वथा सिद्धि नहीं होती, किन्तु भक्तोंके अंतःकरणोंका जैसा भाव होता है उसीके अनुसार सिद्धि होती है, इस विषयमें तुमसे एक इतिहास कहता हूं:—

पूर्वकालमें शौनकादि ऋषियोंने सूतजीसे गुरुभक्तिका प्रकार पूछा था, उन्होंने कहा था कि संसार सागरसे उत्तीर्ण होनेके लिये गुरुभक्ति की अपेक्षा अधिक लाभदायक अन्य कोई उपाय नहीं है; शिष्यको इसकी खोज न करनी चाहिये कि गुरु ज्ञानवान् हैं या अज्ञानी। उसको गुरुके वचनोंपर विश्वास रखना चाहिये। उनकी मूर्तिका ध्यान करते हुए, उनकी आज्ञाके अनुसार कार्य करता रहे, इसी दृढ़तासे जो पुरुष भक्ति करता है वह निःसन्देह सब अभीष्ट पाता है। कैसा ही गुरु क्यों न हो उसको मनुष्य न समझे, वह साक्षात् ईश्वर है। गुरुके वाक्यपर

दृढ़ विश्वास रखनेवाले भक्तपर ईश्वर प्रसन्न होकर गुरुके बचनोंको सिद्ध करते है। कहा है।

मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

मंत्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, वैद्य और गुरु इनपर जिस मनुष्यका जैसा विश्वास होता है तैसी ही उसमें सिद्धि होती है।

शबर शबरीकी कथा।

पूर्व कालमें पांचाल नगरमें सिंहकेतु नामका राजा था, उसका धनंजय नामका एक पुत्र एक दिन मृगया करता हुआ एक निर्जन और जलहीन अरण्यमें पहुंच गया। राजकुमार तृषासे अत्यन्त व्याकुल हुआ, उसके साथियोंने वनमें बहुत खोजा; परंत जलाशय कहीं नहीं दिखाई पड़ा। एक जीर्ण शिवालय दिखाई दिया, और उसमेंका शिवलिंग खंडित होकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ था। साथियोंमेंसे एकने वह लिंग उठा लिया। राजपुत्रने उससे पूछा कि खंडित लिंग क्या करेगा? उसने कहा कि मेरी इच्छा है कि लिंगकी पूजा किया करूं। राजपुत्रने हँस करके कहा "ठीक है अवश्य करो"।

शबरने राजपुत्रसे दंडवत् प्रणाम करके कहा कि कृपा करके पूजा करनेकी विधि बताइये आप मेरे गुरु हैं, मैं आपका सेवक हूं।

राजपुत्रने कहा कि पूजाकी विधि यही है कि स्त्री पुरुष दोनों मिलकर पूजा करें, बेलपत्र और फूल चढ़ावें, धूप, दीप, नैवद्य, आरती भक्तियुक्त करे। नित्य नयी चिताका भस्म नैवेद्य कराकर प्रसाद भक्षण करे और भी जो पदार्थ भक्षण करने योग्य उत्तम समझे, उनका नैवेद्य लगावें- इसी लिंगको शिवपार्वती समझे।

शबरने राजपुत्र (जिसको अब गुरु कहना चाहिये) के बचनों पर विश्वास किया और उसके कहे अनुसार पूजा करना आरंभ किया। कुछ काललों पूजा करनेपर एक दिन चिताकी भस्म नहीं मिली; तब आस पासके सात गांव घूमकर देखा, परंतु कहीं नहीं पाई, तब बड़ी चिंता करने लगा; उसने अपनी स्त्रीसे पूछा अब क्या करूं! दसो दिशाएं घूम आया, चिता भस्म नहीं मिली, अब कैसे पूजा होगी? आज गुरुकी कही हुई विधिके अनुसार पूजा होनी अशक्य दिखाई

देती है, प्राण छोड़नेके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय मुझे तो दिखाई नहीं देता।

शबरीने प्रसन्न मुँहसे कहा यह कौन चिंता करनेके योग्य बात है? मैं आपको चिताभस्म दूँगी, घरमें काष्ठ बहुत हैं। उनमें मुझे दहन कर दीजिये और मेरी चिताकी भस्म शिवजीको अर्पण कीजिये। मैं सुखसे अपनी देह समर्पण करती हूँ, व्रत भंग न होना चाहिये, यह देह नाशवंत है, कभी न कभी अवश्य नष्ट होगी, इससे इस देव कार्यके लिये और गुरुकी आज्ञा पालन करनेके लिये इसका उपयोग करना बहुत ही योग्य समझती हूँ।

भार्याके ऐसे वचन सुनकर शबर बहुत खिन्न हुआ। उसने कहा कि प्राणेश्वरी! तुम्हारी जैसी साक्षात् रतिके समान सुस्वरूप नवयौवना को गँवाकर इस व्रतके आचरणसे मैं कौन लाभ उठा सकूँगा? तुमने अभी संसारका कुछ भी सुख नहीं देखा है न तुम्हारे कोई संतान ही हुआ है, तुम्हारे माता पिताने तुम्हारे प्राणोंका संरक्षण करनेके अर्थ तुमको मेरे हाथमें दिया है; चंद्र सूर्यको साक्षी रखकर मैंने तुम्हारे साथ विवाह किया है। जितने व्रतादिक किये जाते हैं सब सुखके लिये; जब अपनी प्राणसे भी अधिक प्रिय धर्मपत्नीको अपने हाथोंसे दहन कर दूँगा तो व्रत ही किस लिये करूँ? संसारके सब लोग मुझे स्त्री घातक कहेंगे और ऐसा दुष्ट कर्म करके शिवजीकी पूजा करनेसे शिवजीकी प्रसन्नताकी भी क्या आशा है?

शबरीने कहा कि आपके विचार उचित ही हैं; परंतु माता पिताने मुझे आपकी अर्धांगिनी बना दी, मेरी देहपर आपका पूर्ण अधिकार है, आपकी और मेरी देह भिन्न नहीं है, जब आप अपनी देहको समर्पण कर देने के लिये उत्सुक हैं, तब मेरी निर्जीव देह भी व्यर्थ ही होगी, इससे तो मेरी देहको दहन कर देना अनुचित न होगा; आप मनका संदेह छोड़ मुझे शीघ्र दहन कर दीजिये।

इस समय शबरके अंतःकरणकी स्थिति बहुत शोचनीय थी, परंतु उसका गुरुके वचनोंपर दृढ विश्वास था, उसने यह भी सोचा कि गुरुके स्मरण किये वचनोंपर विश्वास रखनेसे कोई अनिष्ट परिणाम नहीं होना चाहिये। उसने गुरुका स्मरण किया, मनको दृढ़ किया और अपनी प्रिय भार्याको दहन करके उसके भस्मसे शंकरको नैवेद्य

कराया, वह आज शिवजीकी पूजामें ऐसा निमग्न हो गया था कि पूजाके बाहरकी किसी वस्तुका उसको कुछ स्मरण नहीं रहा, यहां लों कि उसने अपनी स्त्रीको जला दिया है वह यह भी भूल गया। उसने शिवजीका प्रसाद देनेके लिये नित्यके अनुसार अपनी प्रियाको पुकारा, और शिवजीकी कृपासे वही शबरी नित्यकी भांति प्रगट होकर हास्य मुख सहित शबरके हाथसे प्रसाद लेकर घरमें चली गयी पीछे जब स्मरण हुआ कि स्त्रीको तो जला दिया था, तब अति विस्मित हो उसने स्त्रीसे वृत्तांत पूछा।

शबरीने कहा मुझे इतना स्मरण है कि जब मैं काष्ठ पर सोई थी मुझे जाड़ा लग रहा था और जब उसमें अग्नि लगायी गयी थी, मुझे ज्ञात हुआथा कि मेरे शरीरपर गरम ओढ़ना डाल दिया गया है, मैं सुखसे निद्रा कर रही थी; आपके पुकारनेसे जागकर आपके सम्मुख चली आयी।

दोनोंने कहाः-शिवजी हमारे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, इसी अवसरमें उस स्थानपर भगवान् शूलपाणि अपने स्वरूपसे प्रगट हुए; दोनों पतिपत्नीने उनके चरणोंपर गिरकर प्रणाम किया, ईश्वरने उनको वर दिया कि तुमको राज्य मिलेगा, तुम संसारसुखका पूरा पूरा उपभोग करोगे, अंतमें एक करोड़ कल्प पर्य्यन्त स्वर्गमें निवास करोगे, इस प्रकारसे गुरुके वचनोंपर विश्वास करनेका माहात्म्य वर्णन करके नरहरिके दृढ़ विश्वासकी परीक्षा लेनेके अर्थ स्वामी अकस्मात् संगम पर पहुँचे; वहां नरहरिको उसके कर्तव्यमें दृढ़ देख प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने कमंडलुसे चुल्लूमें जल लेकर काष्ठपर डाल दिया। उसी समय काष्ठमें पल्लव फूट आये, जैसे पारसके स्पर्शसे लोहा सुवर्ण हो जाता है, तैसेही सूखा काष्ठ औदुम्बरका वृक्ष हो गया। साथ ही नरहरिकी देहका कोढ़ भी दूर हो गया, उसकी देहका वर्ण कंचनके समान शुद्ध हो गया, नरहरिने दंडवत् प्रणाम करके अनेक प्रकारसे स्वामीकी स्तुति कियी, स्वामीने वर दिया कि तुम पूर्ण ज्ञानी होगे। तुम योगेश्वर कहलाओगे; सब शिष्योंमें तुमही हमारे मुख्य शिष्य होंगे, कन्या पुत्र धन गोधनादिसे तुम सर्वकाल सुखी रहोगे, तुम्हारे सब वंशज वेद शास्त्र संपन्न होंगे।

फिर स्वामीने नरहरिको मंत्रोपदेश करके उसका नाम विद्या

सरस्वती रखा और कहा " तुम अपने बाल बच्चों सहित इसीग्राममें हमारे समीप निवास करो।"

स्वामी मठको चले गये, सब लोग अत्यंत विस्मित हुए। उस दिन असंख्य भक्तोंने स्वामीकी पूजा कियी। पीछे नरहरि स्वामीकी आज्ञाके अनुसार उनके समीप रहने लगा और वह वरदानके अनुसार सब ऐश्वर्य युक्त सुखसे रहा।

अध्याय ४१

सायंदेवकी गुरु सेवा।

विष्णुशर्माने पूछा " स्वामी, मेरे पूर्वजोंपर जो श्रीगुरुकी कृपा हुई, सो किस प्रकार से ?"

स्वामीने कहा कि तुम्हारे पूर्वज सायंदेव ओसर ग्राममें रहते थे जिनकी कथा पहिले कह चुके हैं। उन्होंने स्वामीका निवास गाणगापुरमें सुना, तब दर्शनकी इच्छासे वे गाणगापुर पहुंचे, गाँवको दूरसे देख दंडवत् प्रणाम करते हुए स्वामीकी सेवामें पहुँचे। उन्होंने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रखा, मस्तकके बालोंसे स्वामीके चरणोंकी रज को झाड़ा, अनेक प्रकारसे स्तवन किया, बारंबार दंडवत् प्रणाम किया, कँठ गद्गद् हो गया, रोमांच हो गये, आखोंसे आनंदके आंसुओंकी धारा बह चली। स्वामीने संतुष्ट हो उनके मस्तकपर प्रेमसे हाथ रक्खा और कहा कि तुम मेरे परम भक्त हो तुम्हारे किये हुए स्तवनसे मुझे बहुत संतोष हुआ; तुम्हारे वंशमें जितने पुरुष होंगे, सब मेरे भक्त होंगे, फिर स्वामीकी आज्ञासे गंगामें स्नान करके अश्वत्थकी पूजा कियी। स्वामीने अपने साथमें बैठाकर भोजन किया सब शिष्योंकी अपेक्षा उनपर अधिक प्रीति कियी। फिर स्वामीने उनके बालबच्चोंकी कुशल पूछी, सायंदेवने कहा कि स्वामीके प्रसादसे सब प्रकार कुशल मंगल है। फिर स्वामीने पूछा क्या इच्छा है ?

सायंदेवने कहा कि सर्वकाल स्वामीके चरणोंकी सेवामें रहा चाहता हूँ।

स्वामीने कहा कि मेरी सेवा करना कठिन है मैं कभी गाँवमें रहता

हूं, कभी अरण्यमें। मेरे साथमें रहनेसे बहुत कष्ट उठाने पड़ेंगे।

सायंदेवने कहा कि स्वामी, मुझे विश्वास है कि गुरुकी सेवा करने वालेको कष्ट हो नहीं सकता है, वह तो सदा सुखी रहता है; चरणोंमें रहनेकी आज्ञा मिले।

उनका आग्रह देख स्वामीने कहाः—यदि तुम्हारी इच्छा ऐसी हो रही है तो मैं स्वीकार करता हूँ।

सायंदेव स्वामीकी सेवामें रहने लगे। तीन मास बीतनेपर एक दिन स्वामी संगमपर गये; साथमें सायंदेवके अतिरिक्ति अन्य कोई नहीं था, आज उन्होंने सायंदेवके अंतःकरणकी परिक्षा करनेका निश्चय किया था। दोनों गुरुशिष्य अश्वत्थके समीप बैठ आनंदकी बातें कर रहेथे, ऐसी अवस्थामें एकाएक बड़े वेगसे आँधी आयी। बादलोंसे आकाश घिर गया; रात हो गई-मूसलधार पानी बरसने लगा।

सायंदेवने वस्त्रोंसे गुरुके ऊपरका पानी रोका। अपने शरीरपर पानी सहा! दो पहरलों पानी और आँधी रुकी नहीं, जाड़ा लगने लगा। सायंदेव सब कष्ट सहता रहा; परंतु स्वामीको किंचिन्मात्र भी क्लेश न होने दिया। मध्य रात्रिके समय स्वामीने सायंदेवसे कहा जाड़ा बहुत लगता है तुम मठपर जाओ वहाँसे अग्नि लाओ। सायँदेव जानेको उद्यत हुआ। उस समय स्वामीने हास्य मुँहसे कहा, मार्गमें अपनी दोनों ओर (दहिनी, बाई) न देखना!

सायंदेवने प्रयाण किया, अंधेरी महाघोर छायी थी, मार्ग दिखाई नहीं देता था, पानी मूसलधार बरस ही रहा था, गुरुका ध्यान करता हुआ जाड़ेसे व्याकुल होता हुआ, गिरता, पड़ता, कभी कभी बिजलीकी चमकमें मार्गके चिन्होंका सहारा पाता हुआ, मठपर पहुँचा; वहाँसे अग्नि लेकर लौटा, मार्गमें उसीप्रकार कष्ट पाता हुआ आ रहा था, उसी दशामें उसको स्मरण हुआ कि पार्श्व भाग देखनेको स्वामीने मना किया है, तब उसके मनमें इच्छा हुई कि भला देखूँ तो सही क्या चमत्कार दिखाई देता है।

ज्यों ही दोनों ओर देखा तो महा भयं कर पाँचपाँच फणोंके साँप दिखाई दिये, जो दोनों ओर उसके साथ साथ दौड़ते हुए चले आ रहे थे। देखते ही भयका मारा हकीबकी भूल गया, बुरी रीतिसे भागा; न मार्ग देखता था न काटे पत्थर; गिरता पड़ता; मार्ग छोड़ भागता

था, जिधर जिधर जाता था, उधर उधर साँप भी साथ साथ जाते थे; सास फूलने लगी; देहमें पसीना हो गया।

जब देखाकि साँप साथ नहीं छोड़ते तो हताश हो धैर्य धर श्रीगुरु का स्मरण किया, त्यों ही दूरसे सहस्र दीपकोंके प्रकाशमें संगमपर बैठे हुए स्वामी और उनके समीप वेदध्वनि करते हुए बहुतेरे ब्राह्मण दिखाई दिये। भय कम हुआ, समीप पहुँचनेपर देखा तो स्वामी अकेले थे, न संदीपक दीपक थे, न ब्राह्मण! पहुँचते ही साँप स्वामीको नमस्कार करके चले गये; सायंदेवके अतःकरणका भय दूर हो गया; अग्नि सुलगायी, उजेला हुआ, ब्राह्मण सावधान हुआ, तथापि उसकी चर्यासे उसका भयभीत होना स्पष्ट विदित होता था। स्वामीने कहाकि डरो मत। मैंने तुम्हारी रक्षा करनेके लिये साँपोंको भेजा था। अब भी तुम विचार करो। गुरुकी सेवा करनी बहुत कठिन है। कलि और काल से जो नहीं डरता है। वही गुरुकी सेवा कर सकता है।

सायंदेवने विनंति कियी। कि स्वामी मुझे गुरुकी भक्ति करनेकी रीति बतलाइये, जिससे मेरा अतःकरण स्थिर हो।

स्वामीने कहाकि शिवजीने पार्वतीसे गुरु भक्तिका जैसा प्रकार कहा था, वही मैं तुमसे कहता हूँ।

शिवजीने कहाकि गुरुकी भक्ति सुलभ नहीं है, परंतु जो भक्त निर्मल अतःकरणका होता है, उसको शीघ्र ही साध्य हो जाती है, अनन्य भाव से गुरुकी अराधना करनी चाहिये। इसका एक दृष्टांत कहता हूं।

गुरु भक्तिकी महिमा।

ब्रह्मदेवका अवतार त्वष्टब्रह्मा हुआ था। त्वष्टब्रह्माके एक अति लावण्यवान्, सुंदरस्वरूप, सब धर्मोंमें कुशल, धीर पुत्र उत्पन्न हुआ; जब वह उपनयनके योग्य हुआ तो व्रतबंध किया गया और विद्याभ्यास के अर्थ गुरुके घरपर छोड़ दिया गया। वह ब्रह्मचारी अनन्य भाव से गुरुकी सेवा करता था। एक दिन वर्षा बहुत हुई, जिससे गुरुकी पर्णशालामें पानी बहुत टपका; जिसे देख गुरुने शिष्यसे कहाकि मुझको एक ऐसा घर बनवादो, जो न कभी जीर्ण हो, न टूटे, सर्वकाल रम्य और मनोहर दिखाई दे। उसी समय गुरुकी पत्नीने कहाकि मेरे लिये एक कंचुकी लाओ जो न तो बुनी हुई, न सिली हुई, परंतु चित्र

विचित्र रंगोंकी और मेरे शरीरके प्रमाणकी हो, न ढीली हो, न तंग और शीघ्र लाओ। गुरु पुत्रने कहाकि मेरे लिये खडाऊँ लाओ, जो ऐसी हो कि पानीपर चल सके अथवा कीचमें चलने परभी उनमें मट्टी न लग सके और जहाँ मैं जाना चाहूं तत्काल ले जा सकें। इसी अवसरमें गुरुकी कन्याने कहाकि मेरे लिये एक सुस्वरूप बालक (खिलौना) लाओ और एक घरकुल (छोटासा मकान) हाती दांतका लाओ, जो एक ही खंभेका हो, न कभी टूटे न पुराना हो; सब प्रकारकी सामग्री भी उसके साथमें होनी चाहिये, रसोई बनानेके बरतन भी लाओ, और रसोई बनाना सिखा देना, ऐसा पाक बनाना सिखाना कि जो कभी ठंढा न हो सके, रसोई बनाते समय पात्र काले न हो सकें।

ये सब बातें शिष्यने स्वीकार करके उनकी खोजमें चला। जाते जाते एक निर्जन बनमें पहुँचा; अपने मनमें चिंता करता था कि मैं एक बाल ब्रह्मचारी हूँ, एक पत्तल बनाने तकका अवसर नहीं पड़ा-संसारके किसी भी कार्यका करना नहीं जानता; किस प्रकार मैं इन कार्योंको पूरा कर सकूंगा। यदि ये सब कार्य शीघ्र न कर पाऊँगा तो गुरु शाप देंगे। अब मेरी क्या गति होगी? अब मैं किसकी शरण जाऊँ? इस प्रकार अत्यंत चिंता करता हुआ जा रहा था, मार्ग चलनेके कष्ट से श्रमित होकर कार्य सिद्धिकी निराशासे अपने प्राण छोड़ देनेका निश्चय कर रहा था, इसी अवसरमें एक अवधूतसे भेट हुई।

अवधूतने ब्रह्मचारीसे उसके वृत्तान्त पूछे और ब्रह्मचारीने उनसे विस्तार सहित कहे, फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना कियी कि कृपानाथ! इस दुर्गम वनमें मेरा कोई सहायक नहीं है, अकस्मात् आपके दर्शन हुए। इससे मैं जानता हूँ कि आप साक्षात् ईश्वर हैं। मेरा कष्ट दूर करनेके लिये आपने मुझे दर्शन दिये हैं; मुझे विश्वास हो गया है कि आप मेरा कष्ट अवश्य दूर करेंगे, मैं आपकी शरण हूँ- यह कहकर वह उनके चरणोंपर गिर गया।

स्वामीने उसको आशा दिला कर कहा "घबराओ नहीं, मैं तुम्हें एक मार्ग बतलाता हूँ, जिससे तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जायगा," यह कह कर अवधूतने ब्रह्मचारीको तीर्थराज काशीमें गंगास्नान विश्वेश्वरादि सब देवताओंके दर्शन, पंचक्रोशी यात्रा और श्राद्धादिक करनेकी विधि और महिमा बतलायी।

ब्रह्मचारीने कहा न तो मैं यह जानता हूँ कि काशी पुरी इसी अरण्यमें है या स्वर्ग वा पातालमें; अवथा पृथ्वीके अन्य किसी भागमें; न वहाँ जानेका मार्ग ही जानता हूँ। आप ही कृपा करके वहां ले चलेंगे तो जा सकूँगा।

स्वामीने कहाकि कुछ चिंता नहीं। तुम्हारे ही योगसे हमको भी तीर्थ-यात्राका लाभ हो जावेगा। यह कह कर दोनों जने वहांसे चलकर थोडे हीं समयमें काशी क्षेत्रमें जा पहुँचे। अवधूत अंतर्धान हो गये। ब्रह्मचारीने अवधूतकी कही विधिके अनुसार स्नान किया, श्राद्धादिक कर्म, विश्वनाथादिक सब देवताओंके दर्शन, पंचक्रोशी यात्रादि किये।

अध्याय ४२

ब्रह्मचारीको विश्वेश्वर-दर्शन।

ब्रह्मचारीके इस प्रयत्नसे संतुष्ट हो कर भगवान् विश्वेश्वरने ब्रह्मचारीके सम्मुख प्रगट हो अपने स्वरूपका दर्शन देकर कहा "मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूँ, जो इच्छा हो वर माँगलो।

ब्रह्मचारीने आनंदित होकर दंडवत् प्रणाम कर अपना सब वृत्तांत कह सुनाया।

तब ईश्वरने कहाः—हे वत्स तुम सब विद्यानिधान हो ओगे। तुम ही विश्वकर्मा होओगे, चारों पुरुषार्थ पाओगे। इस प्रकार बरदान देकर शंकर अदृश्य होगये।

त्वष्टाने अपने नामसे वहाँ लिंग स्थापन किया; फिर वहाँसे चल वह अपने गुरुके पास आया, साक्षात् शिवगौरी जिसपर प्रसन्न हुए, वह क्या न कर सकेगा? उसने आनकी आनमें सब वस्तुएँ निर्माण कर दियीं, फिर उसने गुरुके चरणोंपर मस्तक रखा और यथाक्रम गुरुकी पत्नी पुत्र और कन्याकी वंदना कियी। श्रीगुरु अत्यंत प्रसन्न हुए उन्होंने भी वरदान दिया कि तुम सब विद्या विशारद होओगे और अणिमादिक आठों सिद्धियां और नवों निधियां तुम्हारे पास सर्व काल निवास करेंगी, भगवान् त्रिमूर्ति तुम्हारे वंशमें जन्म धारण करेंगे

तुम चिरजीवी होओगे, और जबलों चंद्र सूर्य विद्यमान हैं, तबलों तुम्हारा यश तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध रहेगा, तुमको कभी चिंता और कष्ट न होंगे।

शिवजी पार्वतीसे कहते हैं कि ब्रह्मचारीके समान निर्मल अतः-करणसे जो पुरुष गुरुकी सेवा करता है, वही गुरु भक्तिसे लाभ उठा सकता है।

स्वामी नृसिंह सरस्वती सायंदेवसे कह रहे थे कि इतनेमें रात्रि बीत गयी, सूर्योदय हुआ, सायंदेवके अंतःकरणमें और बाहर प्रकाश हो गया, चिंता दूर हुई, उसने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रखके प्रार्थना कियी कि हे भगवन् ऐसी दृढ़ बुद्धि देना भी आपके हाथमें है।

सायंदेवने गुरुका मनोदय देख यवन राजाकी सेवा छोड़ दी और अपने पुत्र कलत्रादिकको गाणगापुरमें बुला लिया। स्वामीने सायंदेवके पुत्रोंपर इतना प्रेम किया, जितना वे स्वयं अपने पुत्रोंपर करते।

पहिली बार सायंदेवके पुत्र जब स्वामीके दर्शनको उपस्थित हुए थे, तब उन्होंनें कर्नाटक भाषाके श्रीराग छंदमें स्तुति कियी थी वह इस प्रकार हैः-

"कंडे निंदुभक्तजनराभाग्य निधियभूमंडल दोलगे नारसिंहसरस्वतीया।
कंडे निंदुउंडे निंदुंवारिजादोळ पादवाराजा कमळांदोळ दंतध्यानिसी ॥
सुख सुवाज नारगळा ॥ भोरगेलान्नेकामि फळफळा ॥
नित्य सकळाहुवा ॥ धीनासिंहसरस्वती वराननां ॥
वाक्य करुणा नेन सुवा ॥ जगदोळक दंड कमंडलु धराशी ॥
सगुण नेनीशीसुजनरिगे ॥ वगादुनी वासश्रीगुरुयतिवरांन ॥
धरेगे गाणगापुर डोलकेलाशीहरी ॥ दासिसो नुनादया करुणादल्ली ॥
वरावी तुंगमुनाहोरा वनुअनुविना ॥ नारसिंहसरस्वती गुरुचरणावन्न ॥
राजग खंडी कंडी नेनमा इंदुकंडे नेनमा ॥ मंडला दोलगेयतीकुलरायें ॥
॥ चंद्र मन्ना ॥
तत्वबोधाया उपनिषद्तत्त्वचरित॥ नाव्यक्तवाद परब्रह्ममूर्तीयनायना ॥
शेष शयना परवेश कायना ॥ लेश कृपय नीवनेव भवा सौपालकाना ॥
गंधपरिमळादि शोभितानंदा सारन्नाछंदाल योगेदे गोपीवृंदवल्लभना ॥
करीयनीयानां पापं ॥ गुरु॥ नवरसगुसायन्नीं ॥ नारसिंहसरस्वत्यन्ना ॥
नाद पुरुषा वादना।"

इस समय सायंदेवके चार पुत्र विद्यमान थे; ज्येष्ठ पुत्रका नाम नागनाथ था, स्वामीने सायंदेवको वरदान दिया कि तुम्हारी स्त्रीको औरभी चार पुत्र उत्पन्न होंगे और सब सुखसे रहेंगे।

सायंदेव अनंत चतुर्दशीके दिन अनंतके स्थानमें स्वामी हीकी पूजा करते थे; उन्होंने स्वामीसे अनंत चतुर्दशीके व्रतका माहात्म्य पूछा, वह इस प्रकार स्वामीने वर्णन किया:—

अध्याय ४३

अनंत चतुर्दशी–व्रतका माहात्म्य।

स्वामीने कहा कि द्यूतक्रीडामें युधिष्ठिरादि पांडव राज्य हार गये, तब अज्ञात वास करते हुए अरण्यमें बहुत कष्ट उठाते रहे, उसका निवारण करके पुनः राज्य प्राप्त करादेनेके अर्थ भगवान् श्रीकृष्णने पांडवोंको अनंत चतुर्दशीके व्रत करनेका उपदेश किया था और उसका विधान भी बतलाया था। युधिष्ठिरने पूछा कि इस व्रतको पहिले भी किसीने किया है? इसपर भगवान्‌ने एक इतिहास कहा:-

"कृत युगमें वासिष्ठ गोत्रका सुमन्तु नामी एक ब्राह्मण था, उसका विवाह भृगुकी कन्या दीक्षासे हुआ था। यह स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। इसके एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम सुशीला था।

भार्या और कन्याके सहित सुखसे कालक्रमण करते हुए दैववशात् दीक्षाकी मृत्यु हो गई, तब सुमन्तुने दूसरा विवाह किया। इस स्त्रीका नाम कर्कशा था और यह स्वभावसे भी कर्कश थी; महा दुष्टाचारिणीथी; नित्य घरमें कन्या और पतिके साथ कलह किया करती थी, सुशील का विवाह कौंडिन्य ऋषिके साथ किया गया, सुमन्तुने जामातको अपने घरमें पुत्रवत् रखना चाहा था; परन्तु दुष्ट स्त्रीके कलहसे व्याकुल हो कन्याको पतिके साथ बिदा कर देना पडा।

कौंडिन्य ऋषि अपनी भार्या सहित प्रयाण करके अपने गाँवकी ओर चले। मार्गमें एक नदीपर नित्य कर्मके लिये ठहर। ऋषि अनुष्ठानको बैठे।

सुशीलाने देखा कि वहाँसे कुछ दूरपर नदीके तीर एक रम्य वा-

टिकामें स्त्रियोंका समुदाय कुछ कार्य कर रहा है। सुशीला धीरे धीरे वहाँ चली गयी, पूँछनेसे विदित हुआ कि स्त्रियाँ अनंत चतुर्दशीका व्रत और पूजा कर रही हैं। सुशीलाने उनसे व्रतका विधान पूछा, स्त्रियोंने सविस्तर उस से कहा, अंतमें कहा, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो आज ही तुम हमारे साथ पूजा करो। सुशीलाने पूजा करके अनंत दोरक भुजामें बांधा; फिर वह पतिके समीप चली आयी। इस अवसर में ऋषि भी अनुष्ठान कर चुके थे। दोनों गाड़ीमें बैठ आगेको चलते हुए।

यहाँसे प्रयाण करके आगे प्रथम जिस गाँवमें पहुँचे, उसकी शोभा अमरावतीके समान थी, पहुँचते ही पुरजनोंने उनका सत्कार किया और नगरका आधिपति कह कर बड़े समारोहके साथ लोग दोनोंको राज भवनमें ले गये।

दोनों स्त्री पुरुष उस नगरके राजा रानी हुए और सर्वैश्वर्ययुक्त सुखसे राज्य कार्य करने लगे। एक दिन कौंडिन्य ऋषिकी दृष्टि सुशीलाकी भुजापर बँधे हुए अनंत दोरकपर पड़ी; उन्होंने वशीकरण का दोरक जान दोरकको तोड़ कर अग्निमें डाल दिया; सुशीलाने बहुत कुछ कहा कि यह अनंत है, इसीके प्रतापसे आपने राज्य पाया है; परन्तु ऋषिने इसपर विश्वास नहीं किया, उन्होंने कहा कि राज्यैश्वर्य तो हमारी तपस्याका फल है। सुशीलाने झपट कर दोरकको अग्निसे निकाल दूधमें डुबो दिया।

अनंतको अग्निमें डाल देनेसे ऋषिके ऐश्वर्यकी हानि होने लगी। पुरजन सब उनके शत्रु हो गये। गोधन और वस्त्र आभूषणादि सब चोरीमें चले गये; ऋषि दरिद्र हो गये। अब ऋषिने जाना कि अनंत नारायणकी अवकृपा हीका यह कारण है. तब उन्होंने बहुत पश्चात्ताप किया और निश्चय किया कि जबलों अनंत नारायणके दर्शन न करूँगा, अन्नोदक ग्रहण नहीं करूँगा।

अब दोनों स्त्री पुरुष घोर अरण्यमें चले गये और "हा अनंत! हा अनंत!!" पुकारते हुए बावलेकी भांति घूमने लगे। वृक्ष, कीटक, पक्षी, बैल, गाय, सरोवर, गधा, हाथी, जो दिखाई पड़ता था, उससे पूछते थे कि किसीने अनंतको देखा है? कोई क्या बता सकता था? अंतमें एक दिन निराश हो कर "हा अनंत।" कह कर प्राणत्याग करनेकी इच्छा करता

हुआ पृथ्वीपर गिर कर अचेत हो गया। इसी अवसरमें एक वेषधारी वृद्ध ब्राह्मणका अकस्मात् वहाँ आगमन हुआ, उसने ऋषिके समीप जाकर उनको पुकारा, कहा, कि उठो, मेरे साथ चलो, मैं अनंतको बताता हूं " यह कह कर हाथ पकड़ एक नगरमें ले गया, वहाँ ऋषिको ऊँचे बहुमूल्य सिंहासनपर बैठा कर अपने स्वरूपका दर्शन कराया। ऋषिने उनके चरणोंपर मस्तक रख अनन्य भावसे स्तवन किया कि हे भगवन् ! आप श्रीवत्सल सच्चिदानंद हैं। आपका स्मरण करनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं, आप ही ब्रह्मा, विष्णु महादेव हैं, आप ही वैकुंठवासी भगवान् विष्णु हैं, मैं महा पापी हूँ, व्रतकी महिमा नहीं जानता था, क्षमा कीजिये।

भगवान्ने प्रसन्न हो कर वरदान दिया कि तुम्हारा दारिद्र्य दूर होगा। तुम सर्वकाल वैकुंठमें निवास करोगे।

बहुत दिनपर्यन्त कौंडिन्यने राज्य किया। अंतमें वह स्वर्गको गया।

इस प्रकारसे श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे अनंत-व्रतकी महिमा कही। तब युधिष्ठिरने इस व्रतको किया, जिससे पांडवोंने राज्य पाया।

अध्याय ४४

जुलाहेको श्रीशैलके दर्शन।

सिद्ध मुनिने कहा कि स्वामीके भक्तोंमें एक जुलाहा था, जो राजभवनके आँगनको नित्य झाडनेके लिये राजस्थानसे वेतन पाता था। वह नित्य दूरसे स्वामीको नमस्कार करके संध्याके समय एक पहरलों स्वामीकी सेवामें उपस्थित रहता था। कुछ काल पीछे जब महा शिवरात्रि समीप आयी, जुलाहेके घरके सब लोगोंने श्रीशैल मल्लिकार्जुनकी यात्राको जाना निश्चित किया। जुलाहेसे भी चलनेको कहा; उसने कहा, मेरे मल्लिकार्जुन तो स्वामी नृसिंहसरस्वती हैं उनका भवन ही श्रीपर्वत है, मैं गुरुके चरणोंको छोड़कर कहीं नहीं जाता।

जुलाहेकी माता और पुरवासी सब लोग यात्राको चले गये, गाँवमें केवल यह एक जुलाहा शेष रह गया। जब वह स्वामीके दर्शनको गया, स्वामीने पूछा कि तुम यात्राको क्यों नहीं गये ? उसने

कहा कि मेरी यात्रा आपके चरणोंमें है, मूर्ख लोग व्यर्थ पाषाणका दर्शन करने जाते हैं।

महा शिवरात्रिके दिन स्वामीने जुलाहेसे पूछा कि तुमने कभी श्रीपर्वत और मल्लिकार्जुन देखा है? उसने कहा "नहीं।" स्वामीने कहा कि आँखें मूँदकर मेरी खड़ाऊँको दृढ़ पकड़ लो। जुलाहेने वैसा ही किया और तुरंत स्वामी जुलाहासहित, श्रीपर्वतको पहुँच गये; पाताल गंगाके तीरपर बैठ कर स्वामीने कहा कि आँखें खोलो, जुलाहेने आँखें खोलीं तो श्रीपर्वत दिखाई पड़ा। देखते ही जुलाहा विस्मित हुआ। मन ही मनमें उसने कहा कि क्या मैं स्वप्न देखता हूँ? वा जागता हूँ? गुरुने कहा कि किस भ्रममें पड़े हो? शीघ्र जाकर क्षौर, स्नान, और दर्शन करके लौट आओ।

स्वामीकी आज्ञाके अनुसार वह मेलेमें गया। वहाँ उसने अपने माता पिता आदि घरके और गाणगापुरके सब लोगोंको देखा। उन्होंने पूछा तुम किस मार्गसे आये? अकेले आनेसे कौन लाभ उठाया? हमारे साथ ही क्यों नहीं आये?

जुलाहेने कहा कि मैं आज माध्यान्ह समयमें स्वामीके साथ गाणगापुरसे चला था और बातकी बातमें वे मुझे यहाँ ले आये।

जुलाहेके कहनेपर किसीने विश्वास नहीं किया, कोई कहता था कि झूँठा है, यह असंभवनीय है, कोई कहता था कि अशक्य है, अन्य किसीने कहा कि हमारे साथ ही दबा छिपा आया है।

जुलाहा किसीसे अधिक बातचीत करनेके झंझटमें नहीं पड़ा, शीघ्रतासे क्षौर और स्नान करके पूजा साहित्य लेकर शिवालयको गया, वहाँ उसने शिवलिंगको श्रीगुरु नृसिंह सरस्वतीके स्वरूपमें देखा, तब उसको अधिक विश्वास हो गया कि सब लोग यहाँपर स्वामीकी पूजा करते हैं और स्वामी ही साक्षात् ईश्वर हैं। भक्तिपूर्वक पूजा करके प्रसाद ले कर जुलाहा स्वामीके समीप आया और उसने गुरुसे प्रार्थना कियी कि हे स्वामी! मैं नहीं जानता, जब कि आप ही के चरणोंकी सब लोग यहाँ पूजा करते हैं, तब वे गाणगापुर हीमें क्यों नहीं करते? इतनी दूर आनेका क्यों वृथा कष्ट उठाते हैं? मेरी समझमें तो सब लोग मूर्ख प्रतीत होते हैं। वे आपकी महिमा नहीं जानते।

श्रीशैलकी महिमा ।

स्वामीने कहा कि हे वत्स, ईश्वर तो सर्वव्यापी है; परंतु इस स्थानकी महिमा अकथनीय और तीनों लोकमें विख्यात है । यही कारण है जो सब लोग प्रति वर्ष यहाँ आते हैं ।

जुलाहेने कहा कि स्वामी इस स्थानकी महिमा विस्तारसे सुनना चाहता हूँ ।

स्वामीने कहा कि इसकी कथा स्कंद पुराणमें लिखी है, वही मैं तुमसे कहता हूँ । सुनोः—

विमर्षण राजाकी कथा ।

पूर्व समय किरात देशमें विमर्षण नामका राजा बड़ा शूर और पराक्रमी था । उसने अपने बल विक्रमसे सब शत्रुओंको जीत लिया था । वह नित्य बहुत जीवहिंसा किया करता था, व्यभिचारी भी था; ग्राह्य अग्राह्य सब प्रकारके मांस भक्षण करता था; इतना होते हुए भी वह शिवजीका परम भक्त था; नित्य भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा किया करता थाः महा शिवरात्रिको गीत, नृत्य, वाद्यसहित बड़े समारोहसे शिवजीकी पूजा करता था । उसकी भार्या कुमुद्वती बड़ी सुशीला और पतिव्रता थी; अपने पतिके परदाररत होनेसे वह सर्वकाल चिंता किया करती थी ।

एक दिन उसने हाथ जोड़कर अपने पतिसे प्रार्थना कियी कि प्राणेश्वर, मेरी धृष्ठताके लिये मुझे क्षमा करके मेरी एक शंका निवारण कीजिये । आप एक तो भक्षाभक्ष्यका विचार नहीं करते, दूसरे परस्त्रियोंसे नित्य विहार किया करते हैं, अर्थात् आपका आचरण ऐसा है कि जिसके कारणसे ईश्वरकी भक्ति आपके अंतःकरणमें निवास करने योग्य नहीं हो सकती; परंतु अनुभव इसके विपरीत होता है इसका क्या कारण है ? वह मैं सुना चाहती हूँ ।

महा शिवरात्रि व्रतकी महिमा ।

राजाने कहा कि प्राणेश्वरी ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । मुझे स्मरण है कि मैं पूर्व जन्ममें पंपापुर नामके नगरमें श्वानकी योनिमें

जन्मा था । उसी नगरमें महा शिवरात्रिको एक शिवालयमें सब लोग बड़े ठाट बाटसे शिवलिंगकी पूजा कर रहे थे, मैं उच्छिष्ट पानेकी आशासे शिवालयमें चला गया, मुझे देखते ही 'पकड़ो, पकड़ो' 'मारो, मारो' कहके सब लोग मुझपर टूट पड़े और कोई पत्थरसे कोई डंडोंसे और कोई ईंटोंसे मुझे मारने लगे; मैं भाग जानेके लिये मार्ग नहीं पा सका। प्रदक्षिणाकी गलीमें घूमता रहा, जिससे आप ही आप तीन बार प्रदक्षिणाका श्रेय पा गया। शिवजीकी पूजा देखने और शिवजीके लिंगका दर्शन करनेका भी उसी दशामें मुझे अवसर मिल गया था। उस दिन आहार भी कुछ नहीं मिल सका था, पत्थर और डंडोंके आघातोंसे उसी शिवालयमें मेरी मृत्यु होगई। प्रदक्षिणा, दर्शन और उपवासके पुण्यसे इस जन्ममें मैंने राज्य पाया और मैं पूर्व जन्मका स्मरण रखता हूँ। स्वभाव हीसे श्वान, न तो भक्ष्याभक्ष्यका विचार रखता है और न ग्राह्याग्राह्यका; वही पूर्व जन्मका स्वभाव मुझमें अबलों विद्यमान है, और उसी पूर्व पुण्यसे ईश्वरकी भक्ति मुझमें निवास करती है।

कुमुद्वतीने फिर पूछा कि आप मेरे पूर्व जन्मका वृत्तांत भी जानते हैं ?

राजाने कहा "हाँ"। तुम पूर्व जन्ममें कपोती थीं, तुम अपनी चोंचमें मांसका टुकड़ा लिये हुई थीं। यह देख एक चीलने तुमसे वह छीन लेना चाहा। तुम उससे बचानेके लिये आकाशमें उड़ीं और चील तुम्हारे पीछे पड़ी। अनेक वनों और पर्वतोंको आक्रमण करती हुई तुम श्रीशैलपर पहुँचीं और मल्लिकार्जुनके मंदिरके शिखरके आस पास ऊपर ही ऊपर घूमती रहीं अर्थात् शिखरको सव्य प्रदक्षिणा कर गईं उड़ते उड़ते तुम बहुत थकगयीं, तुममें उड़नेकी शक्ति नहीं रही, तब उसी शिखरपर बैठ गयीं। चीलने अपनी चोंचसे तुमको बहुत टोंचा जिससे तुम्हारी मृत्यु होगयी, उसी प्रदक्षिणाके पुण्यसे तुम राजपत्नी हुई।

फिर कुमुद्वतीके पूछनेपर अपने सात जन्मका भविष्य कह कर अंतमें यह भी कहा कि सातवें जन्ममें मैं तुम्हारे सहित मोक्ष पाऊँगा। प्रति जन्ममें तुम्ही मेरी पत्नी होती रहोगी, दोनों शिवजीकी उपासना और महा शिवरात्रिका व्रत करते रहेंगे।

स्वामी कहते हैं कि इस प्रकारकी श्रीशैल मल्लिकार्जुनकी

महिमा है और ऐसी ही गाणगापुरमें कल्लेश्वरकी है। मल्लिकार्जुनकी पूजा तुम कर चुके अब चलकर कल्लेश्वरकी भी करो।

जुलाहेने कहाकि स्वामी क्यों आप मेरा अंत देखते हैं? जब मल्लिकार्जुनमें मैंने आपको देखा है, कल्लेश्वरमें अधिक क्या देख सकूँगा.? और किसकी पूजा करूँगा?

स्वामीने हँसके कहा—पादुका पकड़ो और आंखें मूँदो।

जुलाहेने वैसा ही किया और दोनों तत्काल संगमपर लौट आये।

इधर गाणगापुरमें मठमेंके भक्तोंने स्वामीको मठमें न देखा तो खलबली मचगयी। कोई कहता था अभी तो संगमपर थे, कोई कहता था मठमें थे, कोई संगमपर ढूढ़ने जाता था,कोई गाँवमें, इसी दौड़ धूपमें सब लोग थे। तबलों स्वामी फिर संगमपर आपहुँचे। जुलाहेको स्वामीने मठमें शिष्योंको बुलानेके लिये भेजा; वहाँपर पुरवासियोंने जुलाहेसे क्षौर करानेका कारण पूछा उसने स्वामीके साथ श्रीशैलपर जानेका वृत्तांत कहा, विभूति और प्रसाद भी दिखाये। स्वामीके अनुभवी भक्तोंने तो तत्काल आनंदके मारे दौड़कर स्वामीके दर्शन किये, अनेक उपाचरसे उनकी पूजा करके स्तवन किये, परंतु अन्य कुछ पुरुषोंने उसके कहने पर विश्वास नहीं किया। पन्द्रह दिनोंके पीछे जब अन्य यात्री जन शैलसे लौटे, उनके कहनेसे जुलाहेके कथनकी सत्यता सिद्ध हुई, तब उनको भी विश्वास हुआ।

अध्याय ४९

कोढ़ीका कोढ़ निवारण।

सिद्ध मुनिने कहा किस दिन स्वामी संगमपर ही रहे दूसरे दिन नंदी नामका एक ब्राह्मण, जिसके सारी देहमें सुफेद कोढ़ था, मठमें आया। यह ब्राह्मण प्रथम तीन वर्ष पर्यन्त तुलजापुरकी अंबा भवानी की आराधना कर चुका था। तीनों वर्ष नित्य उपवास करता रहा, और बहुत कष्ट उठाता रहा था, अंतमें भवानीने स्वप्नमें दर्शन दे कर कहाकि “चंदला देवीकी आराधना करो।” ब्राह्मण चंदला देवीके स्थानपर गया। सात मास वहां पुरश्चरण करके कष्ट उठाया। वहाँपर उसको

स्वप्न हुआ कि गाणगापुरमें स्वामी नृसिंह सरस्वतीकी आराधना करो, वह तुमारा कष्ट दूर कर देंगे। अब ब्राह्मणने अपने जीवनको समाप्त करनेका निश्चय कर लिया था। उसने देवीसे कहाकि यह तुमने ठीक कहा। जब तुम्हारे अधिकारमें कुछ नहीं था तो यही पहिले क्यों नहीं कह दिया ? सात मासलों मुझको कष्ट तो न उठाने पड़ते; मैं तो तुमको परमेश्वरी जानता था; परंतु अब ज्ञात हुआ कि तुम्हारा किया कुछ नहीं होसक़ता है, तुम देवता हो के मुझको मनुष्यके पास भेजती हो, इससे तुम्हें लज्जाना चाहिये था। तुम्हारे देवत्व की इतिश्री होचुकी; मनुष्य जितना कार्य कर सकते हैं उतना भी तुम नहीं कर सकती ?

इस प्रकारसे दुःख और पश्चात्ताप करता हुआ वह ब्राह्मण गाणगापुरमें पहुँचा; यह अब केवल अपने दैवका अंत देखना चाहता था, क्योंकि वह अपने मनमें सोचता था कि साक्षात् जगदंबा भवानीका किया कुछ नहीं हो सका, तब मनुष्यका किया क्या हो सकता है ?

नंदी स्वामीकी सेवामें उपस्थित किया गया। स्वामीने उससे कहाकि जब मनुष्यका किया कुछ नहीं हो सकता है, तब मनुष्यके पास आनेसे क्या प्रयोजन ? जिसके अंतःकरणमें सन्देह होता है, उसका कार्य किस प्रकारसे सिद्ध हो सकता है ?

ब्राह्मणने जान लिया कि स्वामी अंतर्यामी और समर्थ हैं, निरे मनुष्य नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने उसके अंतःकरणका वृत्तांत जान लिया। उसने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रार्थना किया कि हे भगवन् ! क्षमा कीजिये कष्ट उठाते उठाते मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, अज्ञान वश आपके, स्वरूप और सामर्थ्यको नहीं जाना, आप साक्षात् परब्रह्म हैं, मैं पापी हूँ, आज मेरे पापके दूर होनेका समय समीप आ गया है, अब मेरा कष्ट दूर कीजिये, मैं आपकी शरण हूँ।

ब्राह्मणको संगममें स्नान कराया गया, उससे अश्वत्थकी पूजा और प्रदक्षिणा कराई गयी, उसके पुराने वस्त्र दूर फेंक दिये गये, नये वस्त्र पहिनाये गये। ब्राह्मणकी देह रोगहीन, शुद्ध सुवर्णकी जैसी कांतिवाली हो गयी और जिस स्थानपर जीर्ण वस्त्र डालेगये थे वह भूमि ऊसर हो गयी। यह देख सब लोग विस्मित हो गये।

ब्राह्मणने अनेक प्रकारसे स्तुति कियी, जब स्वामीने कहाकि तुम

अपना सारा शरीर देखो, सबका सब शुद्ध हो गया या नहीं ? ब्राह्मण-ने देखा कि जाँघमें कुछ कोढ़ शेष रह गया है, स्वामीने कहा कि यह तुम्हारे मनके संदेहका फल है, अब तुम कवितामें हमारी स्तुति करते रहना, उससे यह भी दूर हो जायगा।

नंदीने कहा कि मैं लिखना पढ़ना कुछ नहीं जानता। बिना विद्या पढ़े कविता कैसे कर सकूँगा ?

स्वामीने उसकी जीभपर भभूत डाल दी, ब्राह्मण तत्काल ज्ञानी हो गया, उसने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रखके काव्यमें स्तवन किया और कवीश्वर नाम पाया। उसका शेष रोग भी दूर हो गया।

अध्याय ४६

नृसिंह कवि और कल्लेश्वर।

विष्णु शर्माने पूछा कि स्वामी ! एक नृसिंह कवि सुना जाता है, उसने किस कारणसे कवीश्वर नाम पाया ?

सिद्धने कहा कि एक दिन एक भक्त किसी शुभ कार्यमें स्वामीको हिरगे नामके गाँवमें अपने घर समारंभसे ले गया; पूजा अर्चा बड़े भावसे कियी। उसी गाँवमें कल्लेश्वर महादेवका मंदिर है, इस मंदिर-का पुजारी नरकेसरी नामका एक ब्राह्मण था। शिवजीकी सेवा अनन्य भावसे किया करता था; नित्य नये पांच कवन करके शिवजी का स्तवन करता था। शिवजीके अतिरिक्त अन्य किसी देवताकी आराधना करना नहीं चाहता था। उस दिन पुरवासियोंने नरकेसरी नरहरिसे कहा कि तुम्हारे कवनकी बहुत कीर्ति फैल रही है और स्वामीकी कवितापर प्रीति है। इसलिये स्वामीके विषयमें कछ कवन करना चाहिये।

नरकेसरीने कहा "मैंने अपनी वाचा कल्लेश्वरको अर्पण कर दी है, मैं मनुष्यकी स्तुति नहीं करूंगा" यह कह कर वह शिवालयको चला गया; वहाँ जाते ही उसको निद्राने घेरा और वह ऐसी घोर निद्राके वशमें हो गया कि पूजा करनेके समयमें भी नहीं जागा। स्वप्नमें उसने देखा कि लिंगपर स्वामी बैठे हुए हैं और आप उनकी पूजा कर रहा है,

लिंग दिखाई नहीं देता था, स्वामी ही दिखाई देते थे, स्वामीने नरकेसरीसे पूछा कि तुम तो मनुष्यकी पूजा नहीं किया चाहते थे, फिर क्यों मेरी पूजा कर रहे हो ? इतना स्वप्न देख वह जागृत हुआ और उसने अपने मनमें कहा कि स्वामी ईश्वरके अवतार हैं, मैंने भूलसे उनको मनुष्य समझा था। फिर उसने स्वामीकी सेवामें प्रविष्ट हो कर स्तवन किया कि हे स्वामी, मेरा अपराध क्षमा कीजिये; अज्ञानवश आपके स्वरूपको मैंने नहीं जाना था; अब मुझे ज्ञात हुआ कि आप ही साक्षात् ईश्वर हैं, कल्लेश्वर हैं।

इस प्रकारका स्तोत्र करके बारबार क्षमाकी प्रार्थना कियी और अनन्य भावसे शरण गही। स्वामीके साथ वह गाणगापुर पहुँचा। वहाँ स्वामीके विषयमें अनेक प्रकारके कवन किये, इसी कारणसे वह भी कवीश्वर नामसे विख्यात हुआ।

अध्याय ४७

स्वामीके आठ स्वरूप।

एक वर्ष दिवालीके त्योहारके दिन सात शिष्य एक ही साथ स्वामीको भिक्षाका निमंत्रण देनेके अर्थ स्वामीकी सेवामें उपस्थित हुए, इन सातोंपर स्वामीकी समान प्रीति थी। सातोंके ग्राम भिन्न भिन्न और दूर दूरके प्रदेशोंमें थे।

स्वामीने उनसे कहाः-तुम्ही सोचो एक देह मेरी है, एक ही दिन भिन्न भिन्न स्थानोंमे कैसे सातोंके घर जा सकता हूँ ? तुम ही सब लोग अपनेमें यह निश्चय कर लो कि पहिले मैं किसके घर जाऊँ और फिर किसके घर ?

अब प्रत्येक भक्त कहता था पहिले मेरे घर चलना होगा, पहिले मेरे। स्वामीने कहा कि किसी एकके घर जा सकता हूँ। सब लोग अपनेमें झगड़ने लगे।

इन सातोंमें कुछ लोग तो सम्पत्तिवान् थे और कुछ दुर्बल, जो लोग दुर्बल थे वे कहते थे कि यदि आप संपत्तिवानोंका पक्ष स्वीकार करेंगे तो हम अपनी देह गंगार्पण कर देंगे।

स्वामीने जब देखा कि यों निपटेरा नहीं होता है, तब उन्होंनें एकांत स्थानमें जाकर वहाँ एक भक्तको बुलाकर कहा कि मैं तुम्हारे घर आऊंगा तुम मेरे अभिवचनका वृत्तांत अन्य भक्तोंसे न कहना। इसी प्रकार एकके पीछे दूसरे और दूसरेके पीछे तीसरेको। तात्पर्य यह कि सातों-को पृथक २ बुलाकर सबको उनके घरपर जानेका अभिवचन दे दिया और प्रत्येक भक्त अपने मनमें यही जानता था कि स्वामी मेरे अति-रिक्त अन्य किसी भक्तके घर नहीं जावेंगे।

सातों भक्त आनंदसे अपने अपने घरको चले गये, किसीने किसीसे नहीं कहा कि मुझसे स्वामीने क्या कहा, उनको गुरुके वचनोंसे विश्वास हो गया था।

गाँवके निवासियोंने देखा कि त्योहारके दिन स्वामी विदेशीय भक्तों के घर जाने वाले हैं, उन्होंनें भी स्वामीसे प्रार्थना कियी, उनको उत्तर मिला कि दिवालीके दिन हम गाणगापुर हीमें रहेंगे।

दिवालीके दिन स्वामीने आठ स्वरूप धारण किये, एक गाणगापुर-में रहने दिया, उससे वहाँके भक्तोंकी पूजा स्वीकार कियी: अन्य सातों स्वरूपोंसे सातों विदेशी भक्तोंके घरोंपर पहुँच कर उनकी पूजा ग्रहण कियी। उस समय किसीने भी स्वामीकी लीलाका भेद नहीं जाना। दिवाली होते ही फिर स्वामी ज्योंके त्यों एक रूपसे स्थित हो गये। कार्तिककी १५ को दीपोत्सवमें जब सब भक्तजन एकत्रित हुए, तब प्रत्येक भक्त अभिमानसे दिवालीको अपने यहाँ स्वामीके आगमनका वृत्तांत कहने लगा। यहाँलों कि इससे परस्पर कलह उत्पन्न हो गया; क्योंकि एक दूसरेको मिथ्याभाषी कहते थे। उधर ग्रामवासी कहते थे इस वर्षकी दिवालीपर तो स्वामी गाणगापुरमें ही थे। कोई किसीकी बातपर विश्वास नहीं करता था, जब सब स्थानोंकी पूजा अर्चाके पात्र वस्त्रादि चिन्ह स्वामीके पास दिखाई दिये, तब जाना कि स्वामीने ही लीला कियी है। किसीको किसीके लिये दोष देना अनुचित है। भक्तोंमें बड़ा ही उत्साह फैला; दीपोत्सव बड़े समारोहके साथ किया गया। असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया।

अध्याय ४८

किसानके खेतमें सौगुना धान्य उपजा ।

मठसे जब स्वामी स्नानादिके लिये संगमको जाया करते थे और जब लौटा करते थे, उस समय मार्गमें एक किसान, जो खेतीकी रखवाली किया करता था, नित्य दौड़कर स्वामीको बड़े ही प्रेमसे प्रणाम किया करता था। बहुत काल बीतनेपर एक दिन स्वामीने उससे कहाः-तुम नित्य दौड़कर मुझको प्रणाम करते हो सो जो इच्छा हो कहो ? उसने प्रार्थना किया कि खेतमें अधिक धान्य उत्पन्न होना चाहिये, धान खेतमें अच्छा जमा है, फूट रहाहै, थोड़े ही दिनोंमें आपके धर्मसे मेरे भोजनको मार्ग खुल जायगा। एक बार स्वामीकी अमृत-दृष्टि खेतपर पड़ जाय तो मेरा कल्याण हो जाय ।

शूद्र जान कर मेरा अनादर न कीजिये, मैं आपका सेवक हूँ, आप भक्तवत्सल हैं आप सबका प्रतिपाल करने वाले हैं।

स्वामीने खेतपर जा कर देखा और आज्ञा किया कि मैं संगमपर जाता हूँ, लौट कर आनेलों खेत काट लो ।

शूद्रने गुरुकी आज्ञाके अनुसार किया। उसके स्त्री पुत्रादिक कहते थे कि अभी खेत पका नहीं है, कच्चा धान काटनेसे अन्नकी हानि होगी, इष्ट मित्रादिकोंने भी मना किया; परंतु उसने श्रीगुरुके वचनों पर विश्वास करके कहाः—श्रीगुरुकी आज्ञासे मैंने खेत काटा है, तब किस प्रकारसे हानि हो सकती है ।

स्वामीने लौटते समय देखा कि शुद्रने कहे अनुसार खेत काट-लिया, तब स्वामीने उससे कहा कि मैंने तो विनोद किया था, तुमने कच्चा खेत काट लिया। इसमें कच्चा अनाज निकलेगा ?

शूद्रने कहा कि मुझे तो स्वामीके बचनोंपर विश्वास है, चाहे स्वामीने विनोदसे कहा हो या निश्चित, और चाहे कुछ अनाज उत्पन्न हो वा न हो ।

स्वामी मठको चले गये, कच्चा खेत काटनेकी वार्ता गाँव गाँव फैल गयी। जो सुनता था वही शूद्रको मूर्ख कहता था; स्त्री पुत्रादिक रोते थे, परंतु किसान कुछ चिंता नहीं करता था; वह उनका

ढाढ़स बँधाकर कहता था कि तुम कुछ चिंता न करो, स्वामीकी कृपा हुई है, मैं बहुत लाभ उठाऊंगा, हानि हो नहीं सकती है । परंतु धैर्य कहाँ ?

आठ दिन नहीं बीते थे कि एकाएक बड़े वेगसे आँधी चली। अकालिक वर्षा हो कर जाड़ा गिरा, जिससे प्रदेश भरकी खेतीका सर्वनाश हो गया, परंतु इस किसानका खेत वर्षासे फिर फूटा और प्रदेश भरमें यही खेत था, जिसमें अनाज उत्पन्न हुआ और वह भी उसके वार्षिक उपजकी अपेक्षा सौगुना अधिक । अब स्त्री पुत्रादिकोंको जो आनंद हुआ वह अवर्णनीय था। उन्होंने खेतके देवता की पूजा कियी, स्त्रीने पतिसे क्षमा माँगी।

स्वामी नृसिंहसरस्वतीकी सेवामें किसान स्त्री पुत्रादि सहित उपस्थित हुआ, दंडवत् प्रणाम करके उसने अनेक प्रकार स्तुति किया और भक्तिसहित पूजा कियी।

स्वामीने उनसे कहा कि तुम्हारे घरपर अखंड लक्ष्मी निवास करेगी, सो ही हुआ।

अध्याय ४९

अमरजा संगमका माहात्म्य ।

विष्णुशर्माने सिद्ध महा मुनिसे पूछा कि अनेक प्रसिद्ध तीर्थ स्थानोंके विद्यमान होते हुए स्वामी नृसिंह स्वामीने गाणगापुरमें निवास करना क्यों स्वीकार किया ?

महात्माने कहा कि इस स्थानकी महिमा अन्य सब तीर्थोंसे अधिक है। एक समय दिवालीकी चौदसको स्वामीने इसकी महिमा अपने शिष्योंसे कही थी, वही मैं तुमसे कहता हूँ।

एक दिन स्वामीने शिष्योंसे कहा कि आज गया, प्रयाग और काशी-में स्नान करना चाहिये। शिष्योंने सिद्धताकी बात कही । स्वामीने कहा कि सिद्धताकी कौन आवश्यकता है? कहीं दूर थोडा ही जाना है, पासमें ही तो है, यह कहकर सब शिष्योंसहित अमरजा संगमपर गये और नहाये।

शिष्योंने पूछा कि इस नदीका नाम अमरजा क्यों रखा गया ?

स्वामीने कहा कि जालंधर पुराणमें इसकी कथा है; जालंधर नामका एक बड़ा पराक्रमी राक्षस था, जिसने अपने बल पराक्रमसे इंद्रलोकको जीत लिया, देवता मारे गये और भाग गये, इंद्रने शिवजीसे प्रार्थना कियी कि अब आप इंद्रलोकका रक्षण कीजिये, स्वर्ग मर्त्य और पाताल तीनों लोकमें राक्षसोंने अपना अधिकार जमा लिया, देवताओंकी रक्षा के लिये कोई स्थान नहीं बचा है ।

तब ईश्वरने एक कुंभ, जिसमें अमृत भरा हुआ था, इंद्रको दिया; उससे सब देवताओंको सजीव किया गया, कुंभमें थोड़ासा अमृत शेष रह गया था, कुंभ इंद्रके हाथसे गिर गया, अमृत बह निकला उसीकी यह अमरजा नदी है; इसीसे इसमें स्नान करने वालोंको मृत्युका भय नहीं रहता है, न कोई व्याधि ही रह सकती है, और सब पाप दूर हो जाते हैं ।

फिर स्वामीने शिवलिंगके दर्शन और अष्ट तीर्थोंमें स्नान करनेकी विधि और महिमा कही । इन अष्ट तीर्थोंमें वाराणसी भी एक तीर्थ है, जिसको दक्षिण वाराणसी कहते हैं ।

भारद्वाज गोत्रका एक ब्राह्मण बड़ा ईश्वर भक्त था । वह विरक्त हो कर सर्वकाल ईश्वरकी सेवाम लीन रहता था; उसपर ईश्वर प्रसन्न हुए थे; इस लिये देहादिकका मोह नहीं करता था, पुरवासी उसको बावला कहा करते थे । उसके दो भाई और थे उन्होंनें काशी यात्राको जानेकी सिद्धता किंयी। बावलेसे कहा कि तुम भी चलो । उसने कहा तुम लोग बावले हो गये हो, विश्वेश्वर तो समीप हीमें निवास करते हैं ।

बावलेने उनको उसी स्थानपर मनकर्णिका कुंड बताया, कुंडसे एक विश्वेश्वरकी मूर्ति भी निकली, कुंडमें पानी ऐसा दिव्य निकला जो भागीरथीके जलके समान है; जितने चिन्ह काशीमें हैं, वे यहां भी पाये जाते हैं । तब लोगोंको विश्वास हो गया कि ब्राह्मण बावला नहीं, प्रत्युत ज्ञानी है ।

रत्ना बाईका कोढ निवारण ।

श्रीगुरुकी पूर्व देहकी भगिनी रत्ना बाईके पूर्व जन्मके दुष्कृत संचित थे। उसको बुलाकर स्वामीने कहा कि तुमको दोष दूर करनेके लिये

पापविनाशिनी तीर्थमें स्नान करना उचित है।

रत्ना बाईने कहा कि आप सर्वज्ञ हैं, सो पूर्व जन्मके पापोंका वृत्तांत कहिये।

स्वामीने कहा:- पूर्व जन्ममें तुम्हारे घर एक पात्रमें बिल्लीने अपने पाँच बच्चे रखे थे, तुमने पात्रके भीतर न देख, उसमें पानी भरके ढक्कन चढ़ा कर आगपर रख दिया, पाँचो बच्चे मर गये। इतना स्वामी कह पाये थे, कि इतनेमें रत्ना बाईकी सारी देहमें सुफेद कोढ़ हो गया। रत्ना बाई बहुत डरीं, उसने स्वामीकी आज्ञाके अनुसार पापविनाशिनीमें स्नान किया, तत्काल कोढ़ दूर हो गया।

अध्याय ५०

म्लेछ राजाका कष्ट-निवारण।

सिद्ध मुनिने कहा कि पहिले धोबीका यवन राजाके घर जन्म धारण करनेकी कथा कह चुका हूँ। वह वैदुरी नगरी (इसीको अब बेदर कहते हैं) के यवन राजाके घर जन्म पा कर पुत्र पौत्रादि सब ऐश्वर्य सहित आनंदसे राज्य करता था; जातिका यवन होके भी पूर्व जन्मके संस्कारसे पुण्यकी वासना रखता था; ब्राह्मणोंकी सेवा करता था; देवालयोंको किसी प्रकारका उपद्रव नहीं होने देता था। उसके यवन पुरोहित उसको उपदेश किया करते थे कि विधर्मी ब्राह्मण और देवालयोंके लिये पूज्य बुद्धि रखना अनुचित है, परंतु वह उनका कहा नहीं मानता था। वह कहता था कि परमेश्वरकी निर्माण कियी हुई सारी सृष्टि है। जड़ चैतन्य सबमें परमात्मा व्याप्त है; क्या हिन्दू क्या मुसलमान, सबको सुख देना यही राजाका धर्म है; भेद बुद्धि रखना राजाके लिये उचित नहीं है।

एक समय राजाकी जाँघमें एक फोड़ा उत्पन्न हुआ, अनेक वैद्यों की औषधियाँ कियी गयीं; परंतु किसीसे लाभ नहीं हुआ, जलन बहुत होती थी, कष्ट सहा नहीं; जाता था। तब ब्राह्मणोंको बुला कर प्रणाम करके उनसे कष्ट दूर होनेका उपाय पूछा। ब्राह्मणोंने कहा कि सत्पुरुषों-की शरणमें जानेसे पूर्व जन्मके पाप दूर हो जाते हैं, इसलिये आपको

किसी सत्पुरुषकी शरणमें जाना चाहिये।

राजाने पूछा कि पहिले कभी किसी सत्पुरुषने किसी रोगीका रोग दूर किया हो तो उसकी कथा कहिये, तब मुझे विश्वास हो।

ब्राह्मणोंमेंसे एकने कहा कि पापविनाशिनी तीर्थमें जाकर आप स्नान कीजिये, वहाँ आपको अनुभव होगा।

ब्राह्मणके कहे अनुसार राजा पापविनाशिनी तीर्थमें पहुँचा। अकेले ही नदीमें पैठ कर नहाया; स्नान करके बाहर आते ही उसको एक महात्माका दर्शन हुआ। राजाने भक्ति सहित दंडवत् प्रणाम किया और फोड़ा बताकर प्रार्थना कियी कि हे स्वामी! मैं बहुत कष्ट उठा-रहा हूँ, इस स्थानकी महिमा सुनकर शरण लियी है और सत्पुरुषोंकी कृपा पा कर कष्टमुक्त होनेकी आशा करता हूँ; आप महात्मा हैं, कृपा करेंगे तो मेरा कष्ट दूर होना सुलभ है।

साधुसेवाका प्रभाव।

महात्माने कहा कि अवश्य ही महानुभावोंकी कृपासे कष्टका दूर होना कोई बड़ी बात नहीं है। इसका एक इतिहास कहता हूँ:—

अवंती नामकी एक नगरी है, जहाँ एक दुराचारी ब्राह्मण रहता था, यह ब्राह्मण मदोन्मत्त हो कर अनेक पर स्त्रियोंसे व्यभिचार करता; स्नान संध्यादि ब्राह्मणोंके कर्तव्य कर्म छोड़ कर पिंगला नामकी एक वेश्याके घर रात दिन पड़ा रहता था और उसीके घर भोजन किया करता था।

एक दिन वेश्याके घर ऋषभ नामके एक मुनि आये। वेश्या और ब्राह्मणने उनको दंडवत् प्रणाम करके भक्तिपूर्वक पूजा कियी। चरणोंका तीर्थ पान किया, अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम पक्वान्नोंसे उनको भोजन कराया; उनको पलंगपर लिटाकर तांबूल समर्पण करके चरण सेवा कियी, मुनिको जब निद्रा आ गयी तब दोनों रातभर चरण सेवा करते रहे। दूसरे दिन सूर्योदय होते ही मुनि प्रसन्न होते चले गये।

ब्राह्मण और वेश्या पूर्ववत् अपना काल व्यतीत करते रहे। तारुण्य ढला, बुढापा आया, अंतमें क्रमसे दोनोंने देह विसर्जन किया। स्वामी (मुनि) की सेवाके प्रभावसे ब्राह्मण दशार्ण देशके राजा वज्रबाहुके घर उसकी ज्येष्ठ पत्नी सुमतिके उदरसे जन्मा, जन्मके

समय राजाने अनेक प्रकारसे आनंद मनाया। अपार द्रव्य ब्राह्मणोंको दिये।

पुत्रके जन्म होनेसे पहिले सुमतिको उसकी सौतने धोखेसे साँप का गरल खिला दिया था; विषका सुमतिकी देहमें इतना प्रभाव तो नहीं पड़ा, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती; परन्तु उसके सर्वांगमें बड़े बड़े व्रण हो गये थे; बहुत वेदना हो रही थी, ऐसे ही कष्टकी स्थितिमें वह प्रसूता हो कर ऊपर कहे अनुसार पुत्र जनी, पुत्रकी देहमें उतने ही व्रण थे, जितने उसकी माताके थे।

अनेक वैद्योंसे चिकित्सा कराई गयी, बहुत द्रव्य व्यय किये गये; परंतु कुछ लाभ नहीं हुआ; कष्ट दिनों दिन बढ़ता गया; रात दिन वेदनासे रानी चिल्लाती रहती थी, राजासे रानीका कष्ट देखा नहीं जाता था। वह सब प्रकारसे निरुपाय हो गया, तब निराश हो कर स्त्री और पुत्र दोनोंको गाड़ीमें बैठा कर घोर अरण्यमें अकेले भेजकर छोड़वा दिया।

अब इन माता पुत्रको अरण्यमें अन्न और पानी देने वाला कोई नहीं था। उनके पास रोने और विलाप करनेके अतिरिक्त अन्य कोई निर्वाह का साधन नहीं था। एकतो स्त्री जाति अबला, तिसमें सुकुमार और रोगी, चलने फिरनेकी शक्ति नहीं, वेदनाके मारे बोलनेका अवकाश नहीं। उनको अब मृत्युके अतिरिक्त अन्य कुछ प्राप्तव्य नहीं था; परंतु अरण्यके व्याघ्र, सिंह, भालू आदि हिंस्र पशु भी उनको भक्षण करनेसे मुंह मोड़ते थे।

अपने कृत कर्मोंके नामसे रुदन और विलाप करती हुई, बच्चेको कमर पर उठाए हुए, दीन रानी अपने सुकुमार चरणोंसे पथरीली और कँटीली कठोर भूमि पर धीरे २ चलनेका प्रयत्न करती हुई, अनेक स्थानोंमें गिरती, टकराती, फिर साहस करके उठकर थोड़ा थोड़ा चलती थी। सुदैवसे उसी भयंकर अरण्यमें उसको एक चरवाहा दिखाई दिया, उससे तृषा वश थोड़ासा जल माँगा। चरवाहेने समीप हीमें एक शिवालय बताकर वहाँ पानी और अन्न मिलनेकी आशा दिलाई।

चरवाहाका बताया हुआ शिवालय समीपके एक नगरमें ही था; रानी साहस करके बहुत कष्टसे वहाँलों पहुँच गई। इस ग्रामका राजा

एक पुण्यशील और धनी वैश्य था, दूतियोंके द्वारा इस दुर्भाग रानी के वृत्तांत पा कर उसने उसको अपने राजभवनमें सुखसे रहनेकी व्यवस्था कर दियी और अपने भरसक रोगनिवारण करनेका भी बहुत प्रयत्न किया; परंतु रोग दिन दिन अधिकाधिक बढ़ता ही जाता था; ऐसी ही दशामें उसके पुत्रने अपनी दुःखिनी माताके कोमल हृदयपर पुत्र वियोगकी तीव्र अग्निका दाह देकर परलोकका मार्ग लिया ! उसकी माताने भी उसीके साथ जानेका उपक्रम किया ! परंतु उसके मुँहसे अत्यंत दीनताके भरे हुए हृदय विदारक "हा! तात!" "हा! पुत्र!" आदि शब्दोंके लंबे लंबे स्वरोंको योगमार्गसे सुन कर अंतर्यामी भगवान् ऋषभदेव स्वामी, जिनकी किं मृतकने पूर्व जन्ममें चरण सेवा कियी थी, कृत सेवाका पारितोषक देनेकी इच्छासे पहुँच कर उपस्थित हुए; उन्होंने रानीको बहुत कुछ ज्ञानोपदेश किया, परंतु उसका उसपर कुछ प्रभाव नहीं हुआ । उसकी समझसे तो पुत्रके पुनः सजीव होनेकी आशा करना ही असम्भव था और स्वयं भी रोगके कष्टसे अपनी मृत्युको पुत्रकी अपेक्षा आधिक चाहती थी, यह दशा अर्थात् रानीका निर्वाण अंतःकरण देखकर स्वामीने दोनोंकी देहपर थोड़ी थोड़ी भभूत प्रोक्षित कर दियी । भभूतका उनके शरीरपर गिरना था कि मृतक सजीव हो कर उठ बैठा, वैश्य राजाने जाना कि साधु कोई अवतारी पुरुष हैं, परंतु वह अबलों यह नहीं जान सका था कि उन्होंने रानी और पुत्रके शरीरोंको भी रोग हीन कर दिया है । जब रानीने स्वयं देखा कि मुनिने मेरे कष्टके दिनोंको आनंदके दिनोंसे पलट दिया और वैश्य राजाने जाना कि मेरे आश्रयमें रहनेसे एक अभागिनी कुलीन अनाथ स्त्रीका कष्ट दूर हो गया, तब उसके और उसके नगर वासियोंके आनंदका ठिकाना नहीं रहा ।

यवनराजसे महात्मा कह रहे हैं कि इस प्रकारसे सत्पुरुषकी सेवा फलवती होती है, इसलिये आपको सत्पुरुषकी शरणमें जाना चाहिये । राजाने पूछा कि ऐसे महात्माको मैं कहां पाऊँगा ? महात्मा ने कहा कि स्वामी नृसिंहसरस्वती गाणगापुरमें निवास करते हैं, वही आपका कष्ट निवारण करनेको समर्थ हैं, दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है ।

यवनराज गाणगापुरमें पहुँचा, उसने नगरवासियोंसे स्वामीका पता

पूछा, सब लोगोंने डरते डरते स्वामीका पता बताया (डरनेका कारण यही था कि उस कालके अन्य यवनराज ब्राह्मणादिक सनातनधर्मी जनोंपर बहुत अत्याचार किया करते थे ।) थोड़ी दूरपर जब स्वामी को देखा, तब वह वाहनसे नीचे उतर कर नंगे पावों स्वामीके निकट पहुँचा, चरणोंपर गिरा । स्वामीने कुशल प्रश्न करके कहा तुम बहुत दिनोंमें दिखाई पड़े । यह सुनते ही राजाको पूर्व जन्मका स्मरण हुआ, उसने फिर दंडवत् प्रणाम किया; कंठ गद्गद हो गया, रोमांच हो गये, प्रेमके आँसू बहने लगे। राजाने प्रार्थना कि कियी कि हे स्वामिन्! आपने मुझे अपने चरणोंसे दूर कर दिये ।

मैं विदेशी हो गया, अंधकारके समुद्रमें डूब गया, मैं मदोन्मत्त हो कर आपके स्वरूपको भूल गया, अब मेरा उद्धार कीजिये ।

राजाको पूर्वजन्मकी स्वामीकी उस समयकी अपूर्व महिमाका और उनके दिये हुए वरदानका स्मरण हो कर वह स्वामीके चरणों के ध्यानमें ऐसा मग्न हो गया कि अपने फोड़ेका कष्ट भूल ही गया । उसने कहा कि मैं अब आपके चरण कभी नहीं छोड़ूँगा ।

स्वामीने कहा कि मैंने सुना है कि तुमको कोई फोड़ा हुआ है; जिससे तुम बहुत कष्ट उठा रहे हो । तब राजाको फोड़ेका स्मरण हुआ, उसने कहा "हां सत्य है "। यह कह कर स्वामीको बताना चाहा, परंतु स्वामीकी प्रत्यक्ष दृष्टिमें आनेसे पहिले ही फोड़ा अच्छा हो चुका था, मानो फोड़ा उत्पन्न ही नहीं हुआ था । राजाने जान लिया कि स्वामीकी कृपाका ही यह फल है ।

म्लेंछ राजाके भवनमें स्वामीका पदार्पण

फिर राजाने चरणोंपर मस्तक रखके अनेक प्रकारसे स्तवन किया, और प्रार्थना कियी कि हे स्वामी ! मैं आपका पहिले सेवक था और अब अपने दिये हुए राज्यके ऐश्वर्यकी ओर एक बेर कृपा दृष्टि करनी चाहिये। स्वामीने कहा कि मैं तपस्वी संन्यासी हूँ, तुम्हारी नगरीमें नित्य गोहत्यादि पाप होते हैं । यवन लोग अत्याचार करते हैं। ऐसी दशामें मैं नहीं आ सकता हूँ, इनका प्रतिबंध करोगे तो मैं आ सकूँगा । राजाने स्वामीकी आज्ञाके अनुसार प्रबंध करनेकी प्रतिज्ञा कियी और बार बार दंडवत् प्रणाम कर अनेक प्रकारसे स्तवन किये ।

स्वामीको राजाने अत्यंत प्रेमसे अपनी पालकीपर बैठाया । सब शिष्योंको उत्तमोत्तम वाहनोंपर आरूढ कराया और वह अपने हाथोंमें स्वामीकी पादुका ले कर नंगे पावों स्वामीकी पालकीके साथ चला, इस प्रकारसे कुछ दूर जानेपर स्वामीके आग्रहसे राजा भी एक घोड़े पर आरूढ हुआ ।

स्वामीने कहा कि स्नान संध्याका समय समीप आ रहा है, इस लिये हम आगे चलकर पापविनाशिनी तीर्थ पर ठहरेंगे, तुम अपनी चालसे उसी स्थानपर पहुँच जाना ।

यह कहकर स्वामी आगे बढ़े और अदृश्य हो कर वायुके समान वेगसे सब शिष्यों सहित वैदुरपुरको पहुँचे । यहाँ सायंदेवके पुत्र नागनाथने स्वामीको अपने घरपर ले जा कर भक्ति पूर्वक समाराधना कियी । उसको स्वीकार करके स्वामी पापविनाशिनीपर पहुँचे ।

इधर स्वामीको अदृश्य हुआ देख राजाके मनमें चिंता हुई । अस्तु उसने घोड़ा बढ़ाया । राजाने जाना कि मुझसे कोई अपराध हुआ है जिसके कारण स्वामी मुझे छोड़ कर चले गये । चवालीस कोसके मार्गका एक दिनमें आक्रमण करके राजा पापविनाशिनीपर पहुँचा, वहाँ स्वामीको पा कर कृतार्थ हुआ और उसने मनमें विस्मय किया कि स्वामी इतने शीघ्र किस प्रकार पहुँच गये।

नगर बहु मूल्य वस्त्र, पताका, ध्वजा, मोती और मणियोंके तोरणादि से सजाया गया । स्वामीको पालकीमें बैठाकर राजा पादुका हाथमें लिये नंगे पावोंसे पालकीके साथ रहा, बहु मूल्य आभूषणोंसे सजाये हुए हाथी, घोड़े, पालकीके आगे चलते थे; शिष्य जन सब वाहनोंपर आरूढ़ कराये गये थे, बहु मूल्य रत्न स्वामीपर न्योछावर किये जाते थे । नगर निवासी जन आरती करते थे, ऐसे समारोहसे श्रीगुरु राज-भवनमें पहुँचे ।

नगरके लोग विस्मय करते थे कि यवन जातिका राजा हो कर ब्राह्मणोंका सत्कार करता है, यवन लोग निंदा करते थे कि राजा धर्म भ्रष्ट हो गया है ।

राजाके अंतःकरणमें आनंद समाता नहीं था; उच्च रत्नजटित सिंहासनपर स्वामी विराजमान कराये गये, राजस्त्रियोंने आनंद और भक्तिसे आरतियाँ उतारीं । अंतःपुरकी सब स्त्रियां और राजाके पुत्र

पौत्रादिकोंने दंडवत् प्रणाम करके स्तवन किये। उनसे स्वामीने कुशल वृत्तान्त पूछे। सब ऐश्वर्य स्वामीको बताये गये । राजाकी इच्छा पूर्ण हुई। फिर श्रीशैलपर भेट होनेका वचन देकर स्वामी राजासे विदा होकर गाणगापुर पहुँचे। उन्होंनें मनमें सोचा कि यवनोंमें प्रसिद्धि होगयी। अब वे लोग भी मनोरथ सिद्ध करानेके अर्थ आने लगेंगे। विधर्मियोंका सहवास सनातनधर्मियोंके लिये सुखकर न होगा। इसलिये गुप्त रहना अच्छा है । यह विचार करके स्वामीने प्रगटमें श्रीशैलकी ओरको प्रयाण किया और वास्तवमें अदृश्य रूपसे गाणगापुर में निवास करनेका निश्चय किया।

अध्याय ५१

स्वामीका निजानंदमें लीनहोना।

स्वामीका ऐसा निश्चय जानकर उनके शिष्योंको अत्यन्त दुःख हुआ; जिसका वर्णन करना अशक्य है। स्वामीने उनको ढाढ़स बँधाकर कहा" जो जो भक्त हमारे सच्चे प्रेमी होंगे उनको प्रत्यक्ष भी हमारी भेट गाणगापुरमें हुआ करेगी। जो लोग अपना क्लेश निवारण करानेकी इच्छासे गाणगापुरमें आकर विधियुक्त पूजा आराधना किया करेंगे उनके मनोरथ पूर्ण हुआ करेंगे "। यह कहकर स्वामीने अपनी पादुका गाणगापुरमें छोड़दीं और प्रगटमें श्रीशैलकी ओरको प्रयाण किया।

स्वामीको पहुँचाकर भक्त जन लौटते समय मठमें आये तब मठ-को स्वामीके न होनेसे शून्य देख दुःखित हुए। उस समय स्वामीने प्रगट होकर दर्शन दिये । इस समय उन्हीं शिष्योंको दर्शन हुए जो सच्चे भक्त थे।

प्रगटरूपसे स्वामी श्रीशैलको पहुँचे, वहाँ गंगाके तीरपर निवास किया। कन्याके बृहस्पति थे, बहुधान्यनाम संवत्सर, उत्तरायण, कुंभ-के सूर्य, शिशिरऋतु, माघमासका कृष्णपक्ष, प्रतिपदा, शुक्रवारके दिन वहाँके भक्तोंको स्वामीने आज्ञा दियी कि फूलोंका आसन बनाया-जाय। मैं गंगाके उस पार जाकर मल्लिकार्जुनमें लीन हो जानेकी इच्छा करता हूँ।

उत्तमोत्तम फूलोंका विमान बनाया गया,वहाँके भक्तजन भी दुःखी हुए। उनसे भी स्वामीने कहा कि मैं केवल लौकिकके लिये जाता हूँ; वास्तव में गाणगापुरमें मेरा निवास रहेगा । भक्तोंके लिये तो सर्वकाल मैं समीपही हूँ। सब लोग गायन करके मेरा भजन चिंतन करते रहना, जो पुरुष गायनसे मेरा स्मरण करेगा, उसपर मेरी अधिक प्रीति रहेगी, वह सब प्रकारसे सुखी रहेगा। तब विमान गंगाजीमें छोड़ागया।

सब जनोंकी ओर स्वामीने कृपादृष्टिसे देखा और आशीर्वाद दिया; पीछे वे विमानमें आरूढ हो निजानंदस्वरूपमें लीन हो गये।

शिष्यसमुदाय गंगाके तीरपर उपस्थित हो आँसूभरी दुःखित आँखोंसे विमानकी ओर देख रहे थे; देखते ही देखते विमान अदृश्य हो गया, तबलों एक मलाह नावके द्वारा उस पारसे आया, उसने कहा कि मुझसे मार्गमें स्वामी नृसिंहसरस्वतीकी भेंट हुई है, तुम लोग वृथा भ्रममें पड़कर दुःख कररहेहो। स्वामीने तुम लोगोंसे कहनेके लिये मुझे संदेश कहाहै कि मैं सर्वकाल गाणगापुरमें निवास करूँगा। तुम सबलोग सुखसे रहो। मैं प्रसाद और पुष्प भेजूँगा सो सब शिष्यजन ग्रहण करना। यह सुनकर सब शिष्योंको आनंद हुआ।

इसी अवसरमें चार पुष्प गंगामें बहते हुए आये। वे मुख्य शिष्योंने ग्रहण किये, मुख्य शिष्योंमें चार सन्यास आश्रम लिएहुएथे। १ कृष्ण सरस्वती २ बाल सरस्वती ३ उपेन्द्रमाधव ४ मैं। और चार गृहस्थाश्रमी थे १ सायंदेव, दोनों कवीश्वर, चौथा नंदी। इनचारों गृहस्थियोंनें पुष्प लिये।

सिद्ध मुनिने कहा कि इस प्रकारका यह श्रीगुरुका माहात्म्य तुमसे मैंनें कहा, इसके सुननेसे तुह्मारे सब दुःख दारिद्र्य दूर हुए। जो कोई स्वामीका चरित्र कीर्तन करके, गान करके, सुनता या पढ़ताहै, वह पुत्र पौत्रादि सहित धर्मार्थकाम मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ पाताहै।

अध्याय ५२

सिद्ध मुनिने कहा कि श्रीपर्वतको जानेका स्वामीने निश्चय कियाथा उस समय गाणगापुरके निवासी सब पुरुषोंके अंतःकरण एकसे दुःखी

हुए, सबने इकट्ठे होकर स्वामीसे विनंति कियीकि हे भगवन् ! आप श्री शैलपर जानेका उपक्रम कर रहे हैं, परंतु हमको ऐसा प्रतीत होताहै कि अब आपकी इच्छा अवतार समाप्त करनेकी है। हे प्रभु ! अबलों पापीजनोंको यह विश्वास रहा कि जब कोई संकट उपस्थित होगा आपकी शरणमें जाकर निवारण करालेंगे; आपके चले जानेपर हम लोगोंकी क्या दशा होगी; हमारे पाप और संकट कौन दूर करेगा ? कैसे हम इस असार संसारके पार जासकेंगे ? आपके चलेजानेपर हमलोग ऐसे अनाथ होजावेंगे, जैसे दीपक बिना भवन, अथवा प्राण बिना देह। अबलों गाणगापुर एक वैकुंठके समान आनंदपुरथा, अब ऐसा होजायगा जैसा माता बिना बालक, अथवा जलके बिना कमल। माता पिता इष्ट मित्र देवता सब ही आप थे, आपकी कृपासे हमको नित्य आनंद मिलता था, सुखसे कालव्यतीत होताथा, हे स्वामी ! अब हमारी क्या दशा होगी ? इस प्रकार प्रार्थना करते हुए नगरवासी पुरुष और स्त्रियोंकी आँखोंसे आँसूकी अखंड धारा बहनेलगी, गुरुके विरहका समय समीप आया जान वे व्याकुल होकर मूर्छित होगये, तब स्वामीनें प्रेमसे उनको उठाकर सावधान किया और समझाया कि मैं तो इसी स्थानमें निवास करूँगा। स्नान पान सबकुछ मेरा इसी स्थानपर होगा; तुम लोग किसीप्रकार की चिंता न करो, बात केवल इतनी ही है कि अबलों मैं प्रगटरूपसे रहताथा, अब गुप्तरूपसे रहूँगा कारण इसका यह है कि अब इस पृथ्वीपर मेरी प्रसिद्धि होगयी अब अनेक यवनलोग भी अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण होनेकी इच्छासे आया करेंगे उनसे प्रजाको उपद्रव होगा।

जिसके अंतःकरणमें पूर्ण भक्ति निवास करेगी, उसको प्रगट रूप से भी मैं भेंट देता रहूँगा। लोगोंमें प्रसिद्ध करनेके अर्थ मैं श्रीशैलको जानेका दृश्य बताता हूँ। मैंनें मठमें अपनी पादुका रखीहैं, अश्वत्थका वृक्ष भी है, जो पुरुष संगमपर स्नान करके अश्वत्थनारायण और पादुकाकी पूजा आरती करेगा उसके सब मनोरथ अवश्य ही परिपूर्ण होंगे।

इस प्रकारसे सब नगरवासियोंको समझाकर स्वामीने प्रयाण किया। दूरदूरके नगरवासी लोग स्वामीके साथ साथ दौड़गये; स्वामीने उनका समाधान करकराके उनको लौटा दिया। और शीघ्रगतिसे

शिष्यों सहित स्वामी चलेगये । पुरवासी लौटकर जब मठमें पहुँचे तो सबने स्वामीको नित्यके अनुसार अपने आसनपर आरूढ़ पाया; सबको दर्शन देकर स्वामी तत्काल अंतर्धान होगये। सबलोग विस्मय करते ही रहगये कि हमने तो स्वामीको मार्गमें जाते हुए छोड़ा, स्वामी कैसे यहाँ आगये । फिर सब लोगोंको विश्वास होगया कि जैसा उन्होंने वचन दिया है, उसीके अनुसार वह अदृश्य रूपसे इसी स्थानपर निवास करते हैं और दृढ़ निश्चयसे भक्ति करनेवालोंको प्रत्यक्ष भी दर्शन देंगे ।

अध्याय ५३

अवतरणिका और अनुष्ठानकी विधि ।

ग्रंथकर्ताने इस अध्यायमें लिखा है कि बावन अध्यायोंमें वर्णन किये हुए श्रीगुरुचरित्रामृतको पान करके शिष्य (विष्णुशर्मा) का अंतःकरण ब्रह्मानंदमें ऐसा मग्न होगया कि उसकी देहमें पसीना होगया, शरीर प्रफुल्लित हुआ, रोमांच होगये, कण्ठ गद्गद होगया, आंखोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे । मुँहसे बोल नहीं सकता था, देह स्थिर हो गयी ।

सिद्धमुनिने विष्णुशर्माकी समाधिकीसी दशा देख प्रेमसे उसके शरीरपर हाथ फेरकर उसको हृदयसे लगाया और कहा हे वत्स ? हे शिष्योत्तम ? सावधान होओ, तुम संसारसागरके पार होगये। अब यदि तुम इसी प्रकार समाधिस्थ रहोगे तो ज्ञानका भंडार तुम्हारे ही अंतःकरणमें रह जायगा; इससे सृष्टिको कुछ लाभ न हो सकेगा; तुमको उचित है कि अंतःकरणमें श्रीगुरुके चरणोंके प्रति दृढ़ता रखो, परंतु देहसे शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार कार्य करना चाहिये । तुम्हारे योगसे मुझको गुरुचरित्रामृतका स्मरण होकर उसको पान करनेका लाभ हुआ, इससे मेरे भी तीनों ताप दूर होगये ।

शिष्यने आँखें खोलीं और हाथ जोड़कर प्रार्थना कियी कि हे कृपासागर ? आपकी कृपासे अब मैं अवश्य ही भवसागरके पार जाऊँगा, अब मेरी यह आकांक्षा है कि आपने श्रीगुरुके चरित्रकी

जितनी कथायँ कहीं हैं उनकी अवतरणिका आपके मुखारविंदसे सुनूँ क्योंकि अभीलों गुरुचरित्र श्रवण करनेसे मेरी इच्छा तृप्त नहीं हुई है

सिद्ध मुनिने निम्नलिखित अवतरणिका कही:—

अध्याय	विषय
१	१ मंगला चरण।
	२ एक गुरुभक्तको श्रीगुरुका दर्शन।
२	१ ब्रह्मदेवकी उत्पत्ति।
	२ चारो युगोंके प्रभाव।
	३ संदीपककी गुरुभक्ति।
३	१ अंबरीष और दुर्वासाकी कथा।
४	१ अनसूयाका छल, ब्रह्मा विष्णु और महादेव तीनोंका अनसूयाके पुत्र बनकर रहना और स्तनपान करना।
५	१ श्रीपाद स्वामीका जन्म।
६	१ रावणका शिवजीसे आत्मलिंग हस्तगत करलेना।
	२ गणपतिका रावणके आत्मलिंग लेजाते हुएमें विघ्न करना।
	३ गोकर्ण महाबलेश्वरकी स्थापना।
७	१ गोकर्ण महाबलेश्वरकी महिमा।
	२ चांडालिनका उद्धार।
८	१ आत्महत्त्या करनेकी इच्छा करनेवाले माता और पुत्रका कष्ट निवारण।
९	१ धोबीको राज्यप्राप्तिका वरदान।
१०	१ चोरोंके द्वारा गुरुभक्त ब्राह्मणका वध और उसका पुनर्जीवन।
११	१ स्वामी नृसिंहसरस्वतीका जन्म।
१२	१ स्वामीका अपनी माताको उपदेश।
	२ काशीक्षेत्रमें स्वामीका संन्यासदीक्षा ग्रहण करना।
	३ उत्तरीय तीर्थोंकी यात्रा।
१३	१ स्वामीकी अपने माता पितासे भेट।
	२ उदरकी व्यथासे कष्ट पानेवाले ब्राह्मणका रोग निवारण।
१४	१ यवन राजाका शासन।
	२ सायंदेवको वरदान।

उपर्युक्त अवतरणिका सुनकर विष्णुशर्माने विनय पूर्वक श्रीगुरु से सप्ताह पाठका प्रकार कहनेकी प्रार्थना कियी।

सिद्ध मुनिने कहा तुह्मारे इस लोकमें कल्याणकारक प्रश्नको सुन कर मुझे अत्यंत हर्ष होता है; अब मैं तुमसे सप्ताह पाठका प्रकार कहता हूँ ।

प्रथम शुद्ध दिन देखकर पाठ करनेका स्थान उत्तमोत्तम रंगोंसे चित्रित करे; शास्त्रोक्त रीतिसे स्नान संध्यादि नित्यकर्म करे, फिर गुरुचरित्रके ग्रन्थको श्रीगुरुकी मूर्ति मानकर उसकी विधिपूर्वक पूजा करे; उस दिनसे एक आसनपर बैठ पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके सब इन्द्रियोंको वशमें कर पाठका आरंभ करे। पहिले दिन नौ अध्याय, दूसरे दिन २१, तीसरे दिन २९ चौथे दिन ३५ पाँचवे दिन ३८ छठे दिन ४३ और सातवें दिन ५२ अध्याय पर्यन्त पाठ करे ७ पीछे अवतरणिका पढ़े। फिर षोड़शोपचारसे उत्तरपूजा करके श्रीगुरुको नमस्कार करना चाहिये। इसके उपरान्त ब्राह्मण तथा सुवासिनीको भोजन करावे। इस प्रकार सप्ताह पाठ करनेसे भूतप्रेतादि तथा रोगादिककी बाधा दूर हो जाती है और पाठकको साक्षात् श्रीगुरुके दर्शन होते हैं। उनकी सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

इसप्रकारसे प्रेमरसयुक्त सिद्ध मुनिके वचन सुनकर विष्णुशर्मा ने मुनिके दोनों चरणोंको पकड़लिया और अनन्यभावसे प्रार्थना कियी कि हे गुरुराज! चातकके एक बूँद अमृतमाँगनेपर चन्द्रमा कभी उसको नहीं देता है, परन्तु मुझे आपने अपार सुधारस पान करादिया इससे मेरा तो सब प्रकारसे कल्याण हो ही गया परंतु भक्त और अभक्त सबका कल्याण होगा।

अंतमें ग्रंथकर्ताने श्रीगुरु नृसिंह सरस्वती, सिद्धमुनि और विष्णु शर्माको नमस्कार करके ग्रंथको समाप्त किया और मैं ग्रंथकर्ता सहित उपर्युक्त सब महात्माओंको दंडवत् प्रणाम करके अनुवादको समाप्त करता हूँ।



शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	२६	बड़	बड़े
१०	६	सदीपक	संदीपक
"	२०	ऐसे गुरु	ऐसे गुरुकी
१३	हेडिंग	अध्याय ३	अध्याय ४
२०	४	भजा	भुजा
"	हेडिंग	अध्याय ३	अध्याय ६
२१	२४	प्रणाम	प्रमाण
२३	२५	तुम्हारा इच्छा	तुम्हारी इच्छा
२४	१५	रावण मराबली	महावली
२५	१०	इसा समय	इसी समय
३३	४	तथस्तु	तथास्तु
३५	१३	विभवे	विभव
३६	१२	जन्म राज्यपभोग	जन्मभें राज्योपभोग
"	२३	अतःकरण	अंतःकरण
३७	१४	चोरोंके	औरोंके
"	हेडिंग	अध्याय १०	अध्याय ११
४१	हेडिंग	अध्याय ११	अध्याय १२
४२	७	पत्र	पुत्र
४३	११	भी प्रणाम	प्रयाण
५४	हेडिंग	अध्याय १२	अध्याय १३
४८	४	ादयी	दियी
४९	२४	उल्लंधन	उल्लंघन
५१	४	मैं	मैं
"	हेडिंग	अध्याय १०	अध्याय १४
५२	६	प्रयाग	प्रयाण
"	९	गुप्त रूषसे	गुप्त रूपसे
५३	६	गाँवों	गाँवों

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
„	हेडिंग	अध्याय १२	अध्याय १५
५४	२	इश्वर	ईश्वर
५५	हेडिंग	अध्याय ११	अध्याय १५
५७	हेडिंग	अध्याय १२	अध्याय १६
५९	हेडिंग	अध्याय ११	अध्याय १६
६०	५	लिथे	लिये
„	२०	का सुरक्षित	को सुरक्षित
६१	१६	भटक होजानेसे	भटक जानेसे
६५	९	द्वेषमें	त्वेषमें
७०	२४	तुमारी	तुम्हारी
७३	२२	भूल गगीथी	भूल गयीथी
७५	२४	सर्वांगमें लेपन	सर्वांगमें भस्म लेपन
„	३१	पुत्र	पुत्रको
७७	५	दुयोधनके कर	दुर्योधनके घर
७८	१०	चमत्कारके	चमत्कार
७९	३	करने वाली	करने वाला
„	१४	संगम मर	संगमपर
८१	७	पढ़ता	पढ़ाता
८२	३	मरि अभिमानके	अभिमानके
८३	२।३	अभिमान ही गमन	बोझ ही शमन
८४	२१	वंश पायनको	वैशंपायनको
८६	५	वाजनीय	वाजसनीय
९१	१	प्रवेशर	प्रवेश
९३	२४	वाला, पिता,	वाला पिता,
„	३०	मंत्रों प्रयोग	मंत्रोंका प्रयोग
९४	८	....	बेरड़ (डोम)
९६	३	मामाकी स्री	मामाकी स्त्री
„	७	ब्राह्मणकी स्री	ब्राह्मणकी स्त्री
„	२७	भाग	भाग[illegible]
„	३१	प्रजापत्य कृच्छ्र	प्रा[illegible]पत्य कृच्छ्र

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९७	२२	७ अब	अब
९८	१८	दुघ	दूध
"	२१	"	"
९९	१८	दवताओंसे	देवताओंसे
१००	२	चहतेथे	चाहतेथे
"	"	डाल दूं	डालदें
१०२	२५	दुर्धर	दुर्धर
१०९	१३	दहके	देहके
११५	२२	भोजन करे	भोजन न करे
११६	५	स्वगमें	स्वर्गमें
११७	३	ऐसाही	ऐसीही
"	६	पहुचते ही	पहुँचते ही
११९	२०	सद्गाति	सद्गति
१३१	२८	अटारियाँ चंद्रकी	अटारियाँ और चंद्रकी
१३६	५	मरोरथ	मनोरथ
१३७	२६	बढई व्यवसायसे	बढ़ईके व्यवसायसे
"	३०	पंच महायज्ञ	पंच महायज्ञादि
१३८	४	पिता गुरुको	पिता और गुरुको
"	"	गाय ब्राह्मण	गाय ब्राह्मण और
"	११	मानस वृत्ति	भाणस वृत्ति
"	१३	घृति	धृति
१३९	६	सनतकुमारादि	सनत्कुमारादि
१४०	१९	"ज" "प"	"ज" और "प"
१४१	२७	निबांदि	निंबादि
१४३	७	वक्ष	वृक्ष
"	९	दूरहो और	दूरहो तहाँ, और
"	३०	उसको ऐश्वर्य	उसको सब ऐश्वर्य
१५२	३	तीर्थे	तीर्थ
"	२०	नैवद्य	नैवेद्य

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५३	२९	गुरुके स्मरण किये वचनोंपर	गुरुके वचनोंपर
१५४	१९	गुरुके वचणोपर	गुरुके वचनोंपर
१५६	३१	काटे	काँटे
१५७	७	संदीपक दीपकथे	दीपकथे
,,	२०	अराधना	आराधना
१५८	११	शिष्यने	शिष्य
,,	१५	शीघ्र	शीघ्र
१५९	२	अवथा	अथवा
१६३	२६	जुलाहेकी माता	जुलाहेके मातापिता
१६७	२	कल्लेश्वरकी भी करा	कल्लेश्वरकी भी करो
,,	१६	उपाचर	उपचार
,,	२२	किस	कि इस
,,	२६	अंतम	अंतमें
१६८	२१	प्रार्थना किया	प्रार्थना कियी
१७२	२३	कच्चा अनाज	क्या अनाज
,,	२९	वह उनका	वह उनको
१७३	१९	नृसिंह स्वामी	नृसिंह सरस्वती
१७६	२५	तब दोनों	तबभी दोनों
१७९	८	किकियी कि	कियी कि
,,	९	करदिये	कर दिया
१८०	१४	मुझस	मुझसे
,,	१९	तारणादि	तोरणादि



[illegible]

[illegible]

[illegible]

। वालसु
नूपआति । का
देसकोपिनयनअरु
भुजबलहमलीनतुरं
हिलीनरिझाई ॥ अ
नगाढ़े । रहेदो